"आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (1980–2013 तक)"

"A Critical Study of Creative Sanskrit Literature of Aaryasamrat Dr. Jaggannath Pathak (by 1980-2013)"

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला–संकाय

शोधार्थी

सतीश कुमार शर्मा

शोध–निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) सुदेश आहूजा

संस्कृत विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled "आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (1980–2013 तक)" by **Satish Kumar Sharma** under my guidance. He has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date :

(Dr. Sudesh Ahuja)

Supervisor

शोध सार

आधुनिक संस्कृत साहित्य के ख्यातनामा कवि आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक है जो अपने युगानुरूपी साहित्य के कारण सकल साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है। ऐसे ख्यातिलब्ध साहित्यकार पर शोध करना किसी पङ्गु द्वारा गिरिलङ्घन के समान है। इस दुर्लभ कार्य को सफल करने में मेरी गुरुवर्या डॉ. सुदेश आहूजा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने अपने ज्ञान रूपी प्रकाश से मेरी अज्ञान रूपी बुद्धि को ज्ञान से प्रकाशित कर मुझे इस शोध–विषय पर लिखने का हौंसला दिया। मैंने अपने शोध का विषय **"आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (1980–2013 तक)"** सुनिश्चित किया तथा इसको सात अध्यायों में विभक्त किया। जो इस प्रकार है–

1. प्रथम अध्याय : डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2. द्वितीय अध्याय : मुक्तक साहित्य का उद्भव तथा विकास

3. तृतीय अध्याय : डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक व सांस्कृतिक अध्ययन

4. चतुर्थ अध्याय : डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अनुशीलन

5. पञ्चम अध्याय : डॉ. पाठक का अनुदित साहित्य

6. षष्ठ अध्याय : डॉ. पाठक कृत सुभाषित साहित्य में जीवन के शाश्वत् मूल्यों का चिंतन

7. सप्तम अध्याय : डॉ. पाठक का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान

उपसंहार

संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कवि का व्यक्तित्व निर्धारण कर उनकी विशेषताओं को बताने का प्रयास किया है। इसके बाद उनके सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त में परिचय दिया है।

द्वितीय अध्याय में प्राचीन संस्कृत मुक्तक काव्य परम्परा के उद्भव व विकास का परिचय देते हुए अर्वाचीन मुक्त काव्य परम्परा का संक्षिप्त परिचय दिया है। इस अध्याय में प्रमुख प्राचीन तथा अर्वाचीन मुक्तक काव्यों का भी संक्षिप्त परिचय दिया है।

तृतीय अध्याय में मैंने डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अनुशीलन किया है। इस अध्याय को मैंने दो भागों में विभक्त किया है जिसमें प्रथमभाग में समसामयिक अध्ययन के अन्तर्गत यथार्थवाद, मानवीय संवेदना, नारी समस्या, सामाजिक विसंगतियाँ, प्रेम–प्रणय तथा आर्थिक वैषम्य का अध्ययन किया है। द्वितीय भाग में सांस्कृतिक दृष्टि से अनुशीलन कर जीवन–दर्शन, राष्ट्रिय भावना, ईश्वर–सत्ता और जीवन मूल्य पर लिखा है।

चतुर्थ अध्याय में डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अनुशीलन करते हुए उनमें प्रयुक्त भाषा, रस, अलंकार तथा छंद का अध्ययन किया है।

पञ्चम अध्याय में मैंने अनुवाद की परिभाषा व उपयोगिता बताते हुए भारतीय अनुवाद परम्परा के विषय में बताया है। इसके बाद ग़ालिबकाव्यम् की अनुवाद की दृष्टि से समीक्षा की है।

षष्ठ अध्याय को मैंने दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में सुभाषित सूक्ति की परिभाषा व महत्त्व बताया है। द्वितीय भाग में डॉ. पाठक रचित जगन्नाथसुभाषितम् में निहित जीवन मूल्यों यथा स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, मानवीय संवेदना, राष्ट्र–प्रेम, दलित–शोषण आदि का अध्ययन किया है।

सप्तम अध्याय में मैंने डॉ. पाठक द्वारा रचित रचनाओं के आधार पर उनका आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान निर्धारण किया है। इसमें मैंने उनके द्वारा साहित्य सर्जन का कारण तथा उनका मानवता के नाम संदेश को भी बताया है।

♦♦♦♦

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **"आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (1980–2013 तक)"** in partial fulfilment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of **Dr. Sudesh Ahuja,** and submitted to the University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in the thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Satish Kumar Sharma
Research Scholar

This is to certify that the above statement made **Satish Kumar Sharma (Enrolment No. RS/469/13)** is correct to the best of my knowledge.

Date :

(Dr. Sudesh Ahuja)
Supervisor

प्राक्कथन

संस्कृत साहित्य की गौरवशाली परम्परा वैदिककाल से निरन्तर अव्याहत गति से प्रवाहित होती आ रही है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा जिस लौकिक काव्य का प्रवर्तन किा उसका चरमोत्कर्ष हमें हर्ष, बाणभट्ट, कालिदास, माघ, भारवि इत्यादि कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है। कथानक, वस्तु चित्रण, कलेवर व अन्यान्य कई प्रकार की अवधारणाओं को ध्यान में रखकर महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य एवं रागकाव्यों की शाखाओं का प्रस्फुरण हुआ। वैदिक गर्भ से अनुस्यूत गीर्वाणवाणी की इस गौरवशाली गाथा को गुम्फित करने के लिए वैदिक आख्यानों, पुराणों, रामायण एवं महाभारत इत्यादि परवर्ती कृतियों को उपजीव्य बनाकर विविध कालजयी कृतियों का प्रणयन प्राचीन आचार्यों ने किया।

संस्कृत भाषा का साहित्य प्राचीन काल से ही अपने ज्ञान–विज्ञान के साथ–साथ सहृदय को आनन्द प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। जिस प्रकार संस्कृत भाषा के विशेषज्ञ वैदिक ऋषियों ने वेदों की रचना कर मानव जीवन के लोककल्यार्थ समर्पित किया, उसी प्रकार संस्कृत भाषा साहित्य की परम्परा का अनुसरण करते हुए लौकिक संस्कृत साहित्य के विद्वान् मनीषियों ने विपुल ज्ञान–विज्ञान के स्रोत का सृजन एवं व्याख्यान किया है। प्राचीन लौकिक संस्कृत भाषा साहित्य से परम्परानुगत आधुनिक संस्कृत के रचनाकारों ने भी संस्कृत की विविध विधाओं में काव्य–साहित्य का सर्जन किया है। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों ने संस्कृत साहित्य रचना को विभिन्न कालों में विभक्त कर प्रतिष्ठित किया है। इसी कालक्रम की कड़ी आधुनिक संस्कृत साहित्य भी है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत जो 20वीं तथा 21वीं शती के प्रारम्भिक समय तक का साहित्य है, वह अपनी समृद्धिशील परम्परा के साथ विशेष रूप से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है।

संसार की समस्त भाषाओं में संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जो वैज्ञानिकता तथा अपने माधुर्य से सबको आकृष्ट करती है। इस भाषा के साहित्य में जीवन की विविध

विधाएँ प्रस्तुत हुई है। संस्कृत साहित्य के एक पक्ष का अध्ययन भी मनुष्य के जीवन में परिसमाप्त नहीं हो सकता। इसी साहित्य का नवीन युग आधुनिक संस्कृत साहित्य है।

उपर्युक्त कार्य (शोध प्रबन्ध) की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सर्वप्रथम तो मैं वीणा–वादिनी, वाग्देवी, सरस्वती को दण्डवत् नमन करता हूँ।

जब मैं आचार्य द्वितीय वर्ष में अध्ययनरत था तभी से मेरे मन में विचार आया कि मेरी यह अध्ययन यात्रा अनवरत चलती रहे। अतः इसकी वृद्धि के लिए शोध–कार्य का मार्ग ही श्रेयस्कर तथा समुचित होगा।

पूजनीय माता–पिता का तो मैं आजीवन ऋणी हूँ जिन्होंने अपने वात्सल्य रूप पुष्प वर्षा द्वारा मेरा उत्साहवर्द्धन किया।

तत्पश्चात् मैं प्रतिश्वास–वन्दनीय गुरुवर्या डॉ. सुदेश आहूजा जी का जीवन पर्यन्त अन्तःकरण से आभारी हूँ, जिन्होंने स्नेहपूर्वक मुझ अल्पज्ञ के लिए अपना अमूल्य समय निकालते हुए शोध–कार्य हेतु पग–पग पर मेरा मार्गदर्शन किया है।

उसके बाद मैं अपने अग्रज भ्राता गिरीश शर्मा तथा अनुज लोकेश शर्मा का भी आभारी हूँ जिन्होंने हमेशा मेरा उत्साहवर्धन किया है। अपने साथी राकेश गौड़, गणेश गौतम, पंकज वैष्णव, शक्ति सिंह, केशव शर्मा, मोहित शर्मा, प्रदीप जैन, धनराज महावर, अजय कहार, गजेन्द्र सिंह, गौरव शर्मा का भी, मेरे पूर्ण सहयोग के लिए धन्यवाद करता हूँ।

उत्तम टङ्कण कार्य के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा जंक्शन धन्यवाद की पात्र है, जिसने मुझे यथासम्भव सहायता प्रदान की। अन्त में इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले सभी का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

यद्यपि शोध–प्रबन्ध के टंकण एवं प्रुफरीडिंग का कार्य पर्याप्त सावधानी से किया गया है तथापि मानव प्रकृतिवश कुछ त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है जिसके लिए मैं सुधी पाठकों का क्षमा प्रार्थी हूँ।

विनयानवत

सतीश कुमार शर्मा

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

शोध–सार i - ii

प्राक्कथन iii - iv

प्रथम अध्याय : डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 1 – 44

(1) डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व

(क) जन्म एवं शिक्षा–दीक्षा

(ख) काव्य सर्जन की प्रेरणा

(ग) अध्यापन कार्य

(घ) विद्वज्जन सम्पर्क

(ङ) असाधारण व्यक्तित्व

(च) संस्कृत के प्रति समर्पित

(2) डॉ. जगन्नाथ पाठक का कृतित्व

(क) मुक्तक काव्य रचना

(ख) अनुदित साहित्य

(ग) सुभाषित साहित्य

द्वितीय अध्याय : मुक्तक साहित्य के उद्‌भव तथा विकास 45–100

(1) प्राचीन मुक्तक साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

(2) आधुनिक मुक्तक साहित्य

तृतीय अध्याय : डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक व व सांस्कृतिक अध्ययन 101–159

(1) समसामयिक अध्यन

(क) यथार्थवाद

(ख) मानवीय संवेदना

(ग) सामाजिक विसंगतियाँ

(घ) प्रेम–प्रणय

(2) सांस्कृतिक अध्ययन

(क) जीवन–दर्शन

(ख) राष्ट्रीय–भावना

(ग) ईश्वर–सत्ता

(घ) जीवन–मूल्य

चतुर्थ अध्याय : डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अनुशीलन **160–187**

(1) भाषा

(2) भाव सौन्दर्य

(3) छंद

पंचम अध्याय : डॉ. पाठक का अनुदित साहित्य **188–229**

(1) अनुवाद की परिभाषा एवं उपयोगिता, भारतीय अनुवाद परम्परा

(क) अनुवाद की परिभाषा एवं उपयोगिता

(ख) भारतीय अनुवाद परम्परा

(2) 'गालिबकाव्यम्' का अध्ययन

(क) मूल रचनाकार तथा रचना का परिचय

(ख) ग़ालिबकाव्यम् की महत्त्वपूर्ण ग़ज़लों का अध्ययन

षष्ठ अध्याय : डॉ. पाठक कृत सुभाषित साहित्य में जीवन के शाश्वत मूल्यों का चिन्तन **230–280**

(1) सुभाषित सूक्ति की परिभाषा व महत्त्व

(2) जगन्नाथ सुभाषितम् में जीवन के शाश्वत मूल्यों का चिंतन

सप्तम अध्याय : डॉ. पाठक का आधुनिक संस्कत साहित्य में स्थान **281–288**

उपसंहार **289–293**

शोध–संक्षेपिका **294–301**

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका **302–306**

डॉ. जगन्नाथ पाठक–वाङ्मय

सहायक–ग्रन्थ

छन्दोव्याकरणकोषेतिहासादिग्रन्थ

शोध–पत्रिकाएँ

प्रकाशित शोध–पत्र

प्रथम अध्याय

आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(1) डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को पल्लवित–पुष्पित करने वाले, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के धनी, ज्ञान–विज्ञान, कला, धर्म, दर्शन, काव्यशास्त्र, इतिहास, व्याकरण आदि के प्रकाण्ड विद्वान, संस्कृत साहित्य सृजन में संलग्न, माँ भारती की सेवा में अहर्निश संलग्न, आकर्षित व्यक्तित्व से परिपूर्ण, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को अपनी नूतन चिन्तनधारा और द्राक्षारसमयी नवीनमुक्तककाव्य रचनाओं से सिंचने वाले आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक का आधुनिक संस्कृत जगत् में विशेष स्थान है। अपनी असाधारण प्रतिभा और अद्भुत भावाभिव्यक्ति के बल पर यथार्थ और कल्पना की पृथक्–पृथक् धाराओं का काव्य के एक ही धरातल पर समवेत अवतरण करने का सामर्थ्य डॉ. पाठक में झलकता है। संस्कृत साहित्य का शायद ही कोई सहृदय डॉ. पाठक के संस्कृत के प्रति समर्पित व्यक्तित्व से अपरिचित हो। ऐसा अद्भुत तथा विलक्षण व्यक्तित्व ईश्वरीय कृपा से ही संभव है। संस्कृत के प्रति समर्पित ऐसे ही व्यक्तित्वों के कारण पुरातनता की बेड़ियों व पाण्डित्यपूर्ण भाषा–शैली से बोझिल संस्कृत भाषा आज आधुनिकता का नवीन परिधान पहनकर विश्व रंगमंच पर नित नवीन विधाओं में अपनी ग्राहणक्षमता का लोहा मनवाती हुई पुराणी युवतिः के रूप में अपनी नवीन भंगिमाओं के साथ सुसज्जित है। डॉ. पाठक लेखन व सृजन की दृष्टि से ही लोक व्यवहार व अपने सहज, सरल, मधुर व्यक्तित्व के कारण भी प्रसिद्ध है।

साहित्य किसी भी रचनाकार के अन्तस् व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होता है। जीवन को इस संवेदना के स्तर पर जीना कि वह शब्दों का आकार ले समाज को नवीन प्रेरणा दे ऐसा कोई संवेदनशील व्यक्ति ही कर सकता है और उसी संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी है डॉ. जगन्नाथ पाठक। डॉ. पाठक के बहु–आयामी व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बाँध पाना ठीक वैसे ही है जैसे पंगु होते हुए भी गिरिलङ्घन का प्रयास करना। विनम्रता,

सहजता, सरलता, निरहंकारता, मित्रवत्सलता आदि आपके व्यक्तित्व के ही पर्याय है। डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व अप्रतिम है, विलक्षण है, दैव प्रदत्त है और इनके व्यक्तित्व को पाकर तो संस्कृत जगत् भी गौरवान्वित महसूस करता है। नारायण दाशः डॉ. पाठक के विषय में लिखते है। कि **"आधुनिक–संस्कृत– गद्य साहित्य–विषयम् अधिकृत्य समायोजितायां राष्ट्रियसंगोष्ठयां सागर विश्वविद्यालयस्य अतिथिभवने प्रथमवारं डॉ. जगन्नाथ पाठक महोदयैः सह मम परिचयः अभवत्। पारम्परिकवस्त्रैः सुशोभितं सर्वकायं कृशमपि तेषां तेजोदीप्तंशरीरं मम पुरतः आसीत्। वस्तुतः संस्कृत–काव्यशास्त्राध्ययनकालादेव तेषां व्याख्यानग्रन्थैः सह बौद्धिकसाक्षात्कारः जातः आसीत्। तथापि अयं कायिकः साक्षात्कारः मम मानसपटले आम्लानं स्थास्यति चिरं शिलालिखितमिव। श्रीमतां पाठक महोदयानां काव्यपठनेन काचिदपूर्वा स्फूर्तिः आयाति सहृदयस्य। गेयात्मकशब्दयोजना एव तत्र कारणमिति मम विचारः। तादृशानां काव्यानां विषये इदमित्थंतया किमपि कथनं मम दुसाहस स्यादिति विरमाति ततः।"**[1]

संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले डॉ. पाठक का हिन्दी, उर्दू–फारसी, प्राकृत आदि भाषाओं पर भी पूर्ण अधिकार है। डॉ. पाठक ने संस्कृत भाषा की सर्वग्राह्यता व शाश्वतता को समझकर उसे आमजन तक पहुँचाने का अथक श्रम किया है। आपने पुरातनता व नवीनता के मध्य समरसता का सेतु बाँधकर संस्कृत काव्य धारा को एक नवीन दिशा प्रदान की है। इनकी काव्य रचनायें जीवन को एक अद्भुत आनन्द व नवस्फूर्ति प्रदान करती है। इनकी रचनायें यह प्रमाणित करती हैं कि भारतीय संस्कृति की प्राणभूता संस्कृत भाषा में युगोपरान्त भी वही ग्राहण क्षमता व शाश्वतता है जो शाश्वत जीवन मूल्यों को अपनी ऊर्जा प्रदान करती रही है। डॉ. पाठक अपने युग–दायित्व के प्रति सदा सावधान रहे हैं। जीवन मूल्यों की संयोजन–प्रक्रिया में एक स्तर पर तो वह अपनी शाश्वत, स्वस्थ एवं भव्य परम्परा को नयें रूप में स्थापित करके सहज ग्राह्य बनाने में तल्लीन दिखते हैं, तो दूसरे स्तर पर साहित्य के तेज नश्तर से सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, विषमताओं के मूलोच्छेद में व्यस्त प्रतीत होते हैं। डॉ. पाठक ने किसी पण्डित की तरह शब्द जोड़कर रचना नहीं कि अपितु कुछ नए कथ्य और सादगीपूर्ण शैली के

साथ वे उपस्थित हुए जो एक ओर उन्हें संस्कृत की सुदीर्घ एवं ऐश्वर्यशाली परम्परा से जोड़ता है तो दूसरी ओर संस्कृत को उन नवीनताओं से मण्डित करता है, जो संस्कृत में नहीं थी।

ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व तथा कृतित्व के धनी आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं जैसे जन्म, शिक्षा, अध्यापन कार्य, सम्मान, उनके जीवनसंघर्ष के कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को आपके समक्ष रखना मेरा उद्देश्य है।

(क) जन्म एवं शिक्षा–दीक्षा

आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक का जन्म सम्वत् 1990 फाल्गुन मास कृष्ण पक्ष, तदनन्तर, तृतीया, तदनुसार 2 फरवरी 1934 ई. को सासाराम (सहसराम) जिला रोहतास (बिहार) में हुआ। इनका कर्म क्षेत्र उत्तरप्रदेश है। उत्तर–प्रदेश की भूमि धन्य है जिसने संस्कृत साहित्य के परिवर्धन और संस्कृत साहित्य को नया आयाम देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया है। प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी, मनुदेव भट्टाचार्य, प्रो. वायुनन्दन पाण्डेय, प्रो. शिवजी उपाध्याय आदि अनेक ऐसे कवि हैं जो निरन्तर संस्कृत की सेवा सुश्रुषा में लगे हुए हैं।

अपने जन्म स्थान में रहते हुए डॉ. पाठक ने बिहार संस्कृत एसोशिएशन की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की और साहित्य की शास्त्री कक्षा में प्रवेश लिया।[2] डॉ. जगन्नाथ पाठक ने उच्च शिक्षा के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। इस विषय में डॉ. रेखाप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–

"विश्रुतनामानः पाठकोपाह्वयाः कविवर्य्याः पण्डितश्रीजगन्नाथाः काशीहिन्दूविश्व–विद्यालयस्य संस्कृतविद्यासंकाये साहित्यविभागे 1951 वर्षस्य जुलाई–मासे त्रिवर्षीयायाः शास्त्रिकक्षायाः प्रथमेवर्षे प्राविक्षन्, अहमासं तदानीं तस्या एव कक्षाया द्वितीयवर्षेऽधीयानस्तत्रैव।"[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. पाठक ने 1954 में शास्त्री कक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने 1957 में शास्त्राचार्य की परीक्षा भी वहीं से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। काशी से ही 1964 में एम.ए. (हिन्दी) द्वितीय श्रेणी तथा 1965 में एम.ए. (संस्कृत) प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् 1968 में 'धनपाल कृत तिलकमञ्जरी का आलोचनात्मक अध्ययन' नामक विषय पर शोधोपाधि प्राप्त की। आपका अध्ययन का अधिकतम समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही बीता है। आपका शैक्षणिक ध्येय विश्वविद्यालय प्रोफेसर बनना तथा मन से सुरभारती की सेवा करते हुए समाज को नवीन दिशा देना ही था।

(ख) काव्य सर्जन की प्रेरणा

साहित्य में आपकी रुचि वस्तुतः पूर्वजन्मार्जित है। अध्ययनकाल में ही वे अपनी सर्जनशील प्रतिभा से अपने गुरुजनों और मित्रों को प्रभावित करते रहे हैं। आपका जन्म एक परम्परावादी पण्डित परिवार में हुआ। आप पण्डित रामरूप पाठक के भतीजे हैं। शास्त्री कक्षा में प्रवेश करते समय ही आपके मन में संस्कृत में श्लोक–निर्माण की इच्छा सुगबुगाने लगी। डॉ. शिवकुमार मिश्र के साथ हुए संलाप में आपने स्वयं कहा है– "मेरे पितृव्य चित्रकवि स्व. पं. रामरूप पाठक, जिन्हें बाद में उनके 'चित्रकाव्य– कौतुकम्' पर साहित्य अकादमी का प्रतिष्ठित पुरस्कार मिला, जिन्होंने काशी से मेरे लिए 'काव्यमाला' का चतुर्थ–गुच्छक' लाकर दिया, जिसमें क्षेमेन्द्र कृत कवि कण्ठाभरण संग्रहित है। उन्होंने मुझे इस रचना को ध्यान से पढ़ने का निर्देश भी दिया। मैं इस निर्देश से प्रेरित होकर दण्डीकृत दश–कुमारचरित (पूर्वपीठिका) की कथा को श्लोकबद्ध करने का प्रयास करने लगा। छन्द और व्याकरण की त्रुटियों की परवाह किये बगैर कुछ दूर तक लिखता गया। समय–समय पर इस बीच श्लोक निर्माण का निर्देश भी मैं अपने पितृव्य से पाता रहा। वे अपने श्लोक मुझे सुनाते और कभी कालिदास, भारवि, माघ के पद्य के अर्थ समझाते तो मैं अपने भीतर से उल्लसित अनुभव करता। जब कुछ अभ्यास ओर बढ़ा, तभी किरातार्जुनीयम् के कथानक को आधार बनाकर सर्गबद्ध महाकाव्य की रचना में प्रवृत्त हो गया। धीरे–धीरे इसके दो चार सर्ग भी पूरे हो गये। बाद में काशी आकर उसे अठ्ठारह सर्गों में पूरा किया।"[4]

इस प्रकार छात्रावस्था में ही आपमें काव्यसर्जन की प्रतिभा अंकुरित हो गई थी।

(ग) अध्यापन कार्य

शिक्षा तथा शोध के अनन्तर आपने सर्वप्रथम श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली में अध्यापन प्रारम्भ किया। इसके बाद श्री गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ (प्रयाग) में व्याख्याता के पद पर कार्य किया। इसके बाद वहीं पर 5 वर्षों तक प्रवाचक (रीडर) पद पर कार्य किया। इसके बाद श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू में लगभग 6 वर्षों तक प्राचार्य रहे। अन्त में सन् 1994 में श्री गङ्गनाथ झा केन्द्रीय विद्यापीठ, इलाहबाद में प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त हुए।

(घ) विद्वज्जन सम्पर्क

आपके प्रेरक गुरु आपके पितृव्य पं. रामरूप पाठक थे। इसके बाद काशी में आपको अपने गुरु कवितार्किक चक्रवर्ती पं. महादेव शास्त्री का सानिध्य प्राप्त हुआ। उर्दू का ज्ञान आपको प्रसिद्ध उर्दू शायर स्व. अल्ताफ हुसैन 'मानूस' से प्राप्त हुआ।

हिन्दी व संस्कृत के उत्तम कोटि के विद्वान् राममूर्ति त्रिपाठी भी आपके साथ सन् 1950 से रहे हैं।[5] राममूर्ति त्रिपाठी स्वयं लिखते हैं कि– "अनुजकल्प विद्वत्प्रवर डॉ. जगन्नाथ पाठक छात्र जीवन से ही मेरे आत्मीयों में रहे हैं। इनकी विनम्रता, सहृदयता और वैदुष्य ने मेरे मानस को निरन्तर प्रभावित किया है और इस प्रभावनप्रक्रिया का नैरन्तर्य देश और काल के व्यवधान के बावजूद बराबर बना रहा–जो कहीं क्वचित् ही होता है।"[6]

शिव कुमार मिश्र के साथ संलाप में डॉ. पाठक कहते हैं कि– "मेरे काव्य सखाओं में प्रथम उल्लेखनीय है रेवाप्रसाद द्विवेदी। अध्ययनकाल में हम एक साथ रहते थे और प्रायः प्रतिदिन एक–दूसरे की रचना सुनते–सुनाते थे। दूसरे मेरे परम सुहृद, जो अब नहीं रहे, ब्रजमोहन चतुर्वेदी थे। उन्होंने मुझे बहुत उत्साहित किया। 'कापिशायनी' के प्रत्येक पद्य को वे एक–एक चषक की संज्ञा देते थे।"[7]

इसके अतिरिक्त अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कलानाथ, स्व. प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व. प्रो. सिद्धेश्वर भट्टाचार्य, डॉ. जयशंकर त्रिपाठी, हरिदत्त शर्मा, केशवचन्द्रदाश, श्रीरञ्जनसूरिदेव, उमेशदत्त भट्ट, मारुतिनन्दन पाठक, हर्षदेव माधव, बनमाली विश्वाल, शिवकुमार मिश्र, चन्द्रधर शर्मा, विद्यानिवासमिश्रः, रामकरण शर्मा, के.के. बिरला, सी.एम.

नईम, श्रीधरभास्करवर्णेकरः, एन.पी.उण्णी, एन.एस. रामानुजताताचार्यः, बच्चूलाल अवस्थी, शिवजी उपाध्याय, लक्ष्मीकान्त वर्मा, श्रीमती नीरजा 'रेणु', धमेन्द्र कुमार गुप्त, गोपीचंद नारंग, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, रामानारायण मिश्रः, सुबोधचन्द्रपन्त, ब्रह्मदेवशास्त्री, नवजीवन रस्तोगी व वनेश्वर पाठक आदि विद्वानों ने आपकी रचनाओं पर समीक्षा की है। इस प्रकार अर्वाचीन संस्कृत के लगभग सभी विद्वानों से आपका सम्पर्क रहा।

(ङ) असाधारण व्यक्तित्व

व्यक्तित्व मनुष्य के सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। व्यक्तित्व में विकास में केवल हमारी मूल प्रवृत्तियों का ही प्रभाव नहीं रहता अपितु विभिन्न प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्ति के कार्य एवं प्रकृतियों में उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम तथा पारिवारिक वातावरण भी अपना प्रभाव डालते हैं। शिक्षा के फलस्वरूप विभिन्न अर्जित व्यवहार भी किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करते हैं।

डॉ. जगन्नाथ पाठक शाश्वत सामञ्जस्य व्यक्तित्व के धनी है। आपका सृजनशील व्यक्तित्व आपके गुरुजनों तथा मित्रों को हमेशा प्रभावित करता है। डॉ. शिवकुमार मिश्र डॉ. जगन्नाथ पाठक के व्यक्तित्व के विषय में कहते हैं कि–

"साधारण कद, ईषद्श्यामल वर्ण, शालीन वेशभूषा, सहज व्यक्तित्व, उच्च–विचार, मृदु–मितवचन, काव्य और शास्त्र में गंभीर वैदुष्य, संस्कृत के अतिरिक्त पालि, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में दक्षता, सृजन के प्रति सहज समर्पित, काव्यरचना में विश्रुत–कीर्ति इन सबसे मिलकर जो तस्वीर उभरती है, वह सुकवि जगन्नाथ पाठक की है।"[8]

इस प्रकार डॉ. पाठक का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक तथा सम्मोहक तथा भावुक प्रकृति वाला है। शिवकुमार मिश्र पाठक जी के व्यक्तित्व के विषय में कहते हैं– पाठक जी अन्दर–बाहर सरल है। देखकर कोई भी इन्हें कवि नहीं कह सकता, क्योंकि अधिसंख्य कवियों की वेश–भूषा, वाणी एवं व्यवहार कुछ विलक्षण ही होते हैं। "विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्" प्रतीत होता है, इनमें रच–बस गया है। लेखन ही इनका सर्वस्व है।[9]

डॉ. श्री रंजन सूरिदेव पाठक जी के व्यक्तित्व के विषय में लिखते हैं– "अनूचान मनीषियों में पांक्तेय आचार्य जगन्नाथ पाठक संस्कृत और हिन्दी के मनीषापुरुषों में शिखरस्थ है। इनकी विद्वता जितनी उच्छिन्त है, नम्रता उससे कहीं अधिक ऊँची हैं वह कविवर बिहारी के जेतौ नीचो ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होई। इस नीतिवाक्य के साकार विग्रह है। इनकी भडता इनकी विद्वता पर सदैव हावी रहती है। इस विचार से ये 'विद्या ददाति विनयम्' इस नीतिवचन को भी अक्षरशः अन्वर्थ करते हैं। यह अपनी इयत्ता में भारतीय आर्ष परम्परा के प्रतिनिधि है, तो इदृक्ता में विद्वत् परम्परा का प्रति–निधित्व करते हैं। सच पूछिए तो इनके धीश्वर व्यक्तित्व और निष्काम सारस्वत कर्तृत्य के बीच किसी प्रकार की विभाजक रेख नहीं खींची जा सकती है क्योंकि दोनों में अभेद भाव सम्बन्ध है।"[10]

शायद महानतम् लोग सबसे सरल होते हैं अतः पाठक जी की सहजता व सरलता सभी को अभिभूत कर देती है। आप एक स्वच्छ, सरल, ह्रदय एवं महनीय व्यक्तित्व के धनी है। उनकी वेशभूषा, वाणी, व्यवहार, आचार–विचार सभी सूफी साधक की तरह बाह्याडम्बरों से मुक्त है।

(च) संस्कृत के प्रति समर्पित

डॉ. जगन्नाथ पाठक संस्कृत के प्रति पूर्णतया समर्पित है। उनका सम्पूर्ण जीवन संस्कृत के प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित है। वह जन्म–जन्मान्तर तक संस्कृत सेवक ही बनना चाहते हैं। उनकी रचनाओं में उनका संस्कृत के प्रति प्रेम और आदर का भाव प्रमाणिक होता है। उन्होंने 'जगन्नाथसुभाषितम्' में संस्कृत को भारतीयों की भाषा बतलाया है–

"संस्कृतमियं पुराणी न सुराणामेव केवलं भाषा।
भाषाणामपि जननी नैकासां भारतीयानाम्।।"[11]

डॉ. पाठक वर्तमान में हो रहे संस्कृत लेखन में देवभाषा के उपहास से चिन्तित है, वे कहते हैं कि– "संस्कृत में कुछ रचनाकार मर्यादाओं का धड़ल्ले से उल्लंघन कर रहे हैं, यह ठीक नहीं। संस्कृत का संस्कृतत्व यही है कि अपने स्थापित नियमों में मर्यादित रहे। अतः पाणिनीय व्याकरण का निरन्तर अनुशीलन ही हमारी भाषा को संस्कृत रख सकता है, ऐसी मेरी मान्यता है। साथ ही, हमें कठिन और कठोर प्रयोगों से बचना चाहिए।"[12]

इस प्रकार पाठक जी संस्कृत के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य संस्कृत को अपनी पुरातन पहचान दिलवाकर आमजन की भाषा बनाना है।

1. प्रकाशित संस्कृत काव्य कृतियाँ

(i) कापिशायनि, 1980 श्री गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहबाद

(ii) मृद्वीका, 1983, श्री गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहबाद

(iii) पिपासा, 1987

(iv) विच्छित्तिवातायनी, 1992

(v) आर्यासहस्रारामम्, 1995

2. मौलिक रचना (हिन्दी में)

(i) थेरीगीत गाथा (1998)

(ii) पत्रलेखा के पत्र, 1981

3. अनूदित रचनाएँ

(i) गालिब–काव्यम्, 2003

(ii) कामायनी (अप्रकाशित)

(iii) आँसू (अप्रकाशित)

4. हिन्दी में संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद

(i) हर्षचरित (बाणभट्ट)

(ii) ऋग्वेदभाष्यभूमिका (रामायण)

(iii) कुहट्नीमतम् (दामोदर गुप्त)

5. पालि से संस्कृत में अनुवाद

(i) मिलिन्द प्रश्नः (अंशतः प्रकाशित)

6. फारसी से हिन्दी में अनुवाद

(i) दाराशिकोह की 'मज्मउलबहरैन' (समुद्रसंगमः) का सम्पादन और हिन्दी अनुवाद, 2005

(ii) चिरागे दैर (देवालयदीपम्) ग़ालिब द्वारा फारसी में रचित बनारस वर्णन का अनुवाद (अप्रकाशित)

7. संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद

(i) रसमञ्जरी (भानुदत्त)

(ii) ध्वन्यांलोकलोचन

8. प्राकृत ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद

(i) गाथासप्तशती (हाल सातवाहन)

9. आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डे कृत ग्रंथों का हिन्दी–अनुवाद

(i) सौन्दर्य दर्शन विमर्श

(ii) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

(iii) भक्तिदर्शन विमर्शः

10. सम्पादित तथा प्रकाशित संस्कृत–ग्रंथ

(i) काव्यप्रकाश (तीन टीकाओं सहित), सह सम्पादन, 1976

(ii) आर्यशूर कृत जातकमाला, सहसम्पादन, 1971

(iii) कृष्णदत्त जानराजचम्पू, 1979

(iv) हरिदेव मिश्र विरचित जहाँगीर विरुदावलि, 1979

(v) रघुदेव मिश्र कृत शाहजहाँ विरुदावलि, 1979

(vi) पद्य, रचना, सुभाषित संग्रह, 1979

(vii) बाणीविलासितम्, 1981

(viii) त्रिलोकनाथ मिश्र कृत उर्मिलाशतकम्, 1980

(ix) सुभाषितहारावली, 1984

(x) जगन्नाथ विरचित, इतिमन्यथ नाटक, 1983

11. हिन्दी में प्रकाशित अन्य पुस्तकें

(i) आलोचना मम्मटः, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

(ii) बाणभट्ट का रचना संसार

(iii) आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास

12. प्रधान सम्पादकत्व

(i) गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहबाद द्वारा अन्ताराष्ट्रिय

13. सम्पादक

(i) भोजपुरी–कोष हिन्दी संस्थान, लखनऊ

(ii) आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, उ.प्र. संस्कृत संस्थान, लखनऊ

14. पुरस्कार एवं सम्मान

(i) कापिशायनी पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार

(ii) मृद्वीका पर के.के. बिड़ला फाउण्डेशन का वाचस्पति पुरस्कार

(iii) पिपासा पर उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी पुरस्कार

(iv) विच्छित्तिवातायनी पर उ.प्र. संस्कृत अकादमी का विशिष्ट पुरस्कार

(v) विच्छित्तिवातायनी पर राजस्थान संस्कृत अकादमी का अखिल भारतीय काव्य पुरस्कार

(vi) आर्यासहस्रारामम् पर उ.प्र. संस्कृत संस्थान, लखनऊ का कालिदास पुरस्कार

(vii) गालिब काव्यम् पर उ.प्र. संस्कृत संस्थान, का विशेष पुरस्कार

(viii) हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा संस्कृत महामहोपाध्याय की उपाधि

(ix) राँची संस्कृत सम्मेलन द्वारा 'संस्कृतरत्नम्' से सम्मानित

(x) उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा महर्षि वाल्मीकि पुरस्कार

(xi) ग़ालिबकाव्यम् पर साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा अनुवाद पुरस्कार

(xii) पं. हेरम्भ मिश्र स्मति का 'शब्द शिखर' सम्मान

(xiii) आशादीप परिवार प्रीतम नगर इलाहबाद की ओर से साहित्य शिखर सम्मान

15. पद–प्रतिष्ठा विवरण

(i) पूर्व सदस्य – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

(ii) पूर्वसदस्य – परामर्शदात्री समिति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

(iii) सदस्य – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली की ओर से 'शास्त्रचूडामणि' योजना के अन्तर्गत

(iv) फैलो–इलाहबाद संग्रहालय के संस्कृति विभाग में

(v) विजिटिंग प्रोफेसर–कामेश्वर सिंह, दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, बिहार में

16. अन्य उपलिब्धयाँ

(i) दृग्भारती षड्मासिक पत्रिका इलाहबाद के अध्यक्ष

(ii) इलाहबाद तथा जम्मू के आकाशवाणी केन्द्रों द्वारा प्रसारित संस्कृत काव्य पाठ वार्ताएँ तथा नाटक

(iii) अखिल भारतीय स्तर के संस्कृत कवि–सम्मेलनों में काव्य पाठ

(iv) राष्ट्रिय, अन्तराष्ट्रिय गोष्ठियों में अध्यक्ष के रूप में शामिल

17. शोध–कार्य

आपकी रचनाओं पर कई छात्रों ने लघु–शोध तथा शोधग्रंथ प्रस्तुत किये हैं। उपलब्ध बायोडाटा के आधार पर जानकारी निम्न है–

(i) कापिशायनी पर अध्ययन, कुमारी अंजना माथुर, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1983 (लघुशोध)

(ii) जगन्नाथ पाठक व्यक्तित्व और कृतित्व, कुमारी अर्चना रावत, सागर विश्वविद्यालय, 1992

(iii) जगन्नाथ पाठक व्यक्तित्व और कृतित्व, लतिका देवी, अजमेर विश्वविद्यालय

(iv) विच्छित्रि–वातायनी पर अध्ययन, अनिल कुमार पाठक, जम्मू विश्वविद्यालय (लघुशोध)

(v) जगन्नाथ पाठक व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अनिल कुमार पाठक, जम्मू विश्वविद्यालय

(vi) पं. जगन्नाथ पाठक कृत 'सहस्रारामम्' का समीक्षात्मक अध्ययन (लघुशोध) कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि डॉ. जगन्नाथ पाठक के विलक्षण तथा बहु–आयामी व्यक्तित्व के पीछे ईश्वर की असीम अनुकम्पा तथा उनके पितृत्व व गुरुजनों का अलौकिक आशीर्वाद ही कार्य कर रहा है। इस तरह के प्रतिभा सम्पन्न कवि, चिन्तक, साहित्यकार का होना संस्कृत काव्य जगत के लिए बहुत गौरव की बात है। ऐसी असाधारण प्रतिभा व असामान्य व्यक्तित्व का समाज में सहज व सरल रूप में होना आश्चर्य की बात है। शैशवकाल से ही संघर्षो के मार्ग पर चलते हुए डॉ. पाठक असाधारण, अतुलनीय, प्रेरणादायक व्यक्तित्व के धनी बन गये। आप सहज, सरल, बहुमुखी प्रतिभा के सम्पन्न तथा साहित्य की महिमा से मण्डित व्यक्तित्व हैं। निश्चितरूपेण डॉ. पाठक का व्यक्तित्व सबको अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ है।

(2) डॉ. जगन्नाथ पाठक का कृतित्व

अतुलित प्रतिभा के धनी डॉ. जगन्नाथ पाठक का संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान रहा है। डॉ. जगन्नाथ पाठक ने अपनी लेखनी से संस्कृत साहित्य जगत् को ऐसे अद्भुत मुक्ताकण प्रदान किये हैं जो अपनी दुग्धधवलता कांति से समस्त साहित्य जगत् को प्रकाशमय कर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश की पावन भूमि को विभूषित करने वाले डॉ. जगन्नाथ पाठक की रचनाओं (1980 से 2013 तक) का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(क) मुक्तक साहित्य

(i) कापिशायनी

संस्कृत कविता वर्तमान में पुरातनता के मोह को छोड़ नवीन भावबोध के साथ सम्पूर्ण साहित्य जगत् में अपने को सिद्ध कर रही है। प्राचीन मान्यताओं, पौराणिक सन्दर्भों

और प्रचलित अलंकारों को छोड़कर नये वाग्विलास के साथ संस्कृत कविता का पदार्पण उसको 'युवती पुराणी' के रूप में सिद्ध करता है।

इसी धारा को आगे बढ़ाने वाली 'कापिशायनी' डॉ. जगन्नाथ पाठक द्वारा रचित एक मुक्तक काव्य है। चक्रधर बिजल्वान ने 'नवोन्मेषः' में अपने एक लेख अशीत्युत्तरवर्त्ती आधुनिक संस्कृत साहित्य की दार्शनिक चेतना में मुक्तक काव्यों के अन्तर्गत अन्योक्तिपरक मुक्तक में कापिशायनी का उल्लेख किया है।[13] कापिशायनि में डॉ. जगन्नाथ पाठक ने उर्दू शेरों की शैली के माध्यम से अनेकानेक भावों की सफल अभिव्यक्ति की है। इस रचना के अधिकतर मुक्तको में प्रमुख रूप से तो वियोग श्रृंगार की ही झलक मिलती है, किन्तु संयोग व वियोग के मधु चषक की भूमिका प्रणयी को काफी हद तक दार्शनिक की स्थिति पर पहुँचा देती है। प्रकारान्तर में कहा जाए तो जीव (प्रणयी), ब्रह्म (प्रणयिनी) तथा माया (मधुचषक) के रूप में भी इसी त्रिकोण का बिम्ब उभरता है। वस्तुतः जीव व ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, यथा–

तव वा मम वाऽस्ति जीवने काचिद् परमार्थतोभिदा।
अयि रूपिणि! रूपमेव ते कुरुते दर्शक दृश्य भावनम्।।[14]

अर्थात् वस्तुतः जीवन में ईश्वर से भिन्न तेरा अथवा मेरा कुछ भी नहीं है। जीव तथा ब्रह्म एक ही है। माया के वशीभूत होकर जीव स्वयं को ब्रह्म से अलग समझकर जगत् के मोहजाल में फंस जाता है।

वेदना व निराशा की अनुभूति भी दार्शनिकता का एक विशिष्ट पहलू है, देखिये–

जलमध्येगता महोर्मयो मम नावं तट्भूमिमानयन्
तटभूमिगता लघूर्मयो मम नावंशनकैर्न्यमज्जयन्।।[15]

डॉ. जगन्नाथ पाठक कृत कापिशायनी 1980 में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, इलाहबाद से प्रकाशित हुई। इसका सम्पादन डॉ. गयाचरण त्रिपाठी, प्राचार्य गंगानाथ झा केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहबाद ने किया। त्रिपाठी जी इसे मुक्तक काव्य की संज्ञा प्रदान करते हैं–

"Kapisayani is not a khandekavya but a Muktak where every stanza has got it own independent existence. The stanzar read together may not do they follow a single line of thought. But this is intentional."[16]

हिन्दी साहित्य में कवि हरिवंशराय बच्चन ने 'मधुशाला' एक नवीन प्रयोग किया उसी प्रकार संस्कृत में भी ऐसे नवीन प्रयोग होने लगे। इनमें पं. विद्याधर शास्त्री की 'मत्तलहरी' एक अभिनव प्रयोग ही है। इस रचना में ऐसा प्रतीत होता है जैसे शास्त्री जी मद्यपानादि के लिए आमन्त्रित कर रहे हैं लेकिन वस्तुतः वे व्यंग्य कौशल के माध्यम से भोग परायण संस्कृति का खण्डन करते हैं। ठीक इसी प्रकार कसी कृति है कापिशायनी।

कापिशायनी के मुक्तक पद्यों को चषकों की संज्ञा दी गयी हैं। अपने छात्र जीवन के दौरान पाठक जी ने अनेक चषकों की रचना की और उनका पान कर वे भावविह्वल हो जाया करते थे और नये चषक की प्रतीक्षा में सदा आतुर रहते थे। अतः पाठक जी कहते हैं–

"चषका इहजीवने मया परिपीता अपि चूर्णिता अपि।
मदमेष बिभर्मि केवलं क्षणपीतस्य मधुस्मितस्य ते।।"[17]

अर्थात् जीवन में अनेक चषक पिये किन्तु नशा नहीं हुआ लेकिन तुम्हारी मधुर मुस्कान के क्षण मात्र का नशा भी आज तक बना हुआ है।

डॉ. ब्रजमोहन चतुर्वेदी कहते हैं कि कापिशायनी के चषक आधुनिक उर्दू के शेरों की सी मधुर भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति में बहुत पटु हैं। ये भाव विशेष का मनोहर संकेत मात्र करते हैं जो सहृदय की हृत्कलिका को अनायास उन्मीलित कर देते हैं। इस सम्बन्ध में एक चषक प्रस्तुत है–

"मधुपान गृहस्य योषितां प्रथगेव व्यवतिष्ठते क्रमः।
मधु तं परिपायन्ति यो नयनामपि वेद भाषितम्।।"[18]

अर्थात् मधुपान गृह की वरांगनाओं द्वारा उसी को मधुपान कराया जाता है जो उनके नेत्रों कीभाषा को भी समझ लेता है।

वस्तुतः जीवन में सौन्दर्य ही मधु है जिसकी अनुभूति नाना स्वरूपों में होती है और उस अनुभूति से अनुप्राणित होकर उसे पुनः पाने की ललक की अभिव्यक्ति इन चषकों में

सुतरां हुई है।[19] कवि मधु रूप उस सौन्दर्य को पाकर भी उससे सन्तुष्ट नहीं होता, वह तो उस अमृत मधु की तलाश में हैं जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति करा सके। यथा–

"अमृताय कियन्नु कांक्षितं यदि पूर्णं मधु काचिदर्पयेत्।
अमृतं मधुरं हि केवलं मधुरोन्मादकलक्षणं मधु।।"[20]

इसी प्रकार के कुछ भाव पं. विद्याधर शास्त्री के 'मत्तलहरी' में भी प्राप्त होते है। अलौकिक सुरा को पृथिवी पर प्राप्त करके तृप्तिपर्यन्त तक उसका पान करना चाहता है–

"सनातनीयं लहरी सुराणां
पिबाम सोमम् अमृता अभूम
आतृप्रिपेयो रस एष तस्ताम्
अलौकिकः कोऽपि भुवि प्रसूतः।।"[21]

कापिशायनी द्राक्षारक्ष के मधु के वह चषक हैं जो कवि के हृदयास्थ माधुर्य, सौन्दर्यानुभूति और प्रेम की अलौलिकता व पराकाष्ठा सबका एक साथ दिग्दर्शन कराते हैं।

कापिशायनी का नामकरण

कापिशायनी शब्द की सिद्धि पाणिनि सूत्र 'कापिश्याः ष्फक्' (4/2/99) से हुई है। कापिश्यां जातादि कापिशायनं मधु कापिशायनी द्राक्षेतिसूत्रेऽस्मिन् 'काशिका'। स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनिकालीन भारतवर्ष नामक अपने ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया है कि वर्तमान काबुल नगर से उत्तर पूर्व से हिन्दूकुश दक्षिण की ओर आधुनिक बेग्राम नामक नगर विशेष काबुल है। कापिशी हरे अंगूरों का उत्पत्ति स्थान है। वहीं पर निर्मित कापिशायन मधु भारतवर्ष में लायी जाती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी कापिशायन का उल्लेख प्राप्त होता है।[22]

कापिशायनी से अभिप्राय मधुपरक ही है। कापिशायनी के चषकों पर उभर ख़ैयाम की रूबाइयों का अत्यधिक प्रभाव है।

कापिशायनी सन् 1980 में प्रकाशित हुई तथा सन् 1981 में साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हुई।

डॉ. धमेन्द्र कुमार गुप्त के शब्दों में– "**डॉ. जगन्नाथ पाठकेन कापिशायनीति नाम्ना कापिशायन–मधु–मधुरं मुक्तककाव्यमिदं प्राचीन परम्पराकविताऽनुरोधं विहाय नूतनां काञ्चित् सरिणम् अनुसृत्य विरचितं तच्च संस्कृतपाठकानां कृतेऽधुनास्वादितरसं नवं मध्विव प्रस्तुत विद्यते। अत्र हि प्रतिपधं नवनवो मधुरो मार्मिकश्च भावो विद्युदुन्मेष इव स्फुरन् सहृदय–हृदयानि च चमत्कुर्वन् संलक्ष्यते। एवं पूर्वाऽपरसम्बंध–विरहे सत्यपि किञ्चिद् असत्येवाऽत्रैक्याप्रतिपादकं सूत्रं यास्मिन् सुकुमारभावशुभ्राणि पद्यानि समुज्जवलानि रत्नानीव प्रोतानि तिष्ठन्ति। सूत्रमिदं किं प्रकृति किं रूपं चेति कापिशायनी–पान–गोष्ठी–निमन्त्रण–गर्भेण प्रस्तावना–पद्येन प्रस्तुत–समीक्षाऽन्तर्घृतेन 'आधाय स्वहृदि इत्यादिना विशदी भवति।**"[23]

वनेश्वर पाठक भी कहते हैं–**कापिशायनी मया सम्यगास्वादिता वस्तुतः इयं सार्थकं नाम विभर्ति। अस्मिन्प्रसङ्गेऽहं भवतामेव भावमनुवदामि–**

"कविता भवतः कृते भवेत् स्वमनोरञ्जनमात्रसाधनम्।
नहि किञ्चिदसत्यमुच्यतेमम मुग्धस्य कृते तु जीवितम्।।
चषकान् कापिशायन्याः स्वादं स्वादं परां मुदम्।
प्राप्तोऽभिन्नदयत्येष जगन्नाथं वनेश्वरः।
एवमेव हि सत्काव्यनिर्मितावतिनिर्मला।
भवन्मतिः प्रवर्त्तेत सर्वदामोदवर्द्धिनी।।"[24]

इस प्रकार कापिशायनी का प्रत्येक श्लोक रसगर्भित है और हर श्लोक को चषक की संज्ञा प्रदान की गयी है।

कापिशायनी काव्यसंकलन में कापिशायनी के 405 श्लोकों के अतिरिक्त प्रकीर्णम् में 50 पद्य, समस्यापूर्तय में 63 पद्य, कालिदास प्रशस्तयः के 12 पद्य, मैथिलकोकिलविद्यापतयप्रशस्तयः के 5 पद्य, भारतशार्दूलविक्रीदितम् के 6 पद्य, गजलगीतानि यवनिका में (पण्डितराज जगन्नाथ पर लिखे गये) 71 पद्य, शलभदीपशिखम् में 33 पद्य और अंत में रूबाई गीतानि आदि संकलित है।

इस प्रकार कापिशायनी में डॉ. पाठक ने संस्कृत कविता को एक नई धारा का सूत्रपात किया और उसे दूर तक पहुँचाया भी। मदिरा, मधुघर, मधुबाला के साथ मयरवाने में बैठकर स्वयं पीते हुए प्रेयसी की अथवा प्रेयसी से बात करना एक अलग अनुभव है। यह न केवल प्रेम और सौन्दर्य का अनुभव है, यह कविता का भी प्रेम और सौन्दर्य है। उसकी दार्शनिक भूमि भी है। उमर खैयाम को पूरी दुनिया ने सुना, हिन्दी में बच्चन को भी सुना गया, संस्कृत में यह नया प्रयोग है।

कवि ने स्थान–स्थान पर जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं अन्तः व बाह्य जगत् के संघर्ष, मानवीय कमजोरियों का चित्रण है। वर्तमान शाश्वत, संस्कारबद्ध जीवन पद्धति से जुड़े होने के कारण यही भारतीयता की प्राणवत्ता है–

"स्खलनमिति मनुष्यधर्म एष
स्खलतिमुहर्मुहुरुद्गतः प्रयाति।।
इह जगति करावलम्बदानैः
कतिपय एव भवन्त्यहो सहायाः।।"[25]

(ii) मृद्वीका

मृद्वीका डॉ. जगन्नाथ पाठक की दूसरी रचना है। यह गीतिकाव्य की श्रेणी के अन्तर्गत आता है। इस रचना के लिए उन्हें वाचस्पति पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। वियोगिनी छन्द में निबद्ध मृद्वीका भी अपनी गतिशैली के द्वारा काव्यरसज्ञों को सुस्वादु चषक पान कराती है।

श्री गयाचरण त्रिपाठी द्वारा Foreworded मृद्वीका के प्रारम्भ में कहा गया है–

"The mridvika is as soft, as sweet and asdelicious asits very name denotes. It has the softness and deliacy of persion poetry and the sweetness and delight of Sanskrit.............any body going through even a couple of verses shall immediately discren that the cup, the wine, the wine maid and the wine-house are porely abstract symbols for Dr. Pathak who gives vent to the feelings and enotiones of his heart, to his faiures and disappointments to his heart, to his personal accomplishments and spritual elevations through these archetybes.

His poetry, thus is a delicious blend of the beauty of parsian imageoy combined with the sweetness of sanskrit language and Indian feelings."[26]

संस्कृत वाङ्मय में कवि द्वारा इस रसपूर्ण रचना का निबन्धन एक नूतन प्रयोग है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र इसकी प्ररोचना में लिखते हैं– **"मृद्वीका रसिता। वियोगिनी छन्दसि विरचितेयं कृतिर्महते प्रमोदाय। मृद्वीका नाम निखिलस्य मार्दवस्य निखिलस्य निःशेषीकरण भावस्य निखिलस्य मार्दवस्य निखिलस्य निःशेषीकरणभावस्य निखिलस्य चात्मसवनभावस्य ह्युवलक्षणम्। प्रसन्नगम्भीरेयं काव्यकृतिः सहृदयान् विस्मापयति, यतो हि नाद्यत्वे बहु दृश्यते ईदृक् प्रसाद इयच्चार्थगौरवम्। चित्तदुत्यात्मकस्य प्रेमव्यापारस्य वेलक्षण्यं क्षणे–क्षणे नवत्वमेव। तत्कविनासंचारवैविध्येनानुभाववैविध्येन वक्रोक्तिवैविध्येन च सुचारू चित्रितम्।"[27]**

मृद्वीका का हिन्दी अर्थ है– अंगूर की बेल। यह रचना सप्त शतकों में विभक्त हैं। इस सप्तशतकों में कवि ने जीवन के प्रेम, सौन्दर्य, रस और कल्पनाओं के विविध भाव भरे हैं।

डॉ. बनमाली विश्वाल 'मृद्वीका' के एक श्लोक की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस रचना की एक वियोगिनी से वे बहुत प्रभावित है क्योंकि वह अपने जीवन से बहुत साम्य रखता है। वह श्लोक उनको प्रेरित करता है। वह श्लोक जीवनदर्शन का उत्कृष्ट उदाहरण है। वह श्लोक है–

"मम नाशय पक्षतिद्वयं ननु मां पञ्जरकेनिवेशय।

परमुड्डनाय लालसा मयि जातां कथमेव रोत्स्यति।"[28]

अर्थात् चाहे मुझे पिंजरे में बंद कर दो या फिर मेरे पंख काट दो पर मुझमें जो उड़ान भरने की लालसा है, उसे कोई कैसे रोक सकता है? मानव को कभी भी परेशानियों, विपत्तियों, बाधाओं, कष्टों आदि से घबराना नहीं चाहिए अपितु जीवन को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नवान् रहना चाहिए।

सात सौ पद्यों की यह रचना सामान्य नहीं, अपितु विपुल सामर्थ्य से ही साध्य है। इसमें उमर ख़ैयाम, की रूबाईयों, बच्चन की मधुशाला तथा भर्तृहरि की रचनाओं की सुरभि हैं।

कवि का मुख्य प्रयोजन पाठक को आनन्द की प्राप्ति कराना है। सप्तशती के चषकों को समर्पित करते हुए कविवर पाठक लिखते हैं–

"मम सप्तशतीयमुज्जवला
चषकाणाभवतिष्ठतेपुरः।
कृपया मुदिताः सचेतसः
सुविधातारइमां ह्वदि स्थिताम्।।"[29]

जिस प्रकार डॉ. पाठक कभी द्राक्षारसमयी 'कापिशायनी–रूपी' चषकावलि से मधुरस का पान कराते हैं, उसी प्रकार नूतन काव्यमधुपरिपाकरूपिणी 'मृद्वीका' के द्वारा भी सहृदय को रस का प्रणय है। सर्वत्र प्रणय की वेदना का उद्वेलन ही दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने जीवन की अनुभूति को मूर्त्त रूप दिया है।

(iii) पिपासा

यह कवि की तीसरी संस्कृत काव्य कृति है। इसमें ग़ज़लों का संकलन है। यह गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ ग्रंथमाला, इलाहबाद से सन् 1987 में प्रकाशित हुआ। अपने अन्तःकरण की अभिव्यक्ति के लिए डॉ. पाठक को यह विधा जँची। कम से कम शब्दों में धारदार व्यञ्जना ही संस्कृत में ग़ज़ल लेखन की मूल प्रवृत्ति है। इस दिशा में प्रारम्भिक प्रयोग पं. गोपाल उपासनी तथा पं. पंचानन तर्करत्न ने किये जबकि संस्कृत ग़ज़ल का वास्तविक लेखन का प्रारम्भ सिद्धहस्त कवि भट्टमथुरानाथ शास्त्री 'मञ्जुनाथ' ने किया और इसी विधा का पल्लवित–पुष्पित रूप डॉ. जगन्नाथ पाठक की ग़ज़लों में प्राप्त होता है।

अरबी भाषा में ग़ज़ल का आशय है स्त्रियों के साथ सम्पन्न ऐकान्तिक वार्ता, प्रिया के साथ मार्दवालाप। डॉ. उमेशदत्त पाठक पिपासा को ग़ज़ल रचना सिद्ध करते हुए कहते हैं कि इसमें सभी कुछ हो सकता है–संयोग की मधुर अभिव्यक्ति भी तथा वियोग की मर्मन्तुद पीड़ा भी। प्रिया के श्रृङ्गार का रूपहला आवरण भी एक का दूसरे से उपालम्भ भी। रूठना भी और मनाना भी। भविष्य की हरीतिमाओं के सुहानेपन में भ्रमण का आमन्त्रण भी और इन सबके बावजूद प्रिया के न पिघलने पर आत्मोत्सर्ग की पहल भी।

इसी भावभूमि को जब हम प्रतीकों के चिल्मन से देखते हैं तो यही आत्मा–परमात्मा के मध्य का दर्शन (अध्यात्म) भी हमारे नेत्र और मस्तिष्क पटल पर उभरता मिलता है जो चुपके से हृदय को अनुपम अनुभूति के पीयूष संचार से सिक्त कर जाता है। रहस्यवादी चिन्तन का यही परमानन्द है। अतएव इन ग़ज़लों में लोक और परलोक दोनों का ही लुफ्त रसज्ञ पाता है–भावना यादृशी यस्य। 'पिपासा' की ग़ज़लों में इन सभी भावों की निर्झरिणी सहज रूप से पाठक को अपनी ओर आकर्षित किए बिना नहीं रहती। देखिए तो यह ग़ज़ले क्या–क्या कहती है–

"विधात्रा किं कृतं भाले न जाने। न जाने त्वां सुदृग्जाले न जाने।
निमग्नोऽहं महानद्यास्तरे वा। तरङ्गे वा महोताले न जाने।
कुतस्त्व दृष्टिनिक्षेपं विधत्से। क्व मूके वा क्व वा चाले न जाने।।"[30]

पिपासा में प्रेम की अनन्तपिपासी और उस चरम सत्ता को पाने की एषणा उद्दीप्त होती जाती है और कवि के साथ पाठक की पिपासा भी 'पिपासुना हि मया पीयते पिासेयम्' समस्वर हो जाती है। कवि स्वयं कहते हैं–

"दृशस्तवैव शुभायाः फलं पिपासेयम्,
निवार्यतां न कदापि क्षणं पिपासेयम्।
सरांसिसन्तु सकुशलानि ते तथा नद्यः,
मयोररीकृता जगति स्वयं पिपासेयम्।
लभे शमं कुत एव त्वमेव निर्दिशमाम्,
प्रवर्धते यदा मदन्तरं पिपासेयम्।"[31]

कवि की यह पिपासा ही नवीन सृजन का कारण है। मृद्वीका व कापिशायनी की रचना के पश्चात् भी कवि का आकुल हृदय पिपासित है। यथा–

"मृद्वीकया न तृप्तिर्जाता तव नापि कापिशायन्या
लक्ष्यस एव पिपासाकुलो जगन्नाथ सोऽद्यापि।"[32]

भावगाम्भीर्य की दृष्टि से ही नहीं भाषा की दृष्टि से भी पिपासा का काव्यत्व निर्विवाद है।

डॉ. पाठक की ग़ज़लों में युगबोध का स्वर भी है। उनकी ग़ज़लों में उर्दू का भाव और वैभव, संस्कृत की भंगीभणीति का अद्‌भुत समायोजन है। उनकी ग़ज़ले मात्र प्रणयगान ही नहीं वरन् जीवन की विसंगतियों, विषमताओं का भावबोध कराती है। जीवन व विवशताओं के मध्य जीवन की सार्थकता को खोजने का प्रयास भी है। जीवन का अर्थ तलाशती यह पंक्तियाँ देखिये–

"स्पर्धते सूर्येण यः स खगो महान्,
कौशिकस्य तदेवमपि किमु जीवनम्।
ये हसन्तः सन्ति ननु जीवन्ति ते,
हन्त रुदतां किञ्चिदपि किमुजीवनम्।
जीवनं रामो हि रामो जीवनम्,
रावणत्मुपेतमपि किमु जीवनम्।"[33]

इस प्रकार पिपासा भाव–भाषा तथा शैली की दृष्टि से उत्तम काव्यत्व को धारण करती है।

(iv) विच्छित्ति–वातायनी

डॉ. जगन्नाथ पाठक की चतुर्थ काव्य रचना है विच्छित्ति–वातायनी। यह एक मुक्तक काव्य रचना है जो 1991 में प्रकाशित हुई है। यह 1982 आर्याओं का काव्य संकलन है। यह रचना छः खण्डों–विच्छित्ति वातायनी, श्री कृष्णशतकम्,रामत्वशतकम्, कविताशतकम्, स्त्रीशतकम्–सौन्दर्यशतकम् (सौन्दर्यकारिका) में विभक्त हैं। इस काव्य खण्ड का प्रमुख खण्ड विच्छित्ति–वातायनी है, जिसमें 1454 आर्याएँ हैं। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्णभावनाशतकम् में 101 आर्याएँ, साथ में 20 आर्याएँ राधाभाव की हैं। रामत्वशतकम् में 101 आर्याएँ, कविताशतकम् में 101 आर्याएँ, स्त्रीशतकम् में भी 101 आर्याएँ तथा अन्तिम खण्ड सौन्दर्यकारिका में 102 आर्याएँ हैं।

इस काव्य–संकलन में कवि ने जीवन के शाश्वत–मूल्यों, स्त्री की महत्ता, भक्तिभाव, सौंदर्य, जीवन–दर्शन, राष्ट्रीय भावना, सामाजिक विसंगति, जगत् के नानाभावों का चित्रण हैं। यह काव्य कृति एक ऐसा वातायन है जिसमें अनगिनत चमत्कार है जो सुधीजनों को अपनी ओर आकृष्ट कर उनके मन–मानस में नवीन–जगत् की कल्पना को जन्म देते हैं।

डॉ. जयशंकर त्रिपाठी कहते हैं कि "विच्छित्तिवातायनी पुरातन और नवीन रचना उत्सों का एकत्र संगम है। यह सम्पूर्ण काव्य मुक्तक है तथा ललित धारा प्रवाह से युक्त आर्या छन्द में ही रचित है। विच्छित्तिपूर्ण इन मुक्तकों में पुरातन भावों के साथ–साथ नये सन्दर्भ भी अन्वित हुए हैं, जो हमारी आज की विचारधारा में ही उद्भूत है, ऐसे मुक्तकों की रचना से संस्कृत काव्य की नूतन समृद्धि हुई है।"[34]

डॉ. पाठक द्वारा लिखित प्रत्येक आर्या जीवन के कटु सत्यों का बोध करवाती है। कवि कहता है कि जीवन के कटु सत्य से कवि मन आहत है किन्तु कोरी कल्पना की उड़ान से भी वह सहमत नहीं है वह धरातल से जुड़े रहने का संदेश देते हुए परिवर्तित हो रहे मूल्यों को ग्रहण करने को कहता है–

"कविना सतेह सुचिरं स्वेच्छं रे धावितं त्वया नभसि।
विचर पृथिव्यामधुना जातं परिवर्तनं पश्य।"[35]

मनुष्य सिर्फ मनुष्य होता है। जाति–धर्म मनुष्यता का आधार नहीं है जिसमें मनुष्यत्व है, वही मनुष्य है। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का भाव इस कृति में बहुत से स्थानों पर परिलक्षित होता है। साम्प्रदायिक कलह से मानवता को नुकसान होता है–

"किमपूर्णोऽस्य परिचयो मनुष्य इति केवलं मनुष्य
हिन्दुर्वा यवनो वा सन्नेव स परिचितो भवति।"[36]

समाज में व्याप्त जाति व वर्ण संकीर्णताओं से कवि मुक्ति चाहता है। साम्प्रदायिक कलह व धर्म की संकीर्णता में मनुष्य मात्र मरता है।

वर्तमान युग कलियुग है तथा इसमें कलि का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आज रिश्ते तार–तार हो रहे हैं। लोगों में "सहना–ववतु सहनोभुन्क्तु" की भावना का लेशमात्र भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है, सब अपने स्वार्थ साधने में लगे हुए हैं। आज हर इंसान दोहरा मुखुरा लगाए हुए है। लोगों के मन में प्रेम की भावना, न्यून होती जा रही है। कवि कहता है आज लोगों में आत्मीयता का अभाव है।

"साम्प्रतमेष उपेतः कीदृक् कालः प्रकामदयनीयः।
न मिलित्येकोऽपि जनो यस्मिन्नात्मीय पदवाच्यः।।"[37]

शत्रु तो सदैव शत्रु की तरह ही आचरण करता है तथा उससे मनुष्य हमेशा सतर्क रहता है क्योंकि वह जानता हैं सामने वाला इंसान उसका रिपु है किन्तु वर्तमान युग में तो अपने ही दगा दे रहे हैं, जिससे कवि के मन में खिन्नता है। आज समाज में सर्वत्र देखा जा रहा है कि दुष्कर्म, कत्ल, अपहरण जैसे घृणित कृत्यों में अपनों का ही हाथ होता है। आज के समय में अपनों पर भी विश्वास करने में भय का अनुभव होता है। अतएव कवि ने कहा है–

"रिपुणा सतैव रिपुणा यद् विहितं किमपि तन्न खेदाय
खिन्नोऽस्मि तेन सुहृदा शत्रुत्वं यत् समाचरितम्।"[38]

आज समाज में ऊँच–नीच का भेद बढ़ता जा रहा है। जातिगत विषमता सर्वत्र परिलक्षित हो रही है। हम सब महर्षि मनु की संतानें हैं तथा एक परिवार की तरह है, यह भाव लोगों के मन में नहीं है। समाज का विघटन हो रहा है। सनातन वर्ण व्यवस्था कर्माधीन थी किन्तु आज वह उपेक्षणीय है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला चाहें कितना भी घृणित कार्य करे वह ब्राह्मण ही है तथा शूद्र कुल में उत्पन्न देवतुल्य कार्य करने वाला व्यक्ति शूद्र ही है। यही भावना मानव मात्र के लिए खतरा बनी हुई है। कवि का मानना है कि मानव में निहित मानवत्व एक है जो प्रत्येक मानव का धर्म है। जब हमारा वास्तविक धर्ममानवत्व एक है तो हम अलग–अलग क्यों हैं, हमें भी एक रहना चाहिए–

"रविरेको विधुरेको भूतल मेकञ्च गगनतलमेकम्।
कथमिव न मानवानां जातिर्भवतीयमप्येका।"[39]

वर्तमान राजनीति से भी कवि का हृदय आहत है। भारतवर्ष वहीं देश है जिसकी राजनीति का सम्पूर्ण विश्व सम्मान करता आया है। भारतवर्ष में ही श्रीकृष्ण, विदुर, चाणक्य जैसे महान राजनीतिज्ञ हुए जिन्होंने देश को एकता के सूत्र में बांधा जिनके लिए देश व जनता ही सर्वस्व थे, किन्तु वर्तमान राजनीति में देश के सम्मान व एकता के लिए कोई स्थान नहीं है, सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याप्त है। सभी राजनेता अपना हित साधने में लगे हुए है। गरीबों की तरफ किसी का ध्यान नहीं–

"नीतय इह सकला अपि निस्तत्त्वाः साम्प्रतं युगे जाताः
नृत्यति केवलमेका नग्नमियं राजनीतिरिह।"[40]

विच्छित्ति वातायनी का दूसरा शतक 'श्रीकृष्णभावनाशतकम्' है, इसमें कवि ने संदेश दिया है कि कृष्ण भक्ति से ही जीवन सार्थक है। आपने श्रीकृष्ण को ही परमाश्रय, सकलकला परिपूर्ण माना है।[41] उन्होंने श्रीकृष्ण को ही सर्वस्व स्वीकार करते हुए उनसे प्रीति रखने को कहा है–

"श्री कृष्णेन च सख्यं श्रीकृष्णेनैव तु तेऽस्तु सह वासः।
श्रीकृष्णः कीडनकं श्रीकृष्णस्तेऽस्तु सर्वस्वम्।।
श्रीकृष्णः शरणं मे जगति परित्यक्तसर्वधर्मस्य।
तमिह विहाय कमन्यं सम्प्रति समुपाश्रये देवम्।।"[42]

कवि ने राधाकृष्ण में अन्योन्य सम्बन्ध स्वीकार किया है। कृष्णभक्ति राधाभाव बिना तथा राधाभाव कृष्णभक्ति बिना अपूर्ण है। कृष्ण तथा राधा में अद्वैत भाव है–

"कृष्णः स एव राधा श्री राधौवेह कापिमम कृष्णः।
एवमभेदं मन्ये श्रीराधाकृष्णयोरूभयोः।।"[43]

रामत्वशतकम् में कवि ने रामत्व का निर्धारण किया है। रामत्व से तात्पर्य मर्यादापुरुषोत्तमत्व, त्यागत्व, धैर्यत्व, सदाचारत्व, प्रेमत्व आदि गुणों से परिपूर्ण होना है। जिसमें रामत्व है, वही राम है–

"गाम्भीर्ये खलु जलधिः साक्षात् कश्चिद्हिमालयः स्थैर्ये।
श्रुतिजयशङ्खध्वनितं किमपि सुकलितन्नु रामत्वम्।।"[44]

रामत्वशतकम् में राम के चरित्र का बखान है। हर श्लोक के अन्त में रामत्व का प्रयोग भाषा को गेयता व तरलता प्रदान करता है। राम निगुंण–सगुण, द्वैत–अद्वैत, जो कुछ भी उदात्तता की श्रेणी में आता है उन सब में व्याप्त है। राम हमारी संस्कृति है अतः उनकी त्याग, मर्यादा और अविचलित व्यक्तित्व जीवन के हर कठिन क्षण में हमें सम्बल प्रदान करता है। जब–जब भी पृथिवी पर अन्धकार व्याप्त होगा, तब–तब रामत्व रूपी तेजराशि प्रकाशित होती रहेगी–

"व्यापनोति रावणत्वं महातमो यत्र तत्र धरतितले
तेजोराशिः साक्षात्प्रकाशते तत्र रामत्वम्।"[45]

कविताशतकम् में कवि ने कविता का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। कविता का मुख्य उद्देश्य स्वान्तः सुखाय तथा परहिताय दोनों ही है। बृहद् अलंकारों से बोझिल होते हुए भी कविता यदि जनसामान्य को आनन्द नहीं पहुँचाती है तो वह कविता नहीं है। कविता की वास्तविकता परिभाषा देते हुए कवि कहता है–

"शुद्धं निसर्गसरलं दुग्धस्फीतं नु यच्छिशोर्वदने।
मुग्धं स्मितमवदातं मन्ये कवितेति तद् वाच्यम्।।"[46]
"व्याकीर्णेष्वथ बाह्येष्वस्तं यातेषु या विचारेषु।
मनसि कवेरेकान्ते क्षणमुल्लसिता नु सा कविता।।"[47]

प्रयोजन बिना किसी भी कार्य की महत्ता नहीं है। प्रयोजन युक्त कार्य में ही लोगों की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार कविता रूपी कार्य भी सप्रयोजन ही है। कवि ने कविता का परम प्रयोजन 'सद्यः पर निवृतये' माना है–

"रचना लघीयसी वा महीयसी वेति किञ्चिदन्यदिदम्
कविता सैव मता या सद्यः पर निवृत्ति कुरुते।"[48]

कविता वहीं है जो जीवन की वास्तविकताओं से सम्पृक्त हो। स्त्रीशतकम् में कवि ने विधाता की अनुपम सृष्टि स्त्री की विशेषताओं, गुणों का वर्णन किया है। स्त्री के बिना सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्त्री क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कवि ने स्त्री को ईश्वर की अद्भुत कृति माना है–

"अद्भुतमतिशयमद्भूतमतिभुग्धं धातुरस्ति निर्माणम्
जगतीह यत् सुधीभिः प्रायो व्यपदिश्यते स्त्रीति।"[49]

स्त्री ममता, त्याग व करुणा का सागर है। स्वसुख निरपेक्ष स्त्री सेवाभाव का पर्याय है। कवि ने उसे लावण्य, मातृत्व, चारुत्व और सौन्दर्य का पर्याय माना है।[50] स्त्री श्री, बुद्धि, लज्जा व श्रद्धा का संवलित रूप है।[51] स्त्री भवभूति की करुणामयी तथा कालिदास की स्नेहमयी कविता है। स्त्री की कोमलता के विषय में कवि कल्पना करता है कि विधाता ने स्त्री का निर्माण इस प्रकार किया होगा–

"कुसुमान्मार्दवमिन्दोर्लावण्यं पाथसश्च तारल्यम्।
एकीकृत्य विधात्रा मन्ये स्त्री निर्मिता जगति।।"[52]

सौन्दर्यकारिका में कवि ने सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारणा का विवेचन किया है। कवि ने लावण्य, माधुर्य, चारुत्व, सुरूपत्व को सौन्दर्य का पर्याय माना है।[53] ध्वन्यालोककार के लावण्य को उन्होंने सौन्दर्य के रूप में स्वीकार किया है।[54] क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपेति तदेव रूपं रमणीयतायाः इति माघ कवि का वचन ही सौन्दर्य शास्त्र का महावाक्य है–

"क्षणे क्षणे यन्नवतामाधते वस्तुतद्धि रमणीयम्
सौन्दर्यं न तदितर–माघस्येदं महावाक्यम्।"[55]

इस कृति में कवि ने एकतरफ आनन्दवर्धन प्रभृति आचार्यों की सौंदर्यविषयक अवधारणा का उपस्थापन है तो दूसरी तरफ बामगार्टेन जैसे पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रियों का भी अभिमत निबद्ध है। उनका यह कहना सही है कि राग और सौन्दर्य में अन्योन्य सम्बंध है यह अवश्य है कि संयमियों में वह स्वस्थ है और अहृदयों में व्यसनिताकारी। शिव और पार्वती की परस्पर उपासना किसी शिव सौंदर्य के लिए ही रही। शिव की अशिव सौंदर्य भावना किए काम (भा) से दीप्त हुई थी शिव ने (असमंजस काम को) उसे ध्वस्त कर दिया।[56]

(ङ) आर्यासहस्रारामम्

डॉ. पाठक कृत 'आर्यासहस्रारामम्' 1955 में श्री गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहबाद से प्रकाशित हुआ। आर्याछंद में निबद्ध इस मुक्तक काव्य में नवीन भावबोध से सम्पन्न 1000 आर्याओं का संकलन है। किसी भी कृति का नामकरण कवि की स्वयं की संवेदनशीलता व अनुभूति से जुड़ा होता है। डॉ. कलानाथ शास्त्री के अनुसार कवि ने इसका नाम अपनी जन्मभूमि सासाराम! सासाराम (बिहार) की स्मृति में सहस्रारामः (हजारों गुल्मों का बाग) शीर्षक से रखा है।[57]

डॉ. पाठक ही इन आर्याओं में युग का स्पन्दन है। कवि वर्तमान की विसंगतियों से क्षुब्ध है। समय के परिवर्तन के साथ आज साहित्य सम्बन्धी सोच की दिशा भी बदल गयी है। साहित्य का लक्ष्य हृदय को रसमग्न करना अथवा साधारणीकरण करना नहीं रहा। साहित्य वह है, जो हमें बौद्धिक स्पर्श दे। संसार के प्रति कर्त्तव्यों और दायित्वों के प्रति

जागरुक करें। कविता का उद्देश्य जीवन को सुन्दर व उदात्त बनाना है। कविता की सार्थकता जीवन का अन्धकार दूर करने में है। गुण, रीति, अलंकारादि वैचित्र्य को उत्पन्न करने में कविता की सार्थकता नहीं है।[58]

कवि का अपना एक चिन्तन का धरातल होता है, वह उन सभी जड़ मान्यताओं का निषेध करता है जो मनुष्य के हित में नहीं है। वह गड्डलिका प्रवाह के समान भीड़ के पीछे भी नहीं चलता वह तो अपना मार्ग स्वयं चुनता है।

"प्रवहृति जगत्प्रवाहः स्वेन पथा याम्यहं पथास्वेन।
मामुपहसन्ति बहवः प्रवाहपतिता वराक इति।।"[59]

डॉ. पाठक के आर्या हस्रारामम् में आधुनिक भाव बोध की आर्याएँ हैं। उनकी हर आर्या जीवन के किसी अनुभव को व्यक्त करती है। इस प्रकार आर्यासहस्रारामम् 1000 आर्याएँ जीवन के हर छोटे से छोटे अनुभव व युगीन बोध को अपने में समेटे हैं। डॉ. पाठक के आर्याओं के इस कोश को जीवन के अनुभवों का कोशग्रन्थ कह सकते है। जिस प्रकार हाल अपनी गाथाओं के लिए, बिहारी दोहें के लिए, बिहारी दोहें के लिए, गोवर्धन आर्याओं के लिए याद किये जाते हैं, वैसे ही सहस्रारामम् की आर्याएँ आधुनिक भाव–बोध के लिए स्मरण की जायेगी।[60]

कवि ने इन आर्याओं में अपने द्वारा अनुभूत छोटे–छोटे सत्यों को भाषा प्रदान की है। लेखन का उद्देश्य मात्र स्वान्तः सुखाय या अपनी अनुभूत संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देना ही नहीं है वरन् इस जगत् को जड़ मानसिकता से निकाल कर उसे नवीन व गतिशील मार्ग पर प्रेरित करना भी होता है। कवि जगन्नाथ पाठक इस सत्य को स्वीकार करते हुए स्वयं कहते हैं कि– "मेरी दृष्टि में मनुष्य के अस्तित्व की स्थिति एवं गतिशीलता में इन खण्डशः अनुभूत सत्यों का बड़ा ही महत्त्व है। वह उसी आधार पर परमुखापेक्षिता की दयनीयता से ऊपर उभरकर आता है और अपने माध्यम से इस विस्तृत जगत् के लिए भी कुछ कर जाता है। ये नाना वैज्ञानिक अनुसन्धान उन्हीं खण्डशः अनुभूत सत्यो के व्यक्त रूप है, जिन्हें मनुष्य ने अपने मात्र प्रयास से अंधेरे की परतों को छाँटकर उपलब्ध किया है। हम भौतिक उपलब्धियों को भले ही उतना महत्त्व नहीं दे, किन्तु यह तो स्वीकार करते ही है कि हमारी गतिशीलता में उनका विशेष योगदान है।"[61]

पाठक जी की विशेषता है कि वह इन अनुभूत सत्यों को कम शब्दों में कहकर अपनी बात पाठक तक पहुँचा देते हैं। इस तथ्य को वह स्वयं जानते है–

"यत्किञ्चिदेव भवता वाचस्पतिनेह विस्तरेणोक्तम्।

तदिह जगन्नाथेन स्वल्पधियोक्तं मितैः शब्दैः।"[62]

डॉ. जगन्नाथ पाठक के मुक्तक मात्र रसचर्वणा व चमत्कार उत्पन्न करना नहीं है, कविता वही है जो जीवन को सुन्दर व सौद्देश्य बनाये। कविता बाह्य उपकरणों जैसे अलङ्कार, गुण व रीति आदि द्वारा सुन्दर नहीं होती वरन् सुन्दर कविता वही है जो उद्देश्यपरक हो। अतः डॉ. पाठक की आर्यासहस्रारामम् की सम्पूर्ण आर्याएँ किसी न किसी उद्देश्य को ही लेकर लिखी गयी है। यथा–

"कविता तद् व्यक्तव्यं येन तमोयातु नाशमिह किञ्चित्।

नालङकारैर्न गुणैः कवित्वमिह सार्थकं भवति।।"[63]

कवि का अपना एक चिन्तन का धरातल होता है। वह उन प्राचीन सभी मान्यताओं व परम्पराओं का निषेध करता है जो मनुष्य के हित में नहीं है। वह परम्परागत मार्ग का अनुगामी नहीं है। कवि के मतानुसार न तो कविता कभी नयी है न पुरानी है, कविता तो हर युग में कविता होती है जो किसी भी काल की सीमा में बद्ध नहीं होती। आज की स्थितियों में वस्तुतः कविता वही है जो सामयिक सत्यों व जीवन की मूलभूत समस्याओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करें। कविता में यदि जीवन के सत्य का साक्षात्कार नहीं है तो वस्तुतः वह कविता नहीं है। डॉ. जगन्नाथ पाठक के शब्दों में कविता सत्य का साक्षात्कार है–

"साधनमियं न कविता मन्येऽद्यत्वे कलाविलासस्य।

क्षणमनयास्यात् कश्चन् साक्षात्कारो नु सत्यस्य।।"[64]

आर्यासहस्रारामम् मुक्तक काव्य में कवि ने मानव मन के अनेक भावों को अभिव्यक्त करते हुए वर्तमान जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। उनकी आर्याओं में सामाजिक विषमताओं, अभावों, जीवन की विडम्बनाओं, युगीन विद्रूपताओं, जीर्ण–शीर्ण होती परम्पराओं, आधुनिकों के नाम पर समाप्त होती संवेदनाओं, मानवीय व्यथाओं आदि के चित्र हैं। कवि ने आर्यासहस्रारामम् में जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानकि, आर्थिक

और साहित्यिक सभी आर्याओं का समावेश किया है तथा कवि धर्म का निर्वाह करते हुए समाज को एक नई दिशा व प्रेरणा भी दी है। कवि ने जीवन के जिन पक्षों को आर्यासहस्रारामम् में निर्देशित किया है वे इस प्रकार हैं। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी आज असम्भव है। किसी के पास तो वस्त्रों की कोई कमी नहीं है तो किसी के पास पहनने को वस्त्र भी नहीं है। इस प्रकार दो वर्गों के बीच वस्त्रों की अतिशयता व वस्त्रों के अभाव को कवि ने निम्न पद्य में वर्णन किया है–

"सन्धारयन्ति केचिद् दिने दिने नूतनानि वासांसि।
तिष्ठन्ति चार्धनग्ना वसनाभावाच्च के चिदिह।।"[65]

इसी प्रकार का वैषम्य खाद्य पदार्थों के विषय में भी दिखायी देता है। कुछ लोगों के पास तो खाद्य पदार्थों का अतिरेक है तो कुछ के पास पेट भरने तक भोजन नहीं है। कवि ने दोनों स्थितियों पर करारा व्यंग्य किया है।

वर्तमान जीवन की विसंगतियों को देखने की डॉ. पाठक की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म है। घूमते हुये आइने के समान उनकी दृष्टि प्रत्येक क्षेत्र में वर्तमान नैतिक पतन का सूक्ष्म निरीक्षण करती है। इनमें प्रमुख हैं वर्तमान जीवन की संवेदनशून्यता, कृत्रिमता, अस्तव्यस्तता, वर्ग और जातिभेद, सांस्कृतिक मूल्यों का विस्मरण, पाश्चात्यीकरण की प्रवृत्ति, शिक्षण संस्थाओं की दुर्दशा, राजनीति की प्रधानता, धर्म के क्षेत्र में राजनीति का हस्तक्षेप, शासक–वर्ग की विलासिता, नेतृ वर्ग का नैतिक पतन इत्यादि। इन स्थितियों को चित्रित करती उक्तियाँ हृदय को झकझोर देने वाली हैं। कथन की विशेष भंगिमा हृदय पर इसकी अमिट छाप छोड़ जाती है। यथा–

"विद्याभवनस्तम्भा जगति धराशायिनोऽत्र दृश्यन्ते।
विद्याभवनं तदपि स्थिरमस्तीत्येतदाश्चर्यम्।।"[66]

इसी तरह राजनीति के विषय में डॉ. पाठक कहते हैं कि हमारे लोकतंत्र में अपने नेता के चयन का अधिकार जनता को अवश्य है परन्तु आज लोकतन्त्र भीड़तन्त्र हो गया है। मतगणना बहुमत के आधार पर होती है उसमें बुद्धि का प्रयोग नहीं किया जाता, यह एक विडम्बना है। कवि इस विषय पर खेद व्यक्त करता है कि–

"मतगणनावसरेषु प्रायो लोके शिरांसि गण्यन्ते
परिमाप्यते न बुद्धेर्मात्रा खेदो महानेषः।"[67]

अतः आज का लोकतनत्र सामान्य मानव के लिए उतना हितकारक सिद्ध नहीं हो पाया क्योंकि राजनीति के पुराधाओं ने मात्र अपने स्वार्थों की सिद्धि का मार्ग चुना लोककल्याण का नहीं।

कवि द्वारा रचित आर्याओं में कहीं–कहीं नारी सम्बन्धी भावनाओं का भी प्रदर्शन है। आज भी समाज तथा परिवार में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की है। आज भी वह परिवार में शोषण व घरेलू हिंसा की शिकार है। दहेज के नाम पर आज भी उसे जीवित जला दिया जाता है। अपने ही स्वजनों के द्वारा बिना कारण के जला दी जाती है। आज भी समाज की विविध परम्पराओं में जकड़ी नारी की स्थिति पाषाणवत् उस अहित्या के समान है जो किसी न किसी राम के पादस्पर्श की प्रतीक्षा में है। समाज में नारी व पुरुष की समान स्थिति होनी चाहिए। कवि की सूक्ष्म दृष्टि जीवन के हर क्षेत्र का संस्पर्श करती है। कवि जीवन के शाश्वत व चिरन्तन मूल्यों का पक्षपाती है। आज संसार माध्यमों के कारण विश्व की दूरियाँ कम हुई है, वर्ग व जाति के बंधन कुछ ढीले हुए है लेकिन स्वार्थपरता बढ़ी है और उदात्तता कम हुयी है परन्तु फिर भी कवि की उदात्तदृष्टि विश्व बन्धुत्व की कामना करती है। कवि का सकारात्मक दृष्टिकोण मनुष्य में नवीन स्वप्न संजोने और कल्पना की ऊँची उड़ान भरने की ताकत पैदा करता है।

"नीडं स्याद् विश्वमिदं वयं तु सर्वे भवेम विहगाश्च।
पक्षद्वयन्माश्रित्य व्योम्नि सुदूरं प्रधावेम।।"[68]

कवि का यह आह्वान आने वाली पीढ़ियों को निश्चितरूपेण निर्देशित करता रहेगा।

धर्म के विषय में चर्चा करते हुए डॉ. पाठक कहते है कि आज धर्म का वास्तविक स्वरूप व अर्थ शाङ्कास्पद हो गया है। कर्त्तव्य रूप में तथा मानवता के पर्याय रूप में धारण किया गया धर्म मात्र दिखावा व आडम्बर हो गया है। अनेक प्रकार की रूढ़ियों व अन्ध–परम्पराओं ने स्थान ले लिया है। अब ज्ञान व पाण्डित्य का मनुष्य की बौद्धिक क्षमता के आधार पर आंकलन नहीं किया जाता परन्तु लम्बी चोटी, टीका व उत्तरीयधारण अर्थात् एक निर्धारित वेशभूषा पाण्डित्य की पहचान कराती है। आज धर्म प्रदूषित हो गया है तथा

धर्म में भी राजनीति प्रवेश कर गयी है। आज राजनेता अपने स्वार्थ के लिए मनुष्य की धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते हैं तथा धर्म जैसे भावात्मक मुद्दे पर लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते हैं तथा धर्म जैसे भावात्मक मुद्दे पर लोगों की भावनाओं को भड़काते है। कवि कहता है कि जब तक धर्म राजनीति के अधीन रहेगा, मनुष्य आपस में लड़ता रहेगा। धर्म के नाम पर अनेकों मत मतान्तर प्रचलित है। समाज के समक्ष धर्म का चोगा पहनकर तथा धर्म ध्वजा हाथ में लेकर लोग दूसरों को तो धर्म का उपदेश दे रहे है परन्तु स्वयं धर्म भ्रष्ट है। धर्म का अर्थ है जीवन में आचार की शुद्धता–

"न प्रवचनेन सिध्यतिधर्मः सिध्यत्यजस्रमाचरणैः
विरहन्तु नाम शतशो धर्मध्वजमेकमादाय।"[69]

(ख) अनुदित साहित्य

(i) ग़ालिबकाव्यम्

ग़ालिबकाव्यम् डॉ. जगन्नाथ पाठक का प्रथम प्रकाशित अनुदित काव्य है, जिसका प्रकाशन सन् 2003 में हुआ। यह उर्दू साहित्य के महाकवि मिर्जा असदुल्लाह खाँ गालिब के दीवाने ग़ालिब की 240 ग़ज़लों का संस्कृतानुवाद किया है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में 9 श्लोकों में कवि ने 'गालिब–काव्यम्' की भूमिका प्रस्तुत की है। इसके बाद दीवाने ग़ालिब का लगभग 1650 आर्याओं में संस्कृतानुवाद हैं। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट–1 में ग़ालिब विरचित 40 कविताओं का पद्यानुवाद है। परिशिष्ट–2 में मुहम्मद इकबाल द्वारा मिर्जा ग़ालिब पर लिखित कविता का अनुवाद मिर्ज़ा ग़ालिब नाम से संग्रहित है। परिशिष्ट–3 में कवि ने महाकवि गालिब के प्रति अपने भाव को 26 आर्याओं में निबद्ध कर "महाकवि ग़ालिबं प्रति" इस शीर्षक से व्यक्त किया है।

देवर्षि कलानाथ शास्त्री के अनुसार "पाठक जी एक अभ्युक्ति में तो नहीं समेटे जा सकते किन्तु वे संस्कृत जगत् में बांगला की भावप्रवण और संवेदना–तरल 'प्रसन्न' शैली और उर्दू के अन्दाज़े बयाँ (भणिति–भङ्गी) का प्रतिनिधित्व करते है। अतः उन्हें संस्कृत का ग़ालिब या रविन्द्रनाथ कहा जा सकता है। पिपासा की ग़ज़लों में उर्दू का भावबोध और

अन्दाज़े बयाँ पाठक जी के पाठकों को गुदगुदाता रहा था, अब तो उन्होंने "ग़ालिब के भय को'" आर्याओं के चषकों में उतार कर पूरा मयखाना ही खोल दिया है।"[70]

मिर्जा ग़ालिब की ग़ज़ले विश्वप्रसिद्ध हो चुकी हैं। इन ग़ज़लों ने समस्त सहृदय समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है, जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न भाषाओं में इनका अनुवाद प्रकाशित है। दीवाने–ग़ालिब का संस्कृत पद्यानुवाद आधुनिक संस्कृत साहित्य में श्लाघनीय प्रयास है। सहृदय को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसलिए डॉ. पाठक ने मूल पाठ के साथ–साथ उर्दू ग़ज़लों में आये कठिन शब्दों का संस्कृत अर्थ भी पाद टिप्पणी में दे रखा है जिससे उर्दू से अनभिज्ञ केवल संस्कृतज्ञ भी इन ग़ज़लों के चषकों का पानकर सके। वस्तुतः पाठक का यह अनुवाद अनुवाद मात्र नहीं है क्योंकि अनुवाद का तात्पर्य केवल अनुवादन करना मात्र होता है, जिससे की मूल रचना के भाव विलुप्त हो जाते हैं। उसमें उतना रस प्राप्त नहीं होता जबकि डॉ. पाठक ने उर्दू व फारसी की लावयता से युक्त मूल पाठ में संस्कृत की माधुर्यता को जोड़कर उसी भावबोध के साथ प्रस्तुत किया है। इसलिए इसे अनुवाद न कहकर अनुसर्जन कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। श्री बच्चूलाल अवस्थी कहते हैं कि– "उसे संस्कृत वाणी कैसे दी जाए की कविता वही रहे। वाक् बदल जाए, फिर भी वागर्थप्रतिपत्ति वही बनी रहे। लृङ्लकार का प्रयोग करके पाठक जी ने एक चुभती हुई सम्भावना को वाणी दी है। इसका अनुवचन इसलिए भी दुष्कर कहा जाएगा कि फ़ारसी–अरबी से आए हुए शब्दों का अर्थ इस प्रकार संस्कृत शब्दावली में प्राप्त किया जाए कि प्रतिपत्ति ज्यो की त्यों बनी रहे, जैसे एक ही उत्स से दो स्रोत निकले हो–एक गरम पानी देता हो तो दूसरे से शीतलप्रवाह स्फुटित होता हो। दोनों का सौन्दर्य और प्रभाव होते हुए भी द्वैरुप्य रखता हो। जिस प्रकार के छन्दोविलास में ग़ालिब ने बात कही है। उस वृत्तविन्यास से पृथक् पाठक जी ने अपने निसर्गसिद्ध आर्यावृत्त में एक नया सौन्दर्य उकेरा है। ग़ालिब के काव्य के अन्तस्तल में प्रतिभानावस्था तक पहुँचकर फिर ऊपर आने पर पाठक जी ने बुद्धि से श्रम किया है और तब वे संस्कृत में वाणी दे सके है।"[71]

कवि स्वयं भी जानता है कि उसका यह कार्य बहुत कठिन है इसलिए वह स्वयं कालिदास की भाँति ग्रंथ की भूमिका में कहता है कि मेरा यह प्रयास एक पङ्गु द्वारा गिरि लांघने के उद्यम के समान है–

काव्यं क्व 'ग़ालिबस्य' क्व मन्दधीर्हन्त कोऽपि जन्तुरहम्।
गिरीलङ्घनप्रवृत्तो ह्युपह्सनीयोऽस्मि पङ्गुरिव।।[72]

वह जानता है कि किसी भी भाषा की मूल कविता को उसी भाव–बोध के साथ किसी दूसरी भाषा में अनुवाद करना सहजकाम नहीं है। दो भिन्न भाषाओं के मूलभूत सिद्धान्त अलग–अलग होते हैं और यह कार्य ओर की कठिन तब हो जाता है जब उनमें से एक भाषा प्रतिष्ठित व दूसरी जनभाषा हो। उर्दू कवि ग़ालिब ने जो उर्दू–बैखरी में कहा, उसे संस्कृत में पुनर्वचन करना दुहरे श्रम की अपेक्षा रखता है। कवि पाठक ने भी पहले ग़ालिब काव्य को पढ़ा, फिर उसके भावबोध को आत्मसात किया, फिर प्रतिभा तथा अभ्यास के सहारे ग़ालिब के काव्य के चमत्कार को संस्कृत के सह्रदयजन तक पहुँचाया।

पाठक जी द्वारा ग़ज़लों के अनुवाद के लिए आर्या छंद चुनने के विषय में ओमप्रकाश मालवीय जी कहते हैं कि–

"By adopting the Arya Pathak has succeeded in following the classical tradition and giving a new direction to it. He has wisely chosen not to play to the gallery by adopting Ghozal form as some of contemporary poets of Sanskrit have done. The temptaiion before Dr. Pathak was rcally pressing but he wisely resisted and thus cnabled him to show the potentiality if a classical language for the expression of the feeling a subjective nature."[73]

स्थायीपुलक न्याय से ग़ज़ल के एक शेर का अनुवाद देखिये–

"किया आईनः खाने का वह न.कश–तेरे जल्वे ने।
करे जो परतवे खुन्शीद आलम शबनमिस्ताँ का।। (ग़ज़ल)
त्वत्सौन्दर्येण कृता दर्पण भवनस्य सा दशा तावत्
यां कुरुते रविरश्मिस्तुषारभरित–प्रदेशस्य।। (अनुवाद)"[74]

अर्थात् सुबह की सूर्य किरण के तुषारपूर्णप्रदेश में पड़ने पर जैसे हर शिशिर बिन्दु में सूर्य के प्रकाश दिखने के कारण वह प्रदेश जगमगा उठता है, वैसी ही दशा नायिका के सौन्दर्य से प्रतिफलित होकर शीशमहल की हुई।

इस प्रकार दीवाने ग़ालिब का अनुवाद कर पाठक जी ने संस्कृत पाठकों को ग़ालिब जैसे महान शायर से परिचय करवाया है। इस माध्यम से उन्होंने उर्दू–फारसी की सौंधी खुशबू संस्कृत भाषा तक पहुँचानी चाही है।

"अल्पीयानाप्यस्मिन्नुवादे ग़ालिबस्य कवितायाः
कोऽपि सुगन्धोऽवतरेदित्यस्माभिः कृतो यत्नः।।"[75]

ग़ालिब के अन्दाजे बयाँ को एक कुशल शिल्पी की तरह तराशकर संस्कृत की अभिधान शैली में यह काम पाठक जी की लेखनी ही कर सकती है। मारुतिनन्दन पाइक लिखते हैं– "गहरी पैठ के बिना यह संभव न था। विद्या जरुर उतारी गई, किन्तु अपनी मौलिकता नहीं खोई संस्कृत कविता का अपना स्तर भी नहीं गिरने दिया, इसलिए यह संस्कृत की जमीन पर खिला हुआ नया फूल जैसा है।"[76]

(ग) सुभाषित साहित्य

(i) जगन्नाथसुभाषितम्

"सत्यं शिवं सुन्दरम्" का समवाय रूप डॉ. जगन्नाथ पाठक की कृति 'जगन्नाथसुभाषितम्' राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली से सन् 2011 में प्रकाशित हुई है। इसमें डॉ. पाठक द्वारा रचित सुभाषितों का सङ्कलन है। इस पुस्तक की पुरोवाक् आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखी है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के हस्ताक्षरों में अग्रगण्य डॉ. बनमाली विश्वाल ने कृति परिचय व संपादन का कार्य किया है।

तीन खण्डों में विभाजित इस कृति में डॉ. पाठक ने सुभाषितों के माध्यम से प्राचीन संस्कृति व सत्पुरषों के चरित्र से पाठकों का परिचय करवाते हुए आज के समाज व उसमें व्याप्त विषमताओं, मानवभावों तथा जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस कृति के द्वारा स्पष्ट होता है कि कवि ने लेखन को धर्म माना है, जिसका उद्देश्य केवल अपने भीतर हिलोरे लेते भावों की अभिव्यक्ति न होकर वरन् समाज को सत्य से रू–ब–रू

करवाना है। अपने गहन चिन्तन के माध्यम से कवि जन–मानस के अन्तःकरण पर आच्छादित कलोषित मनोवृत्ति को अपावृत्त कर सत्य के कपाट को अनावृत्त करना चाहता है। कम शब्दों में विस्तृत भाव बोध करवाना डॉ. पाठक की सबसे बड़ी विशेषता है। उनके हर सुभाषित में सम्पूर्ण मानव जीवन का दर्शन होता है।

डॉ. पाठक की गिनती उन कवियों में होती है, जिन्होंने गड्डलिका प्रवाह की तरह प्राचीन परम्परा से न बन्धकर अपना मार्ग स्वयं चुना तथा आज के जीवन तथा समाज का निरूपण किया। जब तक साहित्य वर्तमान जीवन से नहीं जुड़ता उसमें पुरातनता का ही बोध होता है।

जगन्नाथ सुभाषितम् के रूप में डॉ. पाठक ने समाज तथा साहित्य को सुभाषित रूपी मोती प्रदान किये हैं, जो अपनी दुग्ध धवल कांति से सम्पूर्ण जगत् तथा संस्कृत साहित्य को आलोकित कर रहे हैं। जगन्नाथ सुभाषितम् में जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति तथा देववाणी का पल्लवन–पोषण करने वाले कवियों का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर जीवन के यथार्थ, सत्य का चित्रण है। जगन्नाथ सुभाषितम् के प्रथम भाग में आदिकविर्वाल्मीकिः, हे कालिदास! कविकुलगुरो! यदि स्वदेशस्त्वमागच्छेः! पण्डित–राजप्रशस्तिशतकम्, भट्टमथुरानाथप्रशस्तिः, दाराशिकोह, कविता तदा मनसि में समुन्मीलति, हे घनश्याम! सर्वज्ञ, गङ्गाया व्यथितम्, अक्षयवरस्य व्यथा, वाग्देवताया व्यथितम्, काकानां व्यथितम्, पङ्कस्यसुखम्, दीपावली, गजेन्द्र–मोक्षः, हंसान् प्रति, मानवते!, दिनेष्वेषु, दाण्डी–यात्रा, ग्रामटिका, सम्मार्जनी, दलित–प्रसङ्गः, जैसे विषयों पर सुभाषित सङ्कलित है। जगन्नाथ–सुभाषितम् के द्वितीय भाग में सौहार्दम्, मृत्यु, दौर्भाग्यम्, शुश्रूषुः, नग्नत्वम्, हरितत्वम्, गङ्गा, गुरुणामाशिषः, मनुष्यबुद्धिः स्मृतिः, सीता, कोऽपिवराक, जागरूकाः, वर्षाभावः, प्रतीक्षा, सौन्दर्यम्, पश्चात्तापः, वसुधैवकुटुम्बकम्, असहिष्णुता, संस्कृतम्, वैराग्यम्, जीर्णपत्रम्, पाण्डित्यम्, जगद्गुरुत्वम्, संवेदना, स्वार्थपरता, कविः, हिंसा हृदयाभावः, वर्णवैविध्यम्, चित्रकूटः, अशान्तिः, विनयः, गृध्रः, उद्यानम्, आशा, अपराजितः, मूकाः, संस्कार, युगधर्मः, लक्ष्मीः, भारतम्, भारतीयत्वम्, आर्याः, विक्षोभः, अस्तित्वम्, आतिथ्यम्, औदार्यम्, राजनीतेः क्षेत्रम्, विनीतः, कोलाहलः, बकाः, सहिष्णुता, परिवर्तनम्, अनुग्रह, प्रेम, छाया, जीवन–कला, सहचर, आशाभङ्गः, अश्रुभेदः, लोकदृष्टिः, मालिन्यम्, पण्डितम्मन्य, ग्रीष्मः, अभयदानम् व्रणः,

वैकल्यम्, अप्रतीकारः, कृपा–कटाक्ष, महाजनः, धूर्ताः, भाषा–सरसी, अवसादः, निरपेक्षत्वम्, संयोगाः, स्वेच्छा, नेतारः, जातिभेदः, बाधा, सांध्य–दीपः, मूढतमाः, सन्तः, उपेक्षा, मेघदूत, सुमनसः, मनोरथः, शोकः, पिपासा, विद्याया विक्रयः, मरुभूमिः, प्रह्लादः, कूटस्थाः, परमान्नम्, अन्तःस्रोतः, जङ्गलराजम्, बालकृष्णाः, संसारः, 'क्लिश्यत्यन्तरितो जनः', बलवतामग्रे निर्बलानां स्थितिः, निडाभङ्गः, प्रभावः, अर्थ–सङ्ग्रहः, धीमन्तः, निर्वाणः, चित्तविस्तारः, कविखद्योत, नान्यः पन्थाः, अन्त्या गतिः, कालगतिः, संयमिनो जागरा, श्रीश्री रविशङ्करः, सुवर्णम्, आतङ्कः, जननी जन्मभूमिश्च, विचाराः, आदि जीवन तथा जगत् के विविध विषयों पर लगभग 2132 सुभाषित हैं। भाग–3 में 710 पद्य हैं जिनके विषय नहीं दिये गये हैं। परिशिष्ट में जगन्नाथ सुभाषितम् के पद्यों की अकारादि क्रम में सूची दी गयी है।

प्रथम भाग में डॉ. पाठक कवि कुलगुरु कालिदास के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं। कालक्रम से कई कवि हुए तथा होते रहेंगे किन्तु कालिदास रूपी रत्न तो सदैव अपनी चमक से संस्कृत वाङ्मय को आलोकित करता रहेगा। वे साक्षात् कविता के पर्याय हं–

"कवितैव कालिदासः कविता वा कालिदास एवेति।
चित्तात् सामान्यधियां नाद्यावधि निर्गताभ्रान्तिः।।"[77]

हमारे समाज में दलित वर्ग की स्थिति प्रारम्भ से ही दयनीय रही है। द्विजो के चरणों की सेवा में इनका जीवन प्रारम्भ हुआ तथा उसी में समाप्त हो गया। शारीरिक संरचना में कोई भेद न होते हुए भी इन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। ये हमारे समाज रूपी भवन का एक स्तम्भ है जिसके बिना समाज धराशाही हो जाएगा फिर भी इनकी स्थिति पक्षियों में काक के समान कर दी गई है–

"विहगानां खलु मध्ये स्थितिर्यथा मन्यतेऽत्र काकानाम्।
परिगणितास्तिष्ठामों वयं तथेतो मनुष्याणाम्।।"[78]

दलित वर्ग की यह स्थिति समाज की उन्नति में बाधक है। इससे पाठक जी का मन दुःखी है तथा यह दुःख ही शब्दों का आकार लेकर कविता के रूप में निकल पड़ा है।

जिस गङ्गा नदी को हम मातृतुल्य मानते हैं, जो भागीरथ की घोर तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा के कमण्डल से निकलकर, विष्णु के चरणों को स्पर्श कर रुद्र की जटाओं

में स्थान पाकर भू–लोक पर अवतरित हुई, जिसने देश को सभ्यता तथा संस्कृति प्रदान की जो देश की धार्मिक आसथा का आधार रही है तथा जिसके दर्शन मात्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, ऐसी पवित्र गङ्गा नदी आज निम्नगा हो गई है। आज उसकी उपेक्षा की जा रही है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो एक दिन वह इतिहास मात्र रह जायेगी।[79] केवल गङ्गा ही नहीं अन्य नदियों की भी यही स्थिति है। आज देश की गङ्गा–जमुनी संस्कृति खतरे में है। अपने ही पुत्रों द्वारा की जा रही इस प्रकार की उपेक्षा से गङ्गा–यमुना नित्य रुदन करती है–

"केवलमहमेवार्ता नास्मि परं मामकी सखी यमुना
नित्यं रूदिवः सङ्गम्प्रतमुभे प्रयागाङ्गणे मिलिते।।"[80]

इसी तरह कविता की वास्तविक परिभाषा देते हुए डॉ. पाठक कहते हैं कि कविता कवि हृदय का शुद्ध रूप है जिसमें लौकिक जीवन के सुख–दुःख, प्रेम, करुणा, त्यागादि भावों की स्पष्ट झलक दिखती है। जब कि समाज में दुःखादि देखता है तो उसके मन में कविता उदय होता है–

"विलोचनजलं सदा जगति हन्त सामान्यतो
जनस्य नयतीह नु प्रकटतां व्यथां सर्वथा।
यदा परमिह क्वचित् प्रकटयेदलं तां स्मितं
क्षणं नु कविता तदामनसि मे समुन्मीलति।।"[81]

भाग–2 में परिवर्तित होते जीवन के मानदण्डों, मनुष्य की स्वार्थपरत, परिवर्तित लोकदृष्टि आदि अनेकानेक विषयों पर व्यंग्यपूर्ण लेखन द्वारा कवि ने जीवन के यथार्थ को पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। ये सभी छोटे–छोटे पद्य मिलकर सकल भारत को हमारे समक्ष उपस्थित कर देते हैं। समाज का शायद ही कोई ऐसा अंग होगा जो डॉ. पाठक की लेखनी से छूटा होगा। आज धर्म के ठेकेदारों ने ईश्वर की हो जो स्थिति कर दी है उस पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है–

"अस्तित्वमेव साम्प्रतमीशस्यास्तीह संशयापन्नम्
एकः स द्विर्वेति प्रश्नः कुट एव समुदेति।।"[82]

इसी प्रकार भारतीयता की परिभाषा देते हुए कवि कहता है–

"सीमा स्वस्य स्वस्य प्रकाममुल्लङ्घ्य सम्प्रदायस्य।
सर्वैर्मिलितैरेतत् सिध्येदिह भारतीयत्वम्।।"[83]

कवि ने सौन्दर्य का भी बहुत सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया है। आज के समास पर कटाक्ष करते हुए कवि कहता है कि आज लोग सिर्फ बाह्य सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होते है, आन्तरिक सौन्दर्य पर कोई ध्यान नहीं देता। बाह्य सौन्दर्य क्षणिक है, उसके द्वारा कुछ काल तक तो किसी को आकर्षित किया जा सकता है किन्तु चिरकाल तक प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए तो आन्तरिक सौन्दर्य ही सर्वविदित साधन है। वास्तविक सौन्दर्य को किसी भी प्रकार के प्रसाधन की अपेक्षा नहीं होती है–

"वास्तवमिह सौन्दर्यं भवति न किञ्चित् प्रसाधनापेक्षि
ग्लानि जनयति तस्मिन् प्रसाधनानां यदारोपः।।"[84]

भाग–2 में सुभाषितों के विषयों की पुनरावृत्ति हुई है, सम्पादक आदि यदि एक ही भाव के सुभाषितों को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत संग्रहित करते तो पाठकों के लिए ओर अधिक सारल्य हो जाता। भाग–3 में सुभाषित जीवन के सत्यों और शाश्वत मूल्यों का दिग्दर्शन कराते हैं। कवि की सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि जीवन के हर छोटे से छोटे भाव को सहजता के साथ अनुभूत करती है और भङ्गी भणिति तथा उक्ति वैचित्र्य के साथ पाठक तक सत्वर सम्प्रेषित कर देती है। डॉ. पाठक का सुभाषित–संकलन विविध भावों का भण्डार हैं। उनकी एक–एक आर्या जीवन के अनुभवों का निचोड़ है। वह संस्कृत की वर्तमान स्थिति के प्रति जितने चिन्तित है, उतने ही संवेदनशील नारियों के प्रति भी है–

"इह रुदितं सीताभिः पाञ्चालीभिश्च पीडयारुदितम्।
अद्यापि नारि! नितरां त्वदञ्चलं क्लिन्नमेवास्ति।।"[85]

इस प्रकार आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक की यह कृति साहित्य–जगत् की अनुपम कृति है। उनका व्यक्तित्व, विषय के प्रति संवेदनशीलता, उनका जीवनदर्शन व सामाजिक मूल्यों की छाप सम्पूर्ण कृति में आभासित होती है।

इस कृति में जन–मानस की संवेदनाओं के साथ राजनयिकों की स्वार्थपरता का भी निरूपण है। इसमें सामयिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थितियों का विवेचन है। कवि ने इस रचना में आधुनिक, राजनीति, सांस्कृतिक समस्याओं का वर्णन कर प्रगतिशील काव्य के स्वरूप की सरसाभिव्यक्ति की है। मानवीय जगत् तथा भारत देश के कल्याण हेतु इन सुभाषितों को आत्मसात् करना आवश्यक है।

आर्यासम्राट् ने इस कृति में युगबोध परक मानवीय समाज में व्याप्त विषमताओं, भारतीय संस्कृति की अखण्डता को स्पष्ट किया है जो अनुकरणीय तथा श्लाघनीय है। संस्कृत साहित्य में युगीनता की दृष्टि से यह कृति उल्लेखनीय है। इसमें युग का प्रभाव है और प्रभावन भी। इस काव्य में जीवन के विविध भावों व अनुभूतियों के विविध रंग है। कवि ने जीवन के हर क्षण को महसूस कर लेखनी का विषय बनाया है। इसकी भाषा–शैली भी प्रसादमय है। इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है जो जनसामान्य के लिए सरल–सहज और बोधगम्य है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि डॉ. जगन्नाथ पाठक अतुलित प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व व कृतित्व के धनी है। सहज–सरल व्यक्तित्व और संवेदनशील मन एक कवि की धात्री होता है उसी संवेदना के आधार पर कवि पूरे समाज का आलोकन कर अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। उनका पूरा रचना सांर उनकी संवेदना की अभिव्यक्ति है। उन्होंने अपने आस–पास की हर चीज को सूक्ष्म दृष्टि से देखा तथा उसे अपने काव्य का आधार बनाया। उनका हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं पर समान अधिकार है। उनकी प्रत्येक रचना में 'सत्यं शिवं–सुन्दरम्' का समवाय है। उनकी रचनायें 'स्वान्तः सुखाय तथा लोकहिताय के लिए है। आर्या छन्द पर उनका जबरदस्त अधिकार होने के कारण ही उन्हें संस्कृत समाज में 'आर्यासम्राट्' के नाम से जाना जाता है। उनकी प्रत्येक आर्या में जीवन के अनुभवों का सार है। उनकी रचनाओं में जीवन की विषमताओं व विद्रूपताओं के साथ प्रेम के कोमलतम व करुणा के मार्मिक क्षण भी नहीं छूटें हैं। अपने समय की नब्ज़ और धड़कन को जितनी सहजता प्रभावी पद्धति से वे व्यक्त कर लेते हैं, वैसा आजकल कम दिखाई देता है। दीवान–ए–ग़ालिब का संस्कृतानुवाद एक विस्मयवह प्रयास है। पाठक जी की कविता जाति, उदात्त, साक्ष्य और आत्मानुभूति का उत्तम रूप प्रस्तुत करती है। पाठक जी मनीषी, विमर्शक, समीक्षक और साहित्य के इतिहासकार होने

के साथ–साथ कवि हैं, प्रौढ़, प्रांजल व विशुद्धभाषा के धनी है। डॉ. पाठक बिहारी के 'जेतौ नीची ह्वै चले, ते तौ ऊँची होई' इस नीतिवाक्य के साकार विग्रह है। इनकी भद्रता इनकी विद्वता पर सदैव हावी रहती है। डॉ. पाठक के काव्य में यद्यपि जीवन विविध रंगों में विद्यमान है किन्तु उनके काव्य के प्रेरक तत्त्व वर्तमान जीवन की विसंगतियाँ ही है। इनमें वर्तमान जीवन की कृत्रिमता, अस्तव्यस्तता, वर्ग और जातिभेद, सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन, राजनीति का प्रभाव इत्यादि है। पाठक जी कविता को पढ़ने पर लगता है मानो वे अपने जीवन की अनुभूति को मूर्त्त रूप दे रहे हैं। इस प्रकार निरन्तर संस्कृत साधना में तत्पर रहते हुए आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक अद्‌भूत प्रतिभा वाले व्यक्तित्व व कृतित्व से सम्पन्न है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ–सूची

1. पाठक महोदयानां दैनन्दिन्यामपि प्रवहति काव्यगुञ्जा, नारायणदाशः, दृक्–X, पृ.सं.–29
2. सुकवि जगन्नाथ पाठक से शिवकुमार मिश्र, संलाप, दृक्– X, पृ.सं.–49
3. सुहृदः श्री जगन्नाथ पाठकाः, रेवाप्रसाद द्विवेदी, दृक्– X, पृ.सं.–8
4. सुकवि जगन्नाथ पाठक से शिवकुमार मिश्र, संलाप, दृक्– X, पृ.सं.–49
5. मेरे अनुजकल्प जगन्नाथ पाठक, राममूर्ति पाठक, दृक्– X, पृ.सं.–7
6. आर्यासहस्रारामम् के परिशिष्ट 'विच्छित्तिवातायनी' पर आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी (उज्जैना) की प्रतिक्रिया, पृ.सं.–131
7. सुकवि जगन्नाथ पाठक से शिवकुमार मिश्र का संलाप, दृक्– X, पृ.सं.–50
8. वही, पृ.सं.–48
9. सुकवि जगन्नाथ पाठक की कविताः स्वच्छ गंभीर सरोवर, शिवकुमार मिश्र, दृक्– X, पृ.सं.–34
10. आर्यासम्राट्, डॉ. जगन्नाथ पाठक श्री रंजनदेवदेव, दृक्– X, पृ.सं.–24
11. जगन्नाथ–सुभाषितम्, 21/1417
12. सुकवि जगन्नाथ पाठक से शिवकुमार मिश्र का संलाप, दृक्– X,, पृ.सं.–61
13. नवोन्मेषः, पृ.सं.–32
14. कापिशायनी, 1
15. वही, 41
16. कापिशायनी भूमिका, पृ.सं.–2
17. कापिशायनी, 2
18. वही, 4
19. कापिशायनी, पृ.सं.– II
20. कापिशायनी, 38
21. मत्तलहरी, पं. विद्याधर शास्त्री, 26
22. कापिशायनी (मितम्), पृ.सं.– V
23. दृक्भारती X, पृ.सं.–42

24. वही, पृ.सं.—47

25. कापिशायनी, पृ.सं.—103

26. मृद्वीका, पृ.सं.—2

27. वही, पृ.सं.—4

28. वही, पृ.सं.—155

29. वही, पृ.सं.—153

30. दृक् भारती, पृ.सं.—30

31. पिपासा, पृ.सं.—1

32. आर्यासहस्रारामम्, पृ.सं.—848

33. डॉ. जयशंकर त्रिपाठी के उद्गार, आर्यासहस्रारामम्, पृ.सं.—135

34. वही

35. आर्यासहस्रारामम्, 124

36. विच्छित्ति वातायनी, प्रथम खण्ड, 382

37. वही, 1382

38. वही, 1032

39. वही, 922

40. विच्छित्तिवातायनी, श्रीकृष्णभावनाशतकम्, 5

41. वही, द्वितीय खण्ड, 12

42. वही, 15

43. वही, 11

44. विच्छितिवातायनी, तृतीय खण्ड, 9

45. वही, 93

46. वि.वा., चतुर्थ खण्ड, 15

47. वि.वा., चतुर्थ खण्ड, 15

48. वि.वा., चतुर्थ खण्ड,93

49. वि.वा., पञ्चम खण्ड, 1

50. वि.वा., पञ्चम खण्ड,1

51. वि.वा., पञ्चम खण्ड,52

52. वि.वा., पञ्चम खण्ड,78

53. वि.वा., षष्ठ खण्ड,2

54. वि.वा., षष्ठ खण्ड,2

55. वि.वा., षष्ठ खण्ड,11

56. आर्यासहस्रारामम्, परिशिष्ट

57. आर्यासहस्ररामम्, पृ.सं.–4

58. वही

59. आर्यासहस्रारामम्, 71

60. दृक्भारती 1, पृ.सं.–12

61. दृकभारती X, पृ.सं.–3

62. आर्यासहस्रारामम्, 5

63. आर्यासहस्रारामम्,124

64. आर्यासहस्रारामम्,264

65. आर्यासहस्रारामम्,919

66. आर्यासहस्रारामम्,78

67. आर्यासहस्रारामम्,871

68. आर्यासहस्रारामम्,202

69. आर्यासहस्रारामम्,688

70. दृक्भारती X, पृ.सं.–111

71. दृक्भारती VIII, , पृ.सं.–10 व 11

72. ग़ालिबकाव्यम्, पृ.सं.–1/2

73. दृक् भारती X, पृ.सं.–14

74. ग़ालिबकाव्यम्, 10/5

75. ग़ालिबकाव्यम्, पृ.सं. 1/8

76. दृक्भारती X, पृ.सं.–21

77. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–1, हे कालिदास, 5

78. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–1, दलित प्रसंग, 7

79. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–1, गंगाया व्यतिथम्, 18

80. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–1, गंगाया व्यतिथम्, 23

81. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–1, कविता तदा मनसि...10

82. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–2, 323

83. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–2, 1288

84. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–2, 1327

85. जगन्नाथ सुभाषितम्, भाग–2, 607

द्वितीय अध्याय

मुक्तक साहित्य का उद्भव
तथा विकास

द्वितीय अध्याय

मुक्तक साहित्य का उद्भव तथा विकास

विषय–प्रवेश

काव्य की परिभाषा अथवा लक्षण पर विचार करने से पूर्व काव्य पर चर्चा करना आवश्यक है। काव्य सम्बन्धी विचारधारा अग्निपुराणकार से अद्यतन निरन्तर प्रवाहित हो रही है। संस्कृत वाङ्मय में कवि को सभी विषयों का वर्णन करने वाला माना है–

"कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयतीति कविः"[1]

ईशावास्योपनिषद में भी कहा गया है–

"कविर्मनीषी परिभू स्वयंभूः"[2]

कवि और काव्य में कर्त्ता और कर्म सम्बन्ध है, या कह सकते हैं कि कवि जनक है तथा काव्य जन्य। मेदिनी कोष में कहा गया है–

"कवेरिदं कार्यं भावो वा
तस्य कर्म स्मृतं काव्यम्।"[3]

राजशेखर के मत में कवि शब्द कवृवर्णे धातु से बनता है–

"कवि शब्दश्च कवृ वर्णे इत्यस्य धातोः काव्यकर्मणौरूपम्"[4] संस्कृत साहित्य में प्रारम्भ से ही कवि और काव्य शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ में होता है। वेदों में परमेश्वर के लिये कवि शब्द का प्रयोग हुआ है। अग्निपुराण में तो कवि को प्रजापति की संज्ञा दी गई है–

"अपारे काव्य संसारे कविरेक प्रजापति
यथास्मैरोचते विश्वं तथेदं प्रवर्तते।।"[5]

कवि शब्द महर्षि वाल्मीकि के काल से ही आह्लादकत्व के निरुपक तथा कवि शब्द चित्ताकर्षकरमणीय शैली के ग्रन्थ के लिये प्रयुक्त होता रहा है।

काव्य का लक्षण तथा स्वरूप

शुक्ल यजुर्वेद तथा समस्त कोषादि ग्रन्थों में यह कहा गया है कि कवि परमेश्वर तथा सर्वज्ञ होता है। उस कवि का कर्म ही काव्य है। ध्वनि मार्ग के प्रतिष्ठापकाचार्य आनन्दवर्द्धन ने काव्य का लक्षण देते हुए कहा है–

"सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेवकाव्यम्।।"[6]

काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य काव्य का लक्षण निरूपित करते हुए कहते है कि–

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणवानलंकृती पुनः क्वापि।।"

अर्थात् दोषरहित, गुणयुक्त और कहीं–कहीं स्पष्ट अलंकार रहित शब्द और अर्थ की समष्टि काव्य है। शब्दों के द्वारा किसी विषय का आकर्षक विवरण देना ही काव्य कहलाता है। सहृदयहृदयाह्लादकत्व स्वरूप तादृश काव्य के स्वरूप का विवेचन आचार्य भरतमुनि ने इस प्रकार किया है–

"मृदुललितं पदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं
जनपदसुखभोग्यं युक्ति मन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृत रसमार्गं संधिसंधानयुक्तं
स भवति शुभकाव्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।"[7]

यहाँ भरतमुनि ने शुभ काव्य का स्वरूप बताते हुए कहा है कि कोमलकांतपदावली, सरल शब्दार्थयुक्त, सहज, नृत्ययोग्य, रसयुक्त तथा संधि सम्पन्नता काव्य का स्वरूप है।

संस्कृत वाङ्मय के अनेक आचार्यों ने अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा सम्प्रदायों के अनुसार काव्य–स्वरूप का विवेचन किया है। अलङ्कारवाद के प्रवर्त्तक आचार्य भामह ने सर्वप्रथम काव्य को परिभाषित करते हुए कहा है–

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"[8]

वागर्थौ प्रतिपत्तये कालिदास ने काव्य का शिव–शक्ति स्वरूप माना गया है, जिस प्रकार शिव तथा शक्ति के सहभाव से सृष्टि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार शब्द–अर्थ सापेक्षपूर्वक काव्य सृजन होता है। दोनों में अन्योन्य भाव सम्बन्ध है।

आचार्य दण्डी ने इष्टार्थ पदावली को काव्य कहा है–

"शरीरं तावदिष्टार्थव्यवछिन्ना पदावली"[9]

आचार्य वामन ने काव्यालङ्कार के प्रथम सूत्र की वृत्ति में काव्य के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा है–

"काव्य शब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते

भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते।।"[10]

धारापति भोज ने काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है–

"निर्दोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्

रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिञ्च विन्दति।।"[11]

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में काव्य को पुरुष का स्वरूप देकर काव्य–पुरुष का वर्णन करते हुए कहा है–

"चत्वारि श्रृंगात्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षेसप्तहस्तासोऽस्य

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मृर्त्यानाविवेश।।"[12]

'वक्रोक्तिजीवितम्' में कुन्तक ने लिखा है–

"शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापारशालिनि।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदा्लादकारिणि।।"[13]

काव्य सम्बन्धी सभी परिभाषाओं को आत्मसात् करते हुए मम्मटाचार्य ने अन्वय–व्यतिरेक के आधार पर काव्य की परिभाषा दी जो विह्वत् समाज में सर्वाधिक मान्य है–

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणवानलङ्कृती पुनः क्वापि।।"[14]

आचार्य विश्वनाथ ने काव्य के आत्माभूत तत्त्व को विशिष्ट स्थान देते हुए उसी के आधार पर काव्य को परिभाषित किया है–

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"[15]

अर्वाचीन साहित्याचार्यों ने काव्य–स्वरूप के विषय में मौलिक–चिन्तन प्रस्तुत किया है। स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिन्तन के ही हस्ताक्षरों में अग्रगण्य आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने काव्य का स्वरूप निर्धारण करते हुए लिखा है–

"लोकानुकीर्तनं काव्यम्।"[16]

जो भी भासित होता है वह लोक है तथा उसका अनुकीर्तन करना ही काव्य है। काव्य लोक का दर्पण होता है। दर्पण में बिम्ब यथावत् प्रतीत होता है, जबकि काव्य में लोक का सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से चित्रण होता है।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने लिखा है–

"काव्यं लोकोत्तराख्यानं रसगर्भं स्वभावजम्
परत्रेह च निर्व्याजं यशोऽव्याप्ति प्रयोजनम्।
शब्दार्थ सङ्गमेनैव किञ्चिदाख्यातुमिष्यते
ततश्चोभयं साहित्यं काव्यपर्याय गोचरम्।।"[17]

आधुनिक संस्कृत काव्य–जगत् के एक क्रान्तद्रष्टा क्रान्तिकारी कवि डॉ. हर्षदेव माधव ने काव्य–स्वरूप को उद्घाटित करते हुए कहा है–

"लोकलोकत्तरापूर्ववर्णनक्षमं
कविकर्मकाव्यम्।"[18]

इस प्रकार काव्य–स्वरूप के प्रतिपादन का कार्य अनादिकाल से निरन्तर चलता आ रहा है। विभिन्न आचार्यों ने अपने मतानुसार काव्य–स्वरूप का निरूपण किया है। आचार्य मम्मट कृत काव्य–लक्षण संस्कृत साहित्य जगत् में सर्वाधिक प्रचलित है। यह लक्षण काव्य के आत्म तथा बाह्य दोनों स्वरूपों को समाहित किये हुये है। सभी सम्प्रदायों के लक्षण इसमें समाहित है।

वस्तुतः काव्य तो ब्रह्म के समान है, जिस प्रकार ब्रह्म को अनादिकाल से समझने का प्रयास किया जा रहा है, किन्तु फिर भी आज तक कोई ब्रह्म को पूर्णरूपेण नहीं जान पाया, उसी प्रकार काव्य–स्वरूप भी अलौकिक है। उसे लक्षण एवं परिभाषा की परिधि में नहीं बांधा जा सकता, वह तो सिर्फ अनुभव का विषय है।

काव्य–भेद

काव्य शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ सम्पूर्ण वैदिक–लौकिक संस्कृत वाङमय से है। काव्य का विभाजन अनेक दृष्टियों यथा शैली, भाषा, विषय, अर्थ, बन्ध, इन्द्रिय आदि के आधार पर किया जाता है। यहाँ केवल लौकिक साहित्य का इन्द्रिय–दृष्टि से विभाजन कर मुक्तक काव्य के विषय में विचार करना मेरे इस अध्याय का विषय है, अतः उसे ही प्रस्तुत करना विषय सापेक्ष होगा।

इन्द्रिय की दृष्टि से काव्य को सर्वप्रथम दो भागों में बाँटा गया है– दृश्य तथा श्रव्य। संस्कृत का समस्त रूपक–उपरूपक साहित्य दृश्य विधा के अन्तर्गत आता है क्योंकि इसका मंचन किया जाता है तथा दर्शक देखकर रसानुभूति करता है। दर्शनेन्द्रियविषयता के कारण दृश्य काव्य को रूपक भी कहते है।

श्रव्य काव्य को प्राचीन काल में पाठ्य काव्य भी कहा जाता था क्योंकि उस समय कवि अपना काव्य पढ़कर सुनाते थे तथा सहृदय सुनकर काव्यार्थ का रसास्वादन करते थे। आजकल पुस्तकों को पढ़कर भी श्रोता रसानुभूति कर लेते हैं, अतः इसे श्रव्य काव्य कहते है। श्रव्य काव्य को गद्य–पद्य तथा चम्पू के भेद से तीन भागों में बाँटा गया है। गद्य काव्य के अन्तर्गत कथा तथा आख्यायिका आते हैं।

पद्य काव्य को प्रबंध तथा मुक्तक के भेद से दो प्रकार का माना है। प्रबंध काव्य भी महाकाव्य तथा खण्डकाव्य के भेद से दो प्रकार का होता है। मुक्तक काव्य का विवेचन मेरे इस अध्याय का विषय होने के कारण आगे विस्तार से करुंगा।

चम्पू काव्य गद्य तथा पद्य सम्मिश्रण होता है।

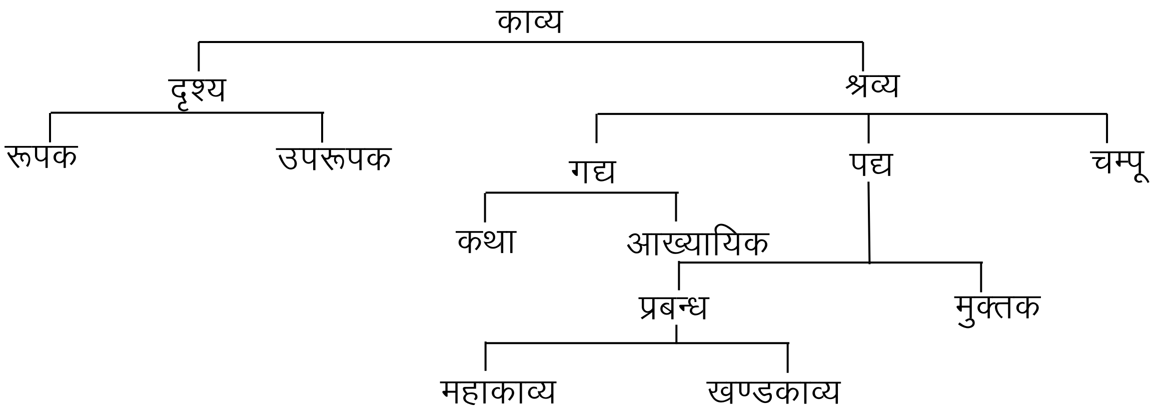

इस प्रकार काव्य एक लघु विषय ना होकर वृहद् विषय है, जिसका पूर्णतया प्रतिपादन करना बहुत टेढ़ी खीर है।

मुक्तक काव्य परिचय

काव्यशास्त्रियों ने काव्य को अनेक भेदों–उपभेदों में विभक्त किया है, उनमें एक भेद है 'मुक्तक काव्य'। मुक्तक काव्य को ही गीति–स्तोत्र तथा शतक काव्य का पर्याय माना जाता है। मुक्तक का अर्थ–ऐसा स्वतंत्र विचार जो एक छंद में आबद्ध हो। मुक्तक काव्य को अनिबद्ध काव्य तथा निर्बद्ध काव्य की संज्ञा भी दी जाती है। मुक्तक से तात्पर्य जो काव्य संदर्भ, प्रकरण आदि से स्वतंत्र हो। मुच् धातु से भूतकालार्थक क्त प्रत्यय करने के उपरान्त 'ह्रस्वेकन्' से कन् प्रत्यय करके मुक्तक शब्द बनता है। केशवकृत कल्पद्रुमकोश में मुक्त शब्द से अभिप्राय है।

"विनाकृतं विरहितं व्यवछिन्नं विशेषितम्
भिन्नं स्यादथ निर्व्यूहे मुक्तं यो वाऽति शोभनम्।"[19]

मुक्तक का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है–मुच्यते स्मेति मुक्तम्, मुक्तं ह्रस्वं द्रव्यं मुक्तकम्। अर्थात् ऐसा काव्य जो पूर्वापर निरपेक्ष, स्वतः पर्यवसित, अर्थ प्रतीति के लिए परापेक्षी न हो, वह मुक्तक काव्य कहलाता है। इसका प्रत्येक पद्य स्वयं में पूर्ण होता है तथा अर्थपर्यवसान के लिए यह परमुखापेक्षी नहीं होता। कवि अपनी अनुभूति विशेष को स्वतंत्र रूप से काव्य के रूप में चित्रित करता है।

मुक्तक काव्य—लक्षण

अलङ्कारशास्त्र परम्परा अनादिकाल से प्रवाहित होती चली आ रही है। आचार्य भामह, दण्डी, वामन, मम्मटाचार्य आदि विद्वानों ने काव्य के भेदोपभेदों का लक्षण पुरस्सर वर्णन किया है। इसी श्रृंखला में सर्वप्रथम अग्निपुराणकार ने मुक्तक काव्य के विषय में लिखा है—

"मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्"[20]

अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकाचार्य भामह ने मुक्तक काव्य का लक्षण करते हुए लिखा है—

"अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोक मात्रादि तत्पुनः
युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते।।"[21]

अर्थात् अनिबद्ध काव्य जो किसी परम्परा से बंधा न हो, वहीं मुक्तक काव्य कहलाता है। रीति सम्प्रदाय के आचार्य दण्डी ने कहा है कि जो एक ही वाक्य में अपना अभिप्राय पूर्ण कर दे तथा अपर वाक्य निरपेक्ष हो वह मुक्तक काव्य कहलाता है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है—

"पूर्वापर निरपेक्षाऽपि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेवमुक्तकम्।"[22]

भट्ट श्री मथुरानाथशास्त्री ने अभिनवगुप्त के मुक्तक सम्बन्धी विचार की विस्तृत विवेचना करते हुए वैभव—त्रयी में लिखा है—

"मुक्तकस्य निर्माणं न साधारणस्य कवेः कार्यम्। यतोहि मुक्तकमामुलचूडं रसप्रवाह निर्भरं भवति। तत्र हि संघटना प्रतिपदं रसानुकूलेव कर्त्तव्या भवति। मुक्तके ह्येकस्मिन्नेव अपर नैरपेक्ष्येण विभावानुभावादिभिः परिपुष्टस्तावान्, रसोऽभिव्यज्यते यदास्वादेन संतर्पित चेतसः सहृदयाः सशिरः कम्पमनुमोदन्ते। पूर्वापरनिरपेक्षे एकस्मिन्नेव पद्ये पठितुश्चेतस्काराय वाच्यार्थापेक्षया व्यंग्यस्यैव प्राधान्यमास्थापनीयं भवति। अत एवं विधध्वनिपूर्ण काव्यस्य निर्माता 'महाकविः' व्यपदेशं भवति।"[23]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– "यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता। मुक्तक एक ऐसी मुक्तामणि है जिसे शतको, सप्तशतकों या सहस्त्रकों की छोटी–बड़ी पिटारी में संग्रह किया जाए अथवा किसी प्रबंध के कथाप्रवाही सूत्र में गूंथा जाए तो वह सर्वत्र अपनी उज्जवल 'आब' और गर्वीली स्वच्छन्दता से सहृदयों का रंजन करने में सक्षक होता है। सभा, समाजों में प्रबन्ध की वनस्थली से नहीं अपितु मुक्तक के मनोरम पुष्प–स्तबकों से ही शोभा का आधान किया जा सकता है। सभाओं और सहृदय–मंडलियों में अपने चमत्कार गुण के कारण मुक्तक ही विशेष लोकप्रिय रहा है क्योंकि उसकी स्वावलम्बी संक्षिप्तता एवं स्फुट प्रभावान्विति काव्योत्कर्ष ही सद्यः स्वीकृति के लिए अधिक उपयुक्त होती है।"[24]

आधुनिक काल में प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक काव्य अधिक प्रसिद्ध है। प्रबन्ध में जहाँ व्यापकता होती है, वहाँ मुक्तक में तीव्रता। व्यापकता की अपेक्षा तीव्रता का मूल्य अधिक होता है। यदि वनस्थली की अपनी शोभा है तो पुष्प–गुच्छ की शोभा पृथक् है। एक–एक पुष्प का संयोजन करके माला का निर्माण होता है, अतः माला से पुष्प नहीं, अपितु पुष्पों से ही माला का अस्तित्व होता है।

मुक्तक काव्य वर्गीकरण

किसी भी वस्तु का स्वरूप निर्धारण करने के लिए उसे भेद–उपभे में विभाजित किया जाता है। इसी प्रकार मुक्तक काव्य को भी अच्छे से समझने के लिए विभिन्न आचार्यों तथा विद्वानों ने मुक्तक–काव्य का विभाजन किया है–

श्लोक के आधार पर

श्लोक के आधार पर मुक्तक काव्य को विभाजित करने में आचार्य दण्डी, आनन्दवर्द्धनाचार्य, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि विद्वानों ने किया है। आचार्यों के पूर्वा पर मत देखने के बाद पता चलता है कि मुक्तक के कुल 9 भेद स्वीकार किये गये है–

(i) मुक्तक – "एकेन छंदसा वाक्यार्थ समाप्तौ मुक्तकम्"[25]

अर्थात् एक ही छंद में समाप्त होने वाला वाक्यार्थ मुक्तक हैं।

(ii) युग्मक (सन्दालितक) – "द्विभ्यां क्रियासमाप्तौ सन्दानितकम्"[26]

दो पद्यों द्वारा क्रिया की समाप्ति होने पर सन्दानितक होता है।

(iii) विशेषक – "त्रिभिर्विशेषकम्"[27]

तीन पद्यों द्वारा पूर्ण होने वाली रचना विशेषक है।

(iv) कलापक – "चतुर्भिः कलापकम्"[28]

चार पद्यों में पूर्ण होने वाली रचना कलापक है।

(v) कुलक – "पञ्चप्रभृतिभिःकुलकम्"[29]

पाँच या अधिक पद्यों के सन्दर्भ समन्वय से पूर्ण होने वाली रचना कुलक है।

(vi) संघात – "अवान्तरक्रियासमाप्तावपि वसन्तवर्णनीयोद्देशेन प्रवृतः पर्यायबंधः।"[30]

जिसमें वसंतादि एक विषय का वर्णन हो उसे संघात कहते हैं।

(vii) कोष – "स्वपरकृतसूक्तिसमुच्चयकोशः सप्तशतकादि"[31]

स्व अथवा परकृत सूक्ति समूह को कोष कहते हैं।

(viii) प्रघट्टक – एक कवि द्वारा रचित मुक्तकों के समूह को प्रघट्टक कहते है।

माध्यम के आधार पर

माध्यम से तात्पर्य अनुभूति से है। अनुभूति के आधार पर मुक्तक काव्य पाठ्य तथा गीति नामक दो भेदों में विभाजित है।

वर्ण्य विषय के आधार पर मुक्तक को विभाजित करने का कार्य आचार्य राजशेखर तथा बलदेव उपाध्याय ने किया है। आचार्य राजशेखर कृत विभाजन।[32]

(क) शुद्ध – इतिहास रहित, मात्र कवि कल्पित मुक्तक रचना।

(ख) कथोत्थ – प्राचीन कथा पर आधारित मुक्तक रचना।

(ग) संविधानक – इतिहास अथवा घटना पर आधारित मुक्तक रचना।

(ङ) आख्यानक – इतिहास कल्पना से युक्त मुक्तक रचना।

आचार्य बलदेव उपाध्याय कृत विभाजन।[33]

(क) लौकिक – लोक से सम्बन्धित विषयों पर आधारित मुक्तक रचना।

(ख) धार्मिक – देव–स्तुतियों से सम्बन्धित विषयों पर आधारित मुक्तक रचना।

सारणी रूप में संस्कृत साहित्य में कृत मुक्तक काव्य वर्गीकरण

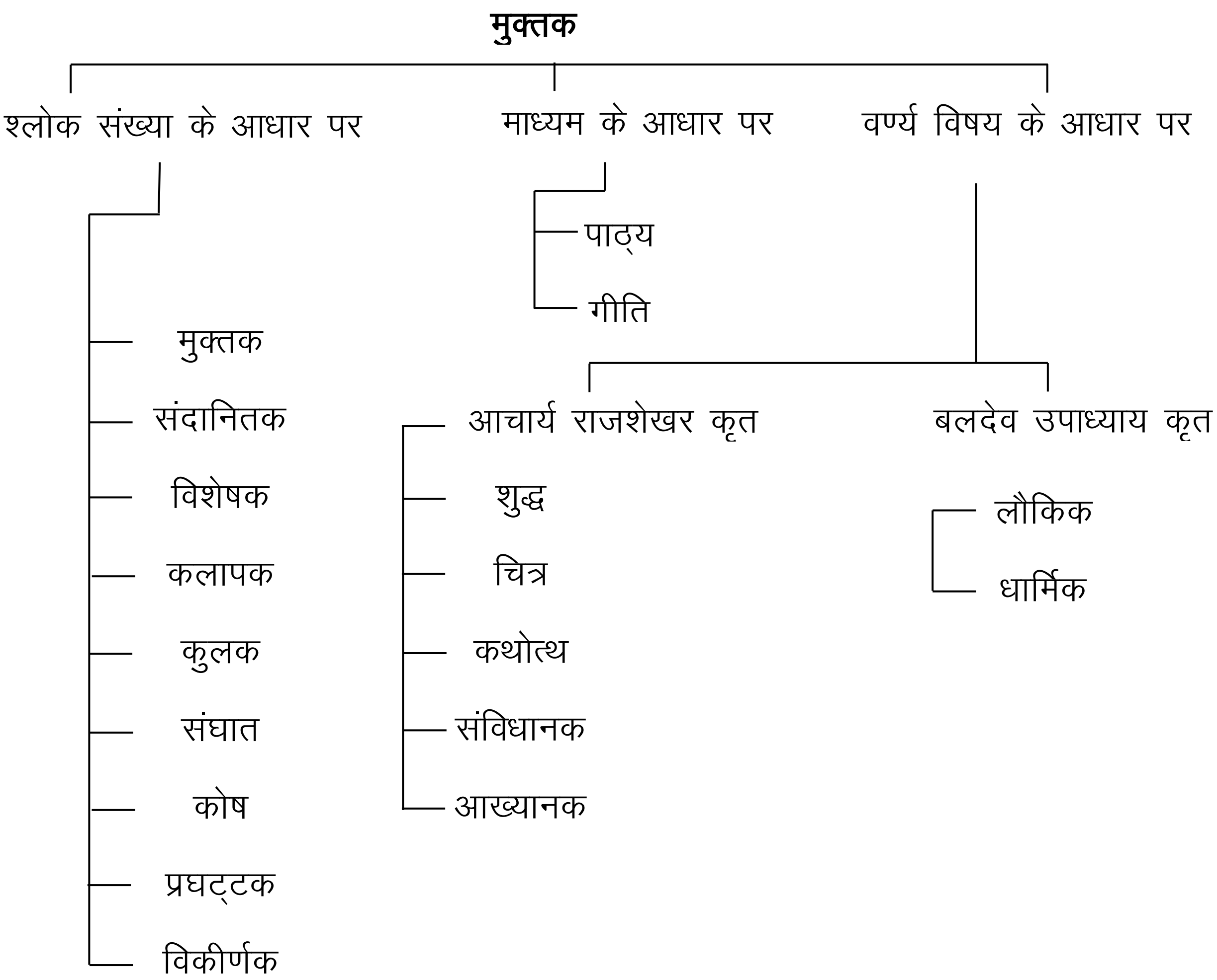

(1) प्राचीन मुक्तक साहित्य का उद्भव एवं विकास

महाकाव्य की भाँति विश्व साहित्य संसृष्टि की सर्वप्रथम मुक्तक रचना ऋग्वेद ही है। संहिताओं में अनेक स्थान पर वैयक्तिक रागात्मक भावों की सुकुमार अभिव्यक्ति मिलती है और अनेकत्र निसर्ग की भव्य और रमणीय छवियों का अंकन भी है। भारतीय रीति–नीति, आचार–विचार, धर्म–दर्शन, सभ्यता–संस्कृति तथा सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय का

मूल स्रोत ऋग्वेद ही है। ऋग्वेद एक प्राचीन मुक्तक संग्रह है जिसमें अनेक विषयों से सम्बन्धित मुक्तकों का संग्रह है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, अदिति आदि देवताओं की अनेक मुक्तकों में स्तुति की गई है। ऋग्वेदीय देवताओं में अग्नि का सर्वप्रमुख स्थान है, वैदिक आर्यों के लिए देवताओं में इन्द्र के पश्चात् अग्नि देव का ही पूजनीय स्थान है। अग्नि की स्तुति करते हुए मधुच्छन्दा ऋषि कहते हैं–

"रजान्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिवम्।
वर्धमानं स्वे दमे।।"[34]

(हे अग्नि, यज्ञों के राजा/स्वामी, सनातन सत्य, प्रकाशमयी, अपने तेज में निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले, हम आपके समीप आ रहे हैं)

वेदीय देवों के प्रमुख देव इन्द्र है अपने महानकार्यों एवं गुणों के कारण इन्द्र आर्यों का राष्ट्रीय एवं जातीय देवता बन गया। ऋषि गृत्समद कहते हैं कि–

"यः पृथिवीं व्यथमानामंदृहद यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात स जनास इन्द्रः।।"[35]

इन्द्र सम्बन्धी मुक्तकों में वीर रस का प्रवाह है, तो उषस् देवी के सम्बद्ध सूक्तों में मनोरम कल्पनाएँ, सौन्दर्य व श्रृंगार का लालित्य है। उषस् देवी को कवि स्नान करके सरोवर से ऊपर आती रमणी से उपमा देता है–

"एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशयो नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्।।"[36]

(द्यु लोक की कन्या उषा प्रकाश से जगमगाती हुई आ गयी है। वह अंधेरे को हटाती हुई अपने शुभ्र–स्वरूप को प्रकट कर रही है, जिस प्रकार कोई सुन्दर रमणी सरोवर से स्नान करके बाहर निकली है।)

इस प्रकार ऋग्वेद एक प्राचीन मुक्तक–संग्रह है, जिसमें अनेक विषयों से सम्बन्धित मुक्तक संग्रहित है। यह प्रवाहमयता, कलात्मकता तथा भावात्मकता आदि गुणों से सुसज्जित है।

ऋग्वेदोपरान्त मुक्तक साहित्य

पालि में रचित मुक्तक साहित्य वैदिक काव्य के बाद बौद्धों के वाङ्मय में मुक्तक काव्य परम्परा के दर्शन होते हैं। बौद्ध–साहित्य में थेरगाथा तथा थेरी–थेरी गाथा नामक दो ग्रन्थ मुक्तक काव्य–परम्परा में विशेष स्थान रखते हैं।

थेर गाथा साहित्य – थेरगाथा में कुल 1279 पद्य है। थेरगाथा में भारतीय वसुन्धरा के अकृत्रिम नैसर्गिक सौन्दर्य से सात्त्विक लगाव को अभिव्यक्त करता है। संस्कृत साहित्य के प्रख्यात पाश्चात्य विद्वान् श्री विन्टरनित्स ने कहा है– "थेरगाथा में प्रकृति` इन रमणीय वर्णनों ने इन धार्मिक कविताओं को भारतीय गीति काव्य में सच्ची मुक्ताएं बना दिया है।"[37]

थेरगाथाओं के सम्बन्ध में श्रीमती रायस डेविड्स कहती है कि– "इन गाथाओं को कवि आभ्यन्तर जगत् की गहन अभिव्यक्ति मानस है और उनका तो यहाँ तक कहना है कि अपने शाब्दिक नाद की झंकार के कारण थेर गाथा की कविताएँ बिना किसी हिचकिचाहट के कीट्स या शैली जैसे अंग्रेजी के महान गीतिकाव्य के सर्जक कवियों के समकक्ष रखी जा सकती है।"[38]

थेरगाथाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, यथा–

"नीलष्भवण्णा रुचिरा सीतवारी सुचिन्धरा।
इन्द्रगोपकस छन्ना ते सेला रमयन्ति माम्।।"[39]

थेरी गाथा साहित्य – पालि भाषा में लिखित थेरी गाथाएँ कलात्मक दृष्टि से मुक्तक काव्य परम्परा की शुरुआत है। इनमें समाज के विभिन्न नारी वर्गों–रानी, सेठानी, ब्राह्मणी, दासी, नर्तकी आदि से सम्बन्धित गाथाएँ है। इसमें कुल 518 मुक्तक है। थेरी गाथा की विषयवस्तु थेरगाथा के समान है। थेरों के मुक्तकों में जीवन संस्मरणों का उल्लेख है। इसके विपरीत थेरियों के मुक्तकों में सुख–दुःख से भरे उनके पूर्व जीवन के संस्मरण मिलते है। थेरी गाथाओं के सम्बन्ध में डॉ. परमानन्द शास्त्री कहते हैं कि–"नैतिक सत्य भावनाओं की गहनता और सबसे बढ़कर अपराजित व्यक्तित्व इन मुक्तकों की मुख्य विशेषताएँ है। इनमें अनुभूति की सान्द्रता के साथ वैयक्तिकता का अभूतपूर्व संयोग हुआ है जो प्रगीत मुक्तकों के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।"[40]

प्रकृत में रचित मुक्तक साहित्य

पालि भाषा में ही नहीं, प्राकृत भाषा में भी भारतीय मुक्तक काव्य परम्परा प्रस्फुटित हुई है। प्राकृत भाषा में रचित गाथाओं में राग–प्रेम का सम्मिश्रण है। प्राकृत भाषा के मुक्तक साहित्य का प्रमुख ग्रंथ महाकवि हाल रचित 'गाहासत्तसई' है। यदि थेरगाथा तथा थेरी गाथा में जीवन के वैराग्य का दर्शन करवाकर संसार के क्षणिकत्व की ओर इशारा किया है तो गाहासत्तसई के मुक्तक जीवन की श्रुद्रता तथा विषमता के मध्य आनन्द तथा प्रेम को अभिव्यञ्जित करते है। गाहासत्तसई के मुक्तकों में प्रणय जीवन की विविध स्थितियों का वर्णन है। संस्कृत वाङ्मय के शृङ्गार प्रधान मुक्तकों का आधार गाहासत्तसई है।

लौकिक संस्कृत और मुक्तक काव्य परम्परा

मुक्तक काव्य परम्परा सतत् रूप से प्रवाहित होती रही है। जिसका प्रमाण कालान्तर में होने वाली रचनाएँ है यथा महाभारत (शत साहसी–संहिता), वृतः की चतुः श्लोकी, तारसप्तक, यमुनाष्टक, गंगाष्टक, सज्जनगुण दशक, बैताल–पंचविशंतिका, द्वात्रिंशत्युत्तलिका, महाकवि विल्हण कृत चौरपंचाशिका, भूषण प्रणीत शिवा बावनी, शुकसप्तति आदि। यदि पालि, प्राकृत के गाथा–काव्यों के सम्पर्क ने मुक्तक काव्य को गति दी, तो संस्कृत की अपनी छन्दः परम्परा की श्रीवृद्धि ने उसे सम्पन्नतर बनाया। प्राचीन मुक्तक काव्य–परम्परा को कालिदास, अमरुक भर्तृहरि, जयदेव, गोवर्धन, बाणभट्ट, मयूर आदि कवियों ने अपनी रचनाओं से असीम सम्पन्नता प्रदान की।

प्रमुख प्राचीन–मुक्तक काव्य का सामान्य परिचय

(i) महाकवि कालिदास विरचित ऋतुसंहार व मेघदूत

कालिदास रचित ऋतुसंहार संस्कृत मुक्तक साहित्य परम्परा का प्रथम काव्य है। इसमें भारत वर्ष में प्राप्त छः ऋतुओं का क्रमशः निरुपण हैं यह महाकवि कालिदास की काव्य यात्रा का प्रथम पड़ाव है अतः इसमें सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है। "ऋतुसंहार एक महान कवि की प्रतिभा के प्रथम स्पन्दन की श्रेष्ठ और सरस अभिव्यक्ति है।" टीकाकार मणिराम का यह कथन पूर्णतया सत्य है।

मेघदूत महाकवि कालिदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है, जिसने उन्हें 'कविकुलगुरु' की उपाधि से मंडित किया। समीक्षकों ने इसे न केवल संस्कृत जगत् में अपितु विश्व साहित्य में श्रेष्ठ काव्य के रूप में अंकित किया है। मेघदूत के द्वारा कवि ने संस्कृत वाङ्मय में एक नवीन धारा जिसे संदेश काव्य या दूत काव्य कहते हैं, का श्री गणेश किया। यह दो भागों–पूर्व मेघ तथा उत्तर मेघ में विभक्त है। इसमें एक यक्ष की कथा है जिसे कुबेर द्वारा अलकापुरी से निष्कासित कर दिया जाता है। यक्ष रामगिरि पर्वत पर निवास करते हुए आठ माह बिता देता है। आषाढ़ मास के प्रथम दिन एक मेघखण्ड को देख, वह अपनी पत्नी की स्मृति में व्याकुल हो, मेघ के माध्यम से अपना विरह–संदेश यक्षिणी तक पहुँचाने की बात सोचता है। कालिदास ने इस काव्य में प्रेमीहृदय की भावना को उड़ेल दिया है।

मेघदूत में यक्ष ने अपनी मनोव्यथा, चिंता, प्रेम का मार्मिक अभिव्यञ्जन करते हुए कहा है–

"त्वामालिख्यप्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरूपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे,
क्रमरस्तास्मन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्त।।"[41]

(ii) घटकर्पर कृत घटकर्परकाव्य

इस काव्य की विषय–वस्तु मेघदूत के समान है। मेघदूत में पति मेघ को दूत बनाकर पत्नी के पास भेजता है, जबकि घटकर्पर काव्य में पत्नी पति के पास मेघ को दूत बनाकर भेजती है। यह मुक्तक काव्य 22 पद्यों में रचित यमक काव्य परम्परा का प्रेरणास्त्रोत रहा है।

(iii) अमरुक कृत शतक

कालिदास के पश्चात् मुक्तक काव्य–परम्परा के ख्यातनाम कवि अमरुक है। अमरुक कवि के विषय में ध्वन्यालोक में आनन्दवर्द्धनाचार्य ने लिखा है– "मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विब रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। तथा ह्यमरुकष्य कवेर्मुक्तकाः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धमानाः प्रसिद्धा एव।"[42]

अमरुक प्रणय–जीवन के कुशल चितेरे है। अमरुक नारीत्व की गरिमा और उदात्तता के कवि है। नारी जीवन की विडम्बना का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हुए वे कहते हैं–

"तथाभूदस्माकं प्रथममभिवक्ता तनुरियं
ततो न त्वं प्रेयानह्मपि च हताशा प्रियतमा।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि च कलत्रं किमपरं
मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम्।।"[43]

(iv) भर्तृहरि विरचित शतक–त्रय

भर्तृहरि संस्कृत मुक्तक काव्य परम्परा के अग्रणी कवि है। इतिहास में भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध है। इनके शतक–त्रय (नीतिशतक–शृङ्गारशतक– वैराग्यशतक) की उपदेशात्मक कहानियाँ जन–मानस को विशेष रूप से प्रभावित करती है।

(क) नीतिशतक – इसमें मूर्ख, विद्वान्, विवेक, हितचिन्तन, ज्ञानसाधन, मान, अर्थ, दुर्जन, सुजन, परोपकार, शौर्य, धैर्य, शान्ति, सुशीलता जैसे विषयों पर मुक्तक रचे गये है। सत्सङ्गति का माहात्म्य बताते हुए कवि कहता है–

"जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गति कथय किं न करोति पुंसाम्।।"[44]

(ख) शृङ्गार शतक – इस रचना में कवि ने रमणियों के सौन्दर्य का तथा उनके पुरुषों को आकृष्ट करने वाले शृङ्गारमय हाव–भावों का चित्रण है। वास्तव में इस शतक में सांसारिक भोग और वैराग्य इन दो विकल्पों के मध्य अनिश्चय की मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है। इस शतक में स्त्री प्रशंसा, संभोगवर्णन, कामिनीगर्हणा, ऋतुवर्णन आदि से सम्बन्धित मुक्तक है। भर्तृहरि कहते है कि नारी को अबला कहना मूर्खता है–

"नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा,

ये नित्यमाहुरबला इतिकामिनीस्ताः।

याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः,

शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबला कथं ताः।।"[45]

(ग) वैराग्यशतक – इस शतक में काव्य–प्रतिभा और दार्शनिकता का अद्‌भुत समन्वय है। इसमें सांसारिक आकर्षणों और भोगों के प्रति उदासीनता के उभरते हुये भावों का चित्रण है।

(v) बाणभट्ट विरचित चण्डीशतक

महाकवि मयूर द्वारा शापित बाणभट्ट ने अपने कुष्ठरोग के निवारण के लिए अपनी इष्ट देवी चण्डी की स्तुति में स्रग्धरा छंद में 100 मुक्तकों की रचना की जिसे चण्डीशतक कहते हैं।

(vi) मयूर कृत सूर्यशतक

बाणभट्ट की पत्नी द्वारा शापित मयूर ने शाप–निवृत्ति के लिए सूर्य देवी की स्तुति में सूर्यशतक की रचना की। "कहा जाता है कि कवि ने एक वट वृक्ष के सौ रस्सियाँ बाँधकर उस पर उल्टे लटक कर सूर्य की स्तुति में एक–एक पद्य प्रस्तुत किया था और एक–एक रस्सी का छेदन करते रहे थे। अन्तिम रस्सी के काटने से पूर्व ही सूर्य भगवान प्रकट हो गए थे और उनका सम्पूर्ण कुष्ठ रोग समाप्त कर इन्हें निरोग कर दिया था। यह सम्पूर्ण स्तुति स्रग्धरा छन्द में है तथा इसमें सूर्य उसकी किरणें, रथ, घोड़े, सारथी अरुण तथा सूर्य मण्डल का वर्णन है। इसी शैली समास बहुला है तथा सूर्य पराक्रम के अनुरूप है।"[46]

(vii) भल्लट कृत भल्लट शतक

भल्लट कवि प्राचीन मुक्तककारों में अग्रगण्य है। ये कश्मीर निवासी थे। भल्लट कवि का उल्लेख आनन्दवर्द्धन ने ध्वन्यालोकलोचन तथा कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है। संस्कृत मुक्तक काव्य परम्परा में भल्लट शतक का महत्त्व निर्विवाद है। "भल्लट ने अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों पर कटाक्ष करने और अपनी पीड़ा

को व्यक्त करने के लिए अन्योक्ति को माध्यम बनाया। उनकी उक्तियाँ हृदय में उतरती चली जाती है।"[47] अपने समय की विसंगति तथा विडम्बना को कवि ने सूर्य के रूप के द्वारा प्रस्तुत किया–

> **"पातः पूष्णो भवति महते नोपतापाय यस्मात्,**
> **कालेनास्तं क इह न ययुर्यान्ति यास्यन्ति चान्ये।**
> **एतावत्तु व्यथयतितरां लोकबाह्यैस्तमोभि–**
> **स्तस्मिन्नेव प्रकृति महति व्योम्नि लब्धोऽवकाशः।।"[48]**

सूर्य डूब गया, यह दुःखी होने की बात नहीं। समय आने पर कौन अस्त नहीं हुआ होगा? पर दुःख की बात यह है कि उसी विशाल व्योम में बाहरी अँधेरे ने कब्जा कर डाला है।

(viii) आचार्य आनन्दवर्द्धन कृत देवी शतक

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अपनी इष्ट देवी की स्तुति में देवीशतक की रचना की। देवी शतक चित्रकाव्य बहुल रचना है। इसमें कवि ने क्लिष्ट काव्य की रचना के साथ मुरजबंध, खड्गबंध, गोमूत्रबंध, सर्वतोबंध आदि चित्रकाव्यों के उदाहरण के साथ यमक के नाना प्रकारों का प्रयोग किया है। देवीशतक चित्रकाव्य का विलक्षण उदाहरण है। एक ही पद्य में संस्कृत, पैशाची, महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी तथा अपभ्रंश का सन्निवेश अतुलनीय है–

> **"अलोल कमले चित्तललाम कमलालये**
> **पाहि चण्डी महामोहभङ्गभीमबलामले।"[49]**

(ix) महाकवि शंभुकृत अन्योक्ति मुक्तालता तथा राजेन्द्रकर्णपूर

कश्मीरी महाकवि शंभु ने राजाहर्ष के आश्रय में अपना समय व्यतीत किया। कविवर ने 108 मुक्तकों में विभक्त अन्योक्तिमुक्तालता नामक रचना के माध्यम से समाज की विसंगतियों पर व्यङ्ग्य किया है। "मंखक ने श्रीकण्ठचरित में इन्हें 'महाकवि' कहा है तथा इनके पुत्र आनन्द का उल्लेख वहीं अलङ्कार की शोभा में किया है। 108 पद्यों के इस

कमनीय काम में पदों की शय्या तथा नोंक–झोंक नितान्त श्लाघनीय है। रोचक पद्यों का चमत्कार देखने योग्य है–

इयं यदि रदच्छदच्छविरपाटला पाटला
नताङ्गि तव चेदियं रुचिरकिंचनं काञ्चनम्।
किमन्यदमृतद्रवः श्रवणयोरिदं चेद् वचः
क्व न भ्रमर–योषितां गलदहंकृतिर्हुकृतिः।।"[50]

राजेन्द्रकर्णपूर में कवि ने अपने आश्रयदाता काश्मीर नरेश हर्षदेव की प्रशस्ति की है। इसमें 75 मुक्तक है।

(x) कवि जल्हण कृत मुग्धोपदेश

सोमपालविलास नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के रचयिता काश्मीर कवि जल्हण ने शार्दूलविक्रीडित छंद में गणिकाओं के रूप–रंग, चरित्र–चित्रण तथा उनसे सावधान रहने का परामर्श देते हुए वैश्यावृत्ति जैसे जहन्य अपराध के बारे में बतलाया है।

(xi) शिल्हण कृत शांतिशतक

इस शतक में मानसिक शान्ति की प्राप्ति के लिए विशेष बल दिया है। इस रचना पर भर्तृहरि विरचित नीतिशतक व वैराग्यशतक का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। वैदर्भी शैली में निर्मित यह काव्य चार अध्यायों–परितापप्रशमन, विवेकोदय, कर्त्तव्यता तथा ब्रह्मप्राप्ति, में विभाजित है। मनुष्य की तृष्णा पर उनकी उक्ति यथा–

"त्वामुदर साधु मन्यै शाकैरपि यदसिलब्ध परितोषम्।
हतहृदयं ह्यधिकाधिकवाञ्छाशतदुर्भरं न पुनः।।"[51]

हे उदर! तुम्हें शाकों से भी सन्तोष मिल जाता है, अतः मैं तुम्हें अच्छा मानता हूँ, जबकि सैंकड़ों इच्छाओं के कारण अपने इस पतित हृदय को सन्तुष्ट करना अधिक दुर्भर है।

(xii) खड्गशतक

कश्मीर नरेश के पुस्तकालय में संग्रहित इस रचना के कवि का नाम अनिर्णीत है। यह वीर रस की दीप्ति से प्रकाशमान काव्य है। स्रग्धरा छंद में रचित इस काव्य में गौडीरीति, दीर्घ समासावली तथा ओज गुण से परिपूर्ण शब्दावली द्वारा किसी राजा की खड्ग का वर्णन है। इस काव्य में शब्द–चित्र तथा अर्थचित्र का सुन्दर समन्वय है। खड्ग के चमत्कार का वर्णन करते हुए कवि ने राजा का नाम न बताकर उसे 'अस्य' सर्वनाम से अभिहित किया है, यथा–

> **"झात्कारान् जैत्रजन्येझगितिजनयतो झन्मिकर्णज्वरार्तिं**
> **झञ्झावाताजुकाराज्झणझणितिझणत्कारिणः प्रोज्जिहानः।**
> **झाषाड्की तामवस्थां झगिति रिपुजनं ग्राह्यन् धूर्जटीष्टां**
> **झूरन्नभ्रहितेषूज्झितरणरभसं प्राज्जिहीतेऽस्य खड्गः।।"[52]**

(xiii) नरहरि विरचित शृङ्गारशतक

115 पद्यों में निबद्ध इस काव्य में कवि ने शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, आर्या, मालिनी, पृथ्वी वसन्ततिलका, शिखरिणी छंद में निबद्ध मुक्तकों में नायिका के अंग–प्रत्यंग, वस्त्र–आभूषण आदि का वर्णन किया है।

(xiv) कुसुमदेव कृत दृष्टान्तशतक

उपदेशात्मक शतक साहित्य में अग्रगण्य दृष्टान्तशतक में अनुष्टुप् छंद में निर्मित पद्यों में दृष्टान्त का प्रयोग करते हुए कवि ने प्रथमार्द्ध में कथित सूक्तिवाक्य को उत्तरार्द्ध में उदाहरणपुरस्सर हृदयङ्गम बनाया है। यथा–

> **"धनमपि परदत्तं दुःखमौचित्यभाषां**
> **भवतिहृदि तदेवानन्दकारीतरेषाम्**
> **मलयजरसबिन्दुर्बाधते नेत्रमन्त–**
> **र्जनयति च स एवाह्लादमन्यत्र गात्रे।।"[53]**

(xv) गुमान कवि विरचित उपदेश शतक

100 आर्याओं में निबद्ध उपदेश शतक नीतिकाव्य की श्रेणी के अन्तर्गत आता है। इस पर क्षेमेन्द्र कृत चारुचर्या की प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें कवि ने दृष्टान्त के रूप में भागवत् तथा हरिवंशपुराण का उपयोग किया है। साम के प्रयोग का दृष्टान्त बड़ा सुन्दर है–जिस प्रकार वसुदेव ने देवकी को मारने के लिए उद्यत कंस को मधुरोक्ति द्वारा अनुनय करके अपनी पत्नी की रक्षा की, उसी प्रकार साम के प्रयोग द्वारा मूर्ख को वश में करना चाहिए–

"हन्तुं देवकीतनयान् वसुदेवेनोद्यतायुधः कंसः

मधुरोक्तिभिरनुनीतः साम्ना मूर्खं वशे कुर्यात्।"[54]

(xvi) विश्वेश्वर पाण्डेय कृत रोमावलीशतक

इसमें कवि ने नायिका की रोमावली का 100 मुक्तकों में सुन्दर वर्णन किया है। "रोमावलीशतक में उत्प्रेक्षा या कल्पना की उड़ान है। नायिका के देह–सौन्दर्य का चमत्कारमय वर्णन करने वाले काव्यों की परम्परा में यह उन काव्यों में है, जिनमें अंग–प्रत्यंग के किसी एक कोने पर ही कवि मुग्ध होकर उसे विविध उपमानों, बिंबों या अप्रस्तुतविधानों के आलोक में ताकता रह जाता है। विश्वेश्वर पाण्डेय कहते हैं–

वह्निं विनैव तव रोमलतामिषेण,

धूमावली स्फुरति नाभिगभीरदर्याम्।

संख्यामतीतमतिदुर्लभमत्र–तेन

मन्यामहे कुसुमचापमहानिधानम्।।"[55]

(रोमलता के प्याज से मानो तुम्हारी नाभि रूपी गहन गुहा से धुमावली निकल रही है। ऐसा लगता है मानों इस गुहा में कामदेव के असंख्य और अतिदुर्लभ शस्त्रों का निधान छिपा है।)

(xvii) सोमेश्वर कृत रामशतक

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य के प्रणेता सोमेश्वर ने स्रग्धरा छंद में राम के सम्पूर्ण जीवन को आधारित कर रामशतक की रचना की। भक्तिभाव तथा रसिकता से ओत–प्रोत इस काव्य में राघव के दर्शन करने पर विभिन्न व्यक्तियों की धारणाओं का वर्णन यथा–

"पुण्यानां प्राक्तनानां फलमिति जनकेनान्तरात्मेतिमात्रा
साक्षादक्षीयमाणप्रणयनिधिरिति मातृभिस्तिसृभिर्यः।
नीतिमूर्तितयमात्यैः परपुरुष इति ज्ञानिर्भिज्ञायमानः
प्राप प्रौढि क्रमेण दृढयतु नितरां राघवः सश्रियं वः॥"[56]

(xviii) अवतार कवि कृत ईश्वर शतक

काश्मीरी कवि अवतार ने ईश्वर शतक नामक मुक्तक काव्य में पद्मबन्ध, डमरुबन्ध, हलबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, चक्रबन्ध, तूणबन्ध आदि नानाबन्धों से मण्डित है। इसमें 113 पद्य है।

(xix) सुन्दराचार्यकृत गीतिशतक

शाक्त स्तोत्रों में परिगणित गीतिशतक में अत्यन्त लयपूर्ण गेय पदविन्यास के साथ अम्बिका की कान्ति का निवर्चन है। प्रत्येक पद्य में कान्तिमत्यम्ब पद की आवृत्ति हुई है। कवि अपनी हीनता का निवर्चन करते हुए कहता है–

"मामसकृदाप्रसादाद् दुष्कृतकारीति मामन्यस्व
स्मर किं न मया सुकृतं वर्धितमिदमद्य कान्मित्यम्ब।।"[57]

(हे कान्तिमती माँ अम्बिका! मैं आज तक पाप करता रहा हूँ, यह विचार कर मेरा तिरस्कार मत करो। आत तुम्हें याद करके मैंने अपनी सुकृति का वर्धन कर लिया है।)

(xx) गोवर्धन विरचित आर्यासप्तशती

आर्यासप्तशती के प्रणेता गोवर्धन बंगाल के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन की सभा के मान्य कवि थे। यह ग्रंथ उन्होंने गाथासत्तसई को आदर्श मानकर विरचित किया। उन्होंने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है–

"वाणी प्राकृतिसमुचितरसा बलेनैव संस्कृतं नीता
निम्नानुरूपनीरा कलिन्दकन्येव गगनतलम्।"[58]

(काव्य बंध का समुचित रसपाक प्राकृत में ही सम्भव है, संस्कृत में तादृश रस–परिपाक बलात् किया जाता है, जैसे कालिन्दी का प्रवाह नीचे की ओर ही जाता है, उसे आकाश में ले जाना बलात् ही है)

गोवर्धन ने ग्रन्थारम्भ के 29 पद्यों में देव–वन्दना की हैं उसके पश्चात कालिदास भवभूति तथा बाण जैसे महाकवियों की प्रशस्ति की है, यथा–

"साकूत–मधुर–कोमल–विलासिनी–कण्ठ–कूजित–प्राये।
शिक्ष–समयेऽपि मुदे रत–लीला–कालिदासोक्ति।।"
भवभूतेः सम्बन्धात–भूधर–भूर् एव भारती भाति।
एतत् कृत–कारुण्ये किम् अन्यथा रोदितिग्रावा।।
जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथा गच्छामि।
प्रागल्भ्यम् अधिकम् आप्तुं वाणी बाणों बभूवेति।।[59]

इसके बाद उन्होंने कविता के विषय में अपने विचार व्यक्त किये है, यथा–

"अकलित–शब्दालङ्कृतिर्–अनुकूला स्खलि–पद निवेशापि
अभिसारिकेव रमयति सूक्तिः सोत्कर्ष–शृङ्गार।"[60]

गोवर्धन को इस रचना के कारण संस्कृत वाङ्मय में अत्यन्त आदर प्राप्त हुआ है। आर्यासप्तशती पर अब तक छः टीकाग्रन्थ भी उपलब्ध है। आर्यासप्तशती को उपजीव्य मानकर विश्वेश्वर पाण्डेय, पं. वागीश शास्त्री, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी जैसे उत्कट विद्वानों ने भी सप्तशती ग्रंथों का प्रणयन किया। इस ग्रंथ में कुल 754 गाथाएँ है। ग्रन्थारम्भव्रज्या में 57 गाथाएं तथा इसके बाद अकारादि के क्रम से 700 व्रजाएँ है।

(xxi) जयदेव कृत गीत–गोविन्द

गीत गोविन्द में श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ रासलीला, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ वचन, कृष्ण की राधा के लिए उत्कंठा, राधा की सखी द्वारा राधा के विरह संताप का वर्णन है। गीत–गोविन्द साहित्य–जगत् में एक अनुपम कृति हैं इसकी मनोरम रचना शैली, भाव प्रवणता, सुमधुर राग–रागिणी, धार्मिक तात्पर्यता तथा कोमलकान्त पदावली साहित्यिक रस पिपासुओं को अपूर्व आनन्द प्रदान करती है। समग्र

संस्कृत साहित्य में इस कोटि की मधुर रचना दूसरी नहीं है। संस्कृत भारती के सौन्दर्य और माधुर्य की पराकाष्ठा का अवलोन करना हो, तो गीतगोविन्द का अनुशीलन करना चाहिए। ललित छन्दों और कोमलकान्त पदावली का ऐसा मणि–काञ्चन संयोग हुआ है कि गीतों के उच्चारण मात्र से सहृदयों के हृदय में तदनुरूप रस का आविर्भाव एवं सञ्चार होने लगता है।

(xxii) मूक कवि कृत शतक–संग्रह

मूक कवि ने अपनी आराध्या पंचशती कामाक्षी देवी की स्तुति में पाँच शतकों का संग्रह रचा–कटाक्षशतक–मन्दस्मितशतक–पादारविन्दशतक–आर्याशतक–स्तुतिशतक आदि पाँचों शतक अलग–अलग छन्दों में विरचित है। कटाक्षशतक में वसन्ततिलका, मन्दस्मितशतक में शार्दूलविक्रीडित, पादारविन्दशतक में शिखरिणी, आर्याशतक में आर्या तथा स्तुतिशतक में अनेक छन्द प्रयुक्त हुए है।

(xxiii) पण्डितराज जगन्नाथ कृत मुक्तक काव्य

पण्डितराज के मुक्तक काव्य परम्परा में पाँच लहरी काव्यों का मुख्य स्थान है– गंगालहरी, अमृतलहरी, करुणालहरी, लक्ष्मीलहरी तथा सुधालहरी। पण्डितराज ने गंगालहरी की रचना काशी में की। मुसलमान स्त्री रखने के कारण काशी के पंडितों से बहिष्कार उनसे सहन न हुआ। वे सपत्नीक गंगा के तट पर जा बैठे तथा गंगालहरी का निर्माण किया। गंगा प्रसन्न होकर प्रत्येक श्लोक के पाठ पर एक–एक पग बढ़ने लगी और 52वें श्लोक पढ़ते–पढ़ते 52 पग बढ़कर पति–पत्नी दोनों को आत्मसात् कर लिया। शिखरिणी छंद में रचित यह रचना रसिकों में लोकप्रिय है। यथा–

"विभूषितानङ्ग रिपूत्तमाङ्गा, सद्यः कृतानेकजनार्तिभङ्गा।

मनोहरोत्तुङ्गचलतरङ्गा गङ्गा ममाङ्गान्यमली करोतु।।"[61]

करुणालहरी 60 पद्यों की मुक्तक रचना है। "इसमें आत्म–समर्पण की प्रशस्त भावना है। भावों की कोमलता तथा पदों के मनोरम विन्यास द्वारा कवि अपने भक्तिपूरित हृदय का उद्‌गार सद्यः प्रकट करता है।"[62]

अमृतलहरी में 10 पद्यों में यमुना का स्तवन किया है। सुधालहरी में स्रग्धरा छंद में निबद्ध सूर्य देव की स्तुति की है। लक्ष्मीलहरी में 41 शिखरिणी छंदों में देवी लक्ष्मी की स्तुति है।

(xxiv) जम्बू कवि कृत जिनशतक

जम्बू कवि द्वारा रचित जिन शतक चार भागों में विभक्त है। स्रग्धरा छंद में निबद्ध इस काव्य के प्रत्येक भाग में 25–25 पद्य है। इसमें भगवान् जिनका वर्णन है। प्रथम भाग में भगवान जिनके चरण, द्वितीय भाग में हाथ, तृतीय भाग में मुख तथा अन्तिम भाग में वाणी का वर्णन है।

(xxv) नीलकंठ दीक्षित कृत मुक्तक काव्य

नीलकंठ दीक्षित ने सभारञ्जनशतकम्, शांतिविलास, वैराग्यशतकम्, कलिविडम्बनम्, आनन्दसागरस्तव, अन्यापदेशशतकम् आदि मुक्तक काव्यों की रचना की। सभारञ्जनशतकम् एक प्रकार का नीतिकाव्य है। इसमें उपदेश तथा विचारों का सुन्दर सामञ्जस्य है। दाम्पत्य जीवन के विषय में वे कहते हैं–

"गृहिणा यदि लभ्येत गृहिणी हृदयङ्गमा
संसार इति को भारस्तं सारमनुपश्चतः।
आहत्य चिनुमः स्वर्गपवर्गमपि क्रमात्
अनुकूले हि दाम्पत्ये प्रतिकूले न किञ्चन।।"[63]

(यदि हृदयङ्गम गृहिणी मिल जाए तो संसार भार नहीं अपितु सार बन जाता है। मानव स्वर्ग तथा मुक्ति दोनों इसी संसार में प्राप्त कर सकता है। यदि दाम्पत्य जीवन अनुकूल है तो सब सम्भव है, यदि प्रतिकूल है तो कुछ नहीं)।

इसमें 105 अनुष्टुप छंदों में जीवन और जगत् के विषय में विचारकर, धर्म के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

कलिविडम्बनम् में 102 अनुष्टुप छन्दों में कलियुग की विडम्बना का मार्मिक चित्रण है। वर्तमान समाज तथा व्यक्ति पर तीखी टिप्पणियाँ है। इसमें पंडित, अध्यापक, पुरोहित,

धनी लोग, राजा, वैद्य आदि पर व्यंग्यात्मक बाण छोड़े गये हैं। तात्कालीन शास्त्रार्थ के विषय में कहा है–

"अभ्यास्यं लज्जमानेन तत्त्वं जिज्ञासुना चिरम्
जिगीषुणा हियं त्यक्त्वा कार्यः कोलाहलो महान्।"[64]

(तत्त्व को जानने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को निरनतर लज्जा युक्त होकर विद्याभ्यास करना चाहिए, किन्तु यदि शास्त्रार्थ में विजय पाना है तो लज्जा त्यागकर महान् कोलाहल करना चाहिए।)

अन्यापदेश में शार्दूलविक्रीडित छन्द में विरति 100 अन्योक्तियाँ है, जिनमें पशु–पक्षी, वृक्ष, समुद्र आदि को विषय बनाया गया है। वणिक् को लेकर व्यंग्यात्मक शैली में नीलकण्ठ दीक्षित कहते हैं–

"आसीनः सुखमापणे यदि वणिक्छ्द्मालुभिः प्रार्थितः
किञ्चिच्ह्रंसति पञ्चकं दशकमित्येतन्न तस्याद्भुतम्
आपातालविघूर्णिताम्भसि चलत्यौत्पातिके मारुते
मञ्जन्त्यामपि नावि मुञ्चति न यस्तामेव मूल्यस्थितम्।"[65]

(बाजार में आराम से बैठा बनिया यदि मोल–भाव में पाँच को दस बताये, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर वह नौका से सामान लेकर आ रहा हो, सागर में तूफान आ जाये, नाव डूबने लगे, तब भी मोल–भाव करने में उस समय भी वह अपनी वही चौकसी बनाये रखता है।)

(xxvi) घनदराज कवि विरचित शतक–त्रय

धनदराज एक जैन कवि है, जिनके पिता का नाम श्रीमालकुलतिलक संघपाल है। आपने भर्तृहरि के शतक–त्रय को आदर्श मानते हुए शतक–त्रय की रचना की।
धनदराज ने श्रृंगारशतक में अपना परिचय दिया है–

"मेरुर्मानितया धनैर्धनपतिर्वाच्या च वाचस्पति–
र्भोगेनापि पुरन्दरः शुचितयादानेन चिन्तामणिः।

गाम्भीर्येण महोदधिः करुणया कोपीह तीर्थङ्करः

श्रीमालो धनदः कृती वितनुते शृङ्गारपूर्वंशतकम्।।"[66]

(मान से मेरु, धन से धनपति कुबेर, वाणी से वाचस्पति, भोग से इंद्र, शुचिता व दान से चिंतामणि, गांभीर्य से समुद्र, करुणा से जो तीर्थङ्कर है, ऐसे श्रीमाल निवासी धनद ने शृंगार शतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक की रचना की।)

समाज को सन्मार्ग दिखाने के लिए धनद ने शृंगारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक की रचना की।

(xxvii) नीलकण्ठ शुक्ल का मुक्तक साहित्य

नीलकण्ठ शुक्ल के पिता का नाम जनार्दन तथा माता का नाम हीर था। आपने शृंगारशतक, चिमनीचरित जारजतिशतक तथा अधरशतक नामक मुक्तक काव्यों की रचना की।

चिमनीचरित 106 मुक्तकों में रचित एक शृंगाररस प्रधान काव्य है, जिसमें चिमनी तथा पण्डित दयादेव शर्मा के प्रणय का वर्णन है। मुगलकाल की संस्कृति और विलासिता का चित्रण इस काव्य की विशेषता है।

अधरशतक भी शृंगाररस की रचना है। इसमें नीलकण्ठ शुक्ल की कल्पनाएं बहुत रोचक है। नायिका के नासिका के मुक्ता को लेकर वे कल्पना करते है–

"न बन्धूकं नो वा करककुसुमं नो किसलयं

न बिम्बं नाम्भोजं दलमपि न वा विद्रुमजपे

इदं नासामुक्ताफलमधरसाम्याय सुदृशः

किमित्थं नात्कारं विरचयति दोलयितुमिषात्।"[67]

(नायिका का झूलता हुए इस नासिका के मुक्ताफल की सदृशता न तो बन्धूक कर सकता है, न करक कुसुम, न किसलय, न बिम्ब, न कमल, न विद्रूम और न जपापुष्प)।

(xxviii) अन्योक्तिशतक

अन्योक्तिशतक की रचना दर्शन विजयगणि ने की। अन्योक्तिशतक की अन्योक्तियों की विशेषता है कि इनके प्रतीक तो परम्परागत है, किन्तु उनके संदर्भ तथा अभिप्राय बदले हुए है। कवि भ्रमर के बहाने से अपनी व्यथा और अपने समय की विडम्बना व्यक्त करते हुए कहता है–

"सकलगुणनिधानं मां विहाय द्विरेफाः
परिमलपरिहीनं हन्त चुम्बन्ति धूर्तम्।
इति मनसि विषादं मां कृथाश्चम्पकौच्चे–
रिह मधुपसमाजे को विवेकावकाशः।।"[68]

इनके अतिरिक्त रघुनाथतीर्थ विरचित अन्योक्तिशतक, नारायणदास कृत अन्यापदेश शतक, भट्टविश्वेश्वरकृत अन्योक्तिशतक, वंशीधरमिश्र कृत अन्योक्तिस्तबक आदि अनेक मुक्तक काव्यरचे गये।

निष्कर्षतः मुक्तक विश्व की साहित्य विधा की सबसे प्राचीन विधा है। यह संस्कृत वाङ्मय की सभी काव्य विधाओं की जननी है। वाचिक परम्परा में सृष्टि के आदिकाल में जब मनुष्य ने अपने भावों को कावयात्मक अभिव्यक्ति दी, तो उसने गाथा, मुक्तक या गीत इस प्रकार की काव्य कोटियों की ही सर्वप्रथम रचना की। वेद के मंत्र अपने आपमें मुक्तकों के उदाहरण है। लौकिक काव्य की सृष्टि का उपक्रम भी वाल्मीकि के मुख से, बहेलिये द्वारा कामरत क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर पक्षी का वध करने पर मादा का करुण विलाप सुनकर, अनायास निकल पड़े मुक्तक से हुआ–

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकम् अवधीः काममोहिताम्।।"

(हे बहेलिये! तूने काममोहित मैथुनरत क्रौञ्च पक्षी को मारा। जा तुझे कभी भी प्रतिष्ठा की प्राप्ति नहीं हो पायेगी।)

इसके बाद भी यह धारा निरन्तर प्रवाहमान् होती रही।

(2) आधुनिक मुक्तक साहित्य

अर्वाचीन काव्यशास्त्रों में मुक्तक का स्वरूप

प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने 'अभिराजयशोभूषण' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ में श्रव्य काव्य संदर्भ के अन्तर्गत मुक्तक काव्य को व्याख्यायित किया है। श्रव्य काव्य को उन्होंने गद्य–पद्य–चम्पू के भेद से तीन प्रकार का माना है। पद्य को मुक्तकादि तथा प्रबन्ध के भेद से दो प्रकार का माना है। मुक्तकादि का लक्षण करते हुए लिखा है–

"पूर्वाऽपरसन्दर्भाभ्यां मुक्तं पद्यं तु मुक्तकम्।"[69]

(पूर्व एवं पर सन्दर्भों से मुक्त पद्य को मुक्तक कहा जाता है।)

"मुक्तं पूर्वापरकथासन्दर्भेण मुक्तं स्वतन्त्रं पद्यं मुक्तकम्।"[70]

अर्थात् जो पिछले तथा अगले कथा सन्दर्भ से मुक्त स्वतंत्र हो, वह पद्य मुक्त कहा जाता है।

वे आगे मुक्तक के विषय में लिखते हैं–

"अभिनवगुप्तपादतु मुक्तकं प्रबन्धकाव्यमध्यस्थितमपि स्वीकरोति। तद्यथाऽसा–वधिलोचनम्–मुक्तमन्येन नालिङ्कितम्। तस्य संज्ञायां कन्। तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्तनिराकाङ्क्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्ति मुक्तकमित्युच्यते।"

यथा वा भूयोऽप्यसावाह स्पष्टतरम्–यदि वा प्रबन्धेष्वपि मुक्तकस्यास्ति सद्भावः। पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम। यथा–त्वामालिख्य प्रणयकुपिताम् इत्यादिश्लोकः।

(अभिनवगुप्तपाद तो मुक्तक को प्रबन्ध काव्य के मध्य में भी स्थित स्वीकार करते है। जैसा कि लोचनटीका में उन्होंने कहा है– मुक्त का अर्थ है दूसरे द्वारा आलिङ्गित न होना। मुक्त पद्य ही मुक्तक है कन् प्रत्यय जुड़ने के कारण। इसलिए स्वतंत्रपूर्वक परिसमाप्त होने वाला, निजेतर अर्थ की आकांक्षा न करने वाला (अर्थात् अपने ही अभिप्राय में पर्यवसित) तथा प्रबन्ध के बीच में (भी) आने वाला मुक्तक कहा जाता है।)

जैसा कि उन्होंने आगे पुनः और स्पष्टता के साथ कहा है—प्रबन्ध काव्यों (के बीच) में भी मुक्तक का सद्भाव होता है। पूर्व और पर सन्दर्भों से निरपेक्ष रहते हुए भी जिसके द्वारा रसचर्वणा की जाती है वही है—मुक्तक। जैसे—प्रणयकुपित तुम्हें चित्रित कर इत्यादि (उत्तर मेघ) का पद्य।[71]

इस प्रकार मुक्तक काव्य पद्यान्तर निरपेक्ष होता है। मुक्तक काव्य के भेदों का क्रमपूर्वक वर्णन करते हुए वे लिखते है—

"द्वभ्यां मिथोऽवसक्ताभ्यां युग्मकं जायते पुनः।
पद्यत्रयेण सन्दृब्धं सन्दानितकमुच्यते।
कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम्।।
सप्तकं चाष्टकं ख्यातं दशकं विंशतिस्तथा।
पञ्चाशिकाशती यद्वा शतकं त्रिशती पुनः।।
ततः पञ्चशती ख्याता ख्याता सप्तशती तथा।
सहस्त्रकमपि ख्यातं समवाप्तपरम्परम्।।"[72]

(इस प्रकार मुक्तक के अन्तर्गत युग्मक, सन्दानितक, कलापक, कुलक, सप्तक, अष्टक, दशक, विंशतिका, पञ्चाशिका, शतक तथा सहस्त्रक आते हैं)

डॉ. रामसागर त्रिपाठी मुक्तक—काव्य का स्वरूप विवेचनकरते हुए लिखते हैं कि— "ऐसा पद्य, जो परम—निरपेक्ष रहते हुए पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो, काव्य के लिए आवश्यक चमत्कृति आदि विशेषताओं से युक्त हो, अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण जो आनन्द देने में समर्थ हो, जिसका गुम्फन अत्यन्त रमणीय हो और जिसका परिशीलन ब्रह्मानन्द सहोदर रस—चर्वणा के प्रभाव से हृदय की मुक्तावस्था को प्रदान करने वाला हो।"[73]

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में तृतीय अधिकरण में मुक्तक काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं—

"अनिबद्धं तु मुक्तकम्"[74]

(अनिबद्ध काव्य मुक्तक है।)

आगे वे लिखते हैं कि–

"कथाप्रसङ्ग–घटनेतिवृत्तविन्यासादिभिरनिबद्धमित्यर्थः। तस्मिंश्च प्रत्येकं पद्यं स्वात्मपर्यवसायि। यदाहुः प्राचीनाः–पूर्वापरनिरपेक्षेणापि येन रसचर्वणा क्रियते तन्मुक्तकमिति। यत्तु वामनेनोक्तम्–नानिबद्धं चकास्ति एकतेजः–परमाणुवत् (1.3.29) तदसत्। एकस्यापि मुक्तकस्य क्वचिद् उत्तमोत्तमकाव्यत्वम् महावाक्यता च।"

कथा प्रसंग, घटना और इति वृत्तविन्यास आदि से अनिबद्ध काव्य मुक्तक है। इसमें प्रत्येक पद्य आत्मपर्यवसायी होता है। प्राचीनों ने भी कहा है–पूर्वापर निरपेक्ष होकर भी जो काव्य रसास्वाद कराता है वह मुक्तक है। वामन ने जो यह कहा है मुक्तक काव्य तेज के परमाणु के समान (अग्नि आदि की चिंगारी के समान) शोभा प्राप्त नहीं करते, वह उचित नहीं। एक ही मुक्तक कहीं उत्तमोत्तम काव्य हो सकता है। अर्थात् वह समस्त जीवन की व्याख्या करने में समर्थ हो सकता है।[75]

प्रो. सी.एल. शास्त्री मुक्तक काव्य का महत्त्व बताते हुए कहते हैं–

"मुक्तक आदि स्वतन्त्र रचनाओं में भर्तृहरि, अमरुक और मयूर जैसे प्रसिद्ध कवि गिने जाते हैं। इन कवियों के श्लोक चिरकाल से लोकप्रिय रहे हैं और आज भी अपना महत्त्व टिकाये हुए हैं।"[76]

प्रमुख अर्वाचीन मुक्तक काव्य का सामान्य परिचय

(i) परमानन्दसूक्तिशतकम्

108 श्लोकों में रचित इस मुक्तक काव्य के रचयिता परमानन्द शास्त्री है। इसमें जीवन की विषमताओं और कुटिलताओं का वर्णन है। यह काव्य अन्योक्तियों से परिपूर्ण है। आधुनिक जीवन में समाज में फैली कुरीतियों पर व्यङ्ग्यात्मक टिप्पणी की गयी है। दहेज के कारण जलाई गई युवती की व्यथा का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"वक्षस्ताडिकेन शोकविकलैराक्रन्द्यते बाहुभिः
धिक्कारः स्फुटितोऽद्य कोऽपि नगरे स्टोवः पुनः कौतुकी।"[77]

(ii) हजारीलाल शास्त्री के मुक्तक काव्य

श्री हजारीलाल शास्त्री ने सात मुक्तक काव्यों की रचना की है– **'शिवप्रतापविरुदावली', 'इन्दिराविजयप्रशस्तिशतकम्', 'शिवशतकम्', 'महर्षिदयानन्द–शतकम्', 'सगुणब्रह्मस्तुतिशतकम्', 'इन्दिराविजयवैजयन्ती' और 'कादम्बरीशतकम्'।**

शिवजी तथा महाराणाप्रताप की विजयगाथाओं तथा जीवनचरित को आधार बनाकर शिवप्रतापविरुदावली की रचना की हैं

इन्दिराविजयप्रशस्ति तथा इन्दिराविजय वैजयन्ती नामक दो शतक काव्यों में श्री इन्दिरा गांधी के शासनकाल की उपलब्धियों की चर्चा करते हुये इन्दिरा से दुराचरण को हटाने की प्रार्थना की है। इ.प्र. शतकम् में 114 श्लोक है। इसी काव्य के आगे 12 श्लोक जोड़कर इन्द्रिराविजयवैजयन्ती नामक मुक्तक काव्य रचा। इ.प्र. शतकम् में इन्दिरा गांधी की राजनैतिक उपलब्धियों का भी वर्णन है। काव्य के अंत में बंग देश की स्वतन्त्रता की चर्चा है–

"समस्तां स्वदेशस्य शक्तिं नियोज्य सुमातेन्दिरा वङ्गदेशं स्वतन्त्रम्
विधायार्यवीराङ्गनेयं कुपाकाद् हसन्ती मुदासीद् यशोभिः सुपूता।"[78]

(iii) शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी का मुक्तक साहित्य

शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने अनेक शतक काव्यों की रचना की, जिनमें 'गोस्वामी–तुलसीदासशतकम्, 'काव्य–प्रयोजनशतकम्', 'विद्योपार्जनशतकम्', 'यात्राशतकम्' आदि है। इनकी सर्वोत्कृष्ट मुक्तक रचना स्फूर्तिसप्तशती है, जिसमें 719 पद्य है। यह रचना चार भागों में विभक्त है–आर्याभागः, समस्यापूर्तयः, नानाच्छन्दांसि तथा गीतानि। इस काव्य में देवस्तुति, महापुरुषप्रशंसा, दार्शनिकता, प्रगतिशीलता, सामाजिकता, समसामयिकता जैसे 96 विषयों पर पद्य रचित है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी के विषय में कवि कहता है–

"उत्कोचानामिह शबलताऽनन्तरूपेषु दृश्या
यत्रोत्कोचप्रबलता तत्र भोग्या विलासाः
अद्योत्कोचः शिव इति हरिर्वाऽथ देवो हनुमान्
चञ्चद्रूपं द्रविणमतुलं को विहातुं समर्थः।।"[79]

(iv) डॉ. सत्यव्रत शास्त्री का मुक्तक संसार

संस्कृत के प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित डॉ. सत्यव्रतशास्त्री ने 'बृहत्तरभारतम्', 'शर्मण्य देश सुतरां विभाति' तथा 'थाईदेशविलासम्' नामक मुक्तक काव्यों की रचना की।

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ द्वारा प्रकाशित शर्मण्यदेश सुतरां विभाति नामक शतक काव्य में कवि ने 1975 में जर्मनी–यात्रा के सुखद अनुभव, वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य, कार्यकुशल तथा परिश्रमी समाज का हृदयहारी वर्णन किया है। भारत तथा जर्मनी देश के बीच मधुर सम्बन्धों को स्थापित करने के उद्देश्य से लिखे गये इस काव्य में लेखक का देश–प्रेम झलकता है।

बृहतरं भारतम् सौ पद्यों में रचित मुक्तक काव्य है, जो विश्व में अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति के कारण प्रसिद्ध भू–भाग की गौरव–गाथा को कहता है, जिसे भारत के नाम से जाना जाता है।

थाईदेशविलासं 121 पद्यों में रचित एक मनोरम रचना है। इसमें थाई देश तथा वहाँ की संस्कृति का सुन्दर परिचय दिया गया है। प्रस्तुत काव्य थाई इतिहास वहाँ की भौगोलिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति को प्रतिबिम्बित करने वाला, बौद्ध एवं हिन्दु धर्म के समन्वयात्मक स्वर को प्रतिध्वनित करने वाला आदिकाव्य रामायण के प्रति थाई समाज की अपार श्रद्धा को दर्शाने वाला है।

(v) बदरीनाथ झा का मुक्तक संसार

कविशेखर बदरीनाथ झा ने 'अन्योक्तिसाहस्त्री' तथा 'शोकश्लोकशतकम्' नामक मुक्तक काव्यों की रचना की। काशी से प्रकाशित अन्योक्तिसाहस्त्री दशशतकों में विभाजित है–जलशय–खचर–शकुन्त–स्थावर–तरुवर–लता–पशु–यादश–प्रकीर्ण–शतक, जिनमें 1000 से अधिक अन्योक्तियाँ है।

शोकश्लोकशतक 100 पद्यों में कवि ने राष्ट्र नायक महात्मा गांधी के देहावसान पर वसन्ततिलका छन्द में हृदय के उद्गारों को व्यक्त किया है। काव्य में व्यंजित कवि हृदय की आकुलता से ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि को वाणी मिल गयी हो परन्तु इस करुणा

रस प्रधान काव्य में राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना उद्दीप्त करने में बाधक नहीं है। एक विशाल देश के पिता स्वरूप महापुरुष के निधन पर प्रकट शोक से उनके प्रति असीम श्रद्धाभाव अभिव्यंजित होता है। शोक प्रकट करते हुये कवि ने राष्ट्रपिता के गुणों की चर्चा की है।

(vi) ब्रह्मानन्द शुक्ल की मुक्तक रचना

ब्रह्मानन्द शुक्ल ने राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत 'श्रीगान्धिचरितम्' तथा 'नेहरूचरितम्' नामक मुक्तक काव्यों की रचना की।

श्री गान्धिचरितम् में 111 श्लोक है, जिनमें महात्मा गांधी के चरित्र के कुछ महनीय पक्षों का संक्षेप में चित्रण है। भाषा सरस, सरल, माधुर्य गुण प्रधान है। गांधीजी के उदात्त गुणों से देश प्रेम व बलिदान को स्पष्टकर पाठकों के हृदय में राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने का सफल प्रयास किया गया है। नेहरूचरितम् में भी जवाहरलाल नेहरू के समग्र जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

(vii) रमेशचन्द्र शुक्ल का मुक्तक संसार

डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल ने 'गान्धिगौरवम्', 'लालबहादुरशास्त्रीचरितम्', 'भूवैभवम्', 'इन्दिरायशस्तिलकम्' आदि मुक्तक काव्यों की रचना की।

गान्धिगौरवम् नामक मुक्तक काव्य में कवि ने महात्मा गांधी के गौरवाधायक तथा राष्ट्रोपयोगी कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया है। कवि ने इस कृति में चरित नायक के व्यक्तित्व गुणों से कहीं अधिक उनके राष्ट्रीय भावों पर प्रकाश डाला है। इस काव्य में इन्द्रवज्रा छंद में निबद्ध 125 पद्य है। लालबहादुरशास्त्रीचरितम् में शास्त्री जी के सरल व्यक्तित्व एवं उदात्त गुणों का वर्णन है। शास्त्रीजी के व्यक्तित्व के विषय में कवि लिखता है–

"योऽभूत् प्रकृत्या सरलो विनीतः
शान्तिप्रियो भारतमातृभक्तः
ऐक्ये न सत्ये धृतधीरनिष्ठः
शास्त्रीड्यते लालबहादुरः सः।।"[80]

114 श्लोकों में रचित इन्दिरायशस्तिलकम् में श्रीमती गांधी के व्यक्तित्व तथा गुणों की चर्चा करते हुए उनकी राजनीतिक सफलताओं का उल्लेख है। देश–दारिद्य निवारण, बँगलादेष निर्माण, श्रमिक–सुरक्षा, पोखरण–परमाण परिक्षण आद इस काव्य के विषय है।

(viii) रघुनाथ प्रसाद–चतुर्वेदी का मुक्तक संसार

रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने पाँच मुक्तक काव्यों की रचना की 'शतकद्वयम्', 'शतकाष्टकम्', 'मैक्सिम–गोर्की पञ्चशती', 'गान्धीगरिमकाव्यम्' तथा 'मुक्तक– मौक्तिकम्'। शतकद्वयम् का पूरा नाम 'श्रीमदाचार्यवल्लभतच्छिष्यमहाकवि– सूरशतक है। इसमें दो मुक्तक काव्यों वल्लभशतक तथा सूरशतक का समावेश है। 106 श्लोकों में निर्मित वल्लभशतक में वल्लभाचार्य का सम्पूर्ण जीवन परिचय है। सूरशतक में अष्टछाप के सर्वोत्कृष्ट कवि सूरदास के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का वर्णन है।

शतकाष्टकम् में संस्कृत काव्य–जगत् के आठ श्रेष्ठ कवियों के विषय में लिखे आठ शतकों का संग्रह है। इसमें आदि कवि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, बाणभट्ट व श्रीहर्ष के व्यक्तित्व–कृतित्व तथा उनके काव्य की विशेषताओं का वर्णन है। वाल्मतीकिशतक में आदिकवि के प्रति अपना आदर भाव प्रकट करते हुए कवि कहता है–

"ऋतुराजामरगिरः काव्यकल्पद्रुमे स्थितम्
उद्गिरन्तं त्वार्यधर्म वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्।"[81]

मैक्सिम–गोर्की पञ्चशती में रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार मैक्सिम गार्की के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर 554 श्लोक रचे है। गान्धी गरिमकाव्यम् में गांधी जी की गरिमा का गुणगान है। मुक्तकमौक्तिकम् में जीवनोपयोगी सुन्दर भौक्तिकों का सङ्कलन् है, जो बहुत ही सुन्दर है।

(ix) श्रीधर भास्कर वर्णेकर का मुक्तक संसार

श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने 'विभूतिवन्दनास्तोत्रम्', 'मातृभूलहरी', 'स्वातन्त्र्यवीर–शतकम्', 'जवाहरतरंगिणी' आदि मुक्तक काव्यों की रचना की।

विभूतिवन्दनास्तोत्रम् में कवि ने 100 श्लोकों में भारत की विभिन्न विभूतियों की वन्दना की है। काव्य में भारत के धर्मनिरपेक्ष रूप को स्पष्ट रूप से उजागर करते हुये प्रत्येक मतावलम्बी के आराध्य का स्मरण किया है। इस काव्य में अखण्ड भारत की चेतनाचेतन विभूतियों के हृदयावर्जक वर्णनों का स्पर्श पाकर राष्ट्रीयता की मन्दाकिनी भारतीयों की स्वदेशानुरागात्मक भावनाओं को उद्दीप्त करती है।

मातृलहरी में भारतभूमि की वन्दना की गयी है। भारत की प्राकृतिक सम्पदा का आत्मीयता के साथ किया गया स्मरण पाठकों की भारत के प्रति आस्था बढ़ाता है। भारतभूमि के पाषाणखण्ड को इन्द्रासन से भी श्रेष्ठ मानकर कवि ने अपने राष्ट्र–प्रेम का परिचय दिया है। प्रस्तुत काव्य पर पूर्ववर्ती काव्यों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा–

"चरित्रं शिक्षेरन् द्विजजनसकाशात् स्वकमिति
श्रुतौ दिनागैस्ते जननि! सुयशो दुन्दुभिरिव।"[82]

इस पद्य मनुस्मृति के निम्न पद्य का स्पष्ट प्रभाव है–

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।"[83]

स्वातन्त्र्यवीरशतकम् में 101 मुक्तकों में वीर सावरकर के गुण–गौरव का गान है। यह काव्य आठ स्तबकों में विभक्त है। कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से सावरकर के चरित्र को ऊँचा उठाया है। एक स्थल पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि हनुमान ने नभोमार्ग से जाकर समुद्र का उल्लंघन किया तो उसमें कौनसा आश्चर्य है। हनुमान तो वायु पुत्र है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि भारत के एक असहाय पुत्र (सावरकर) ने अपने बाहुबल से समुद्र का उल्लंघन किया।

जवाहरतरंगिणी नामधेय मुक्तक काव्य में 102 पद्य है। इसमें जवाहरलाल नेहरू के प्रशंसनीय कार्यों का वर्णन है। पदों का लालित्य तथा उच्च कल्पना वैभव दर्शनीय है। श्री वर्णेकर ने पं. नेहरू के देश के प्रति किये गये महनीय कार्यों से प्रभावित होकर उनका

व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया है। काव्य के षष्ठ पद्य में 'तवाकृतिर्निश्चलदेशभक्ति'[84] कहकर कवि ने उनके समस्त जीवन को ही निश्चल देशभक्ति का निदर्शन स्वीकार किया है।

(x) रेवाप्रसाद द्विवेदी का मुक्तक संसार

रेवाप्रसाद द्विवेदी ने 'शतपत्रम्', 'प्रथमः' तथा रेवाभद्रपीठम् नामक मुक्तक काव्यों की रचना की। शतपत्रम् में कविता को परिभाषित कर उसकी विशेषताओं का वर्णन किया है। प्रमथः कविताओं का संकलन है, जिसमें प्रथमः–प्रलापाः–निसर्गः आदि शीर्षक से नौ कविताएँ संकलित है।

रेवाभद्रपीठम सर्वप्रमुख मुक्तक काव्य रचना है, जिसमें कवि ने नर्मदा नदी की स्तुति की है। कवि ने नर्मदा नदी के आस–पास के क्षेत्र का भी वर्णन किया है। नर्मदा नदी के तट पर निवास करने वाले कृषकों की विशेषता का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"यच्चक्षुः कमठायते श्रुतिमहावाक्यार्थमन्थाचले
तत्तत्वार्थसुधोत्कटाद्भुतघटप्रादुर्बुभूषास्वलम्।
रेवाक्षेत्रनिवासिनां हलकृषिव्यापारमात्रात्मना–
–मप्येषां परमर्षयोपि शुचितां गुम्फन्ति काव्योत्तमैः।।"[85]

(xi) महादेव शास्त्री का मुक्तक संसार

कवितार्किकचक्रवर्ती महादेव शास्त्री ने 'भारतशतकम्', 'पूर्णास्तवः', 'गंगाष्टकम्' आदि मुक्तक काव्यों की रचना की। भारतशतकम् में 101 पद्यों में भारत के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप का चित्रण है। समस्त और सुकुमार भाषा में अत्यन्त दुरुह भावों की अभिव्यक्ति कवि के प्रगल्भ पाण्डित्य को प्रकट करती है। काव्य के प्रत्येक श्लोक से राष्ट्रीय भावना की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है। कवि ने देश के अतीत का गौरव गान करते हुए, देश को स्वर्गलोक से भी श्रेष्ठ बतलाया है। भारत–भू की भौगोलिक स्थिति का गुणगान करते हुए कवि कहता है–

"बड्गैः सङ्गीतिकीर्तिः कलितकलकलश्चोत्कलैरान्ध्रबन्धु–
र्मद्रैरुन्निदुमुद्रो जवजनितजयोद्गुर्जरः सिन्धुबिन्दुः।
पञ्चापैरञ्चितश्रीर्मधुमधुरधरो मध्ययुक्तैर्विहारै–
रार्यावर्ताभिधानो जयति जनपदो मानिनां जन्मभूमिः।।"[86]

भारत का ऐसा महिमा गान पढ़कर अवश्य ही पाठकों के हृदय में गौरव का भाव जागता है।

पूर्णास्तवः में जगदम्बा की स्तुति हैं गंगाष्टकम् में गङ्गाभक्ति का भाव अत्यन्त कमनीय रूप इसमें प्रस्तुत हुआ है।

(xii) शङ्करदेव अवतरे का मुक्तक संसार

शङ्करदेव अवतरे ने दो मुक्तक काव्य संकलनों की रचना की है– 'नारीगीतम्' तथा 'जीवनमुक्तकम्'। 'नारीगीतम्' में नारी की समाज में महत्ता तथा नारीत्व के स्वरूप का प्रतिपादन है। भारतीय समाज में हो रहे नारी पर अत्याचार तथा उनके उन्मूलन का प्रयास किया है।

'जीवनमुक्तकम्' में 375 पद्यों में आधुनिक युगबोध तथा विचारों की अभिव्यक्ति की है। इसमें कवि ने मानव को करुण होने का संदेश दिया है। कवि ने अनयोक्तियों के बहाने से आज के मानव पर कटाक्ष किया है, यथा–

"मण्डूकः स्नापितः सन् सुरभितसलिलैः स्थापितो हेमपीठे
द्रष्टुः प्रावार्य दृष्टि पुनरपि सहसा कूर्दते कच्चरेषु।
एवं नीचः प्रकृत्या शतशतगुरुभिर्दीक्षितोऽनेकवारं
आत्मनं येनकेनाप्यनुचितविधिना पातयत्येव पापे।।"[87]

(सुरभित जल से नहलाकर, हेमपीठ पर स्थापित मेंढक देखने वाले की दृष्टि से छिपकर पुनः कीचड़ में ही कूदता है, उसी प्रकार शताधिक गुरुओं से अनेक बार दीक्षित नीच व्यक्ति जिस किसी भी अनुचित विधि से पाप में पढ़ता है।)

(xiii) रामकैलाश पाण्डेय का मुक्तक संसार

रामकैलाश पाण्डेय ने 'भारतशतकम्', 'हनुमदष्टकम्' तथा 'महाकविशतकम्' नामक मुक्तक काव्यों की रचना की। भारतशतकम् में 101 पद्यों में राष्ट्रीय गौरव की अभिव्यक्ति है। यह उस काल की रचना है जब भारत–चीन युद्ध हुआ। तब उत्साह से अभिभूत होकर सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिए यह काव्य लिखा गया। भारत के प्राचीन गौरवगान के माध्यम से कवि ने सुप्त भारतवासियों को जाग्रत करने का प्रयास किया है। भारत के ऐश्वर्य के प्रति ईर्ष्यावान् विदेशियों के समूह ने भारत की सम्पत्ति, नीति और संस्कृति को जो हानि पहुँचाई, उसका उल्लेख कर कवि ने देशवासियों के मन में अदम्य साहस भरने का प्रयास किया है। अंत में कवि प्रगतिशील भारत तथा संस्कृत के अभ्युदय की कामना करता है–

"जायन्तां देशभक्ता रणविधिनिपुणा भारतेऽस्मिन् बलाढ्याः
विद्या वैज्ञानिकी च प्रसरतु सततं स्वामभिख्यामुपेता।
सर्वे गीर्वाणवाणीं सुखविभवपरा भारतीयाः पठेयुः
देशः शान्तिं लभन्तां जनमनासि सदा वर्षतां प्रीतिरेव।।"[88]

संक्षेपत काव्य के प्रत्येक श्लोक में देशभक्ति भाव का निर्झर प्रवाहित हो रहा है।

(xiv) केशवचन्द्र दास का मुक्तक संसार

केशवचन्द्र दास ने अनेक मुक्तक रचनाएँ लिखी है। 'अलका', 'हृदयेश्वरी', 'महातीर्थम्' तथा 'ईशा' दास जी मुक्तक रचनाओं के संग्रह हैं

"केशवचन्द्र ने मुक्तछन्द में ही कविताएँ लिखी है तथा इनके काव्य का भावबोध सर्वथा नवीन है। आधुनिक जीवन की विसंगति, परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व, महानगर के जीवन का तनाव, पीछे छूट गये अकलुष पावन ग्राम जीवन की स्मृतियाँ जटिल प्रतीकों तथा बिम्बों के माध्यम से इनकी कविता उपस्थित करती है।

कवि ने स्वयं अपनी काव्ययात्रा को असंगति में संगति की खोज के रूप में लक्षित किया है (ईशा, भूमिका)। जीवन की रिक्तता और व्यर्थता का गहरा अनुभव केशवचन्द्र की कविताओं में अनेकत्र है। फिर भी वे जीवन को वरेण्य समझते हैं– 'इच्छायाः शेषकणे,

जीवनं तथापि जृम्भते'। आज की भौतिकवादी लिप्सा के जगत् में सर्जना कठिन से कठिनतर कार्य होता जा रहा है– यह कवि अनुभव करता है–"[89]

> **"निधिभवनस्य अलिन्दे यथा**
> **श्रूयते भौतिकतास्वरः**
> **विक्षिप्तदीनासु च चीत्करोति शैलकल्पक्षुधा**
> **कमहं श्रानयिष्यामि प्रसूतिकाव्यथां मम?"[90]**

(xv) सुब्रह्मण्य अय्यर का मुक्तक संसार

सुब्रह्मण्य अय्यर विरचित 'पद्यपुष्पाञ्जलिः' अर्वाचीन मुक्तक काव्यधारा का प्रमुख काव्य है। यह दो भागों में विभक्त है–पूर्व तथा उत्तर भाग। पूर्वभाग में 25 कविताएँ तथा उत्तर भाग में 16 कहानियाँ है। पूर्व भाग में शकुन्तलास्वागतम्, एकाकी, शिशुस्वर्गः, तदानीमिदानी, अष्टमूर्तिस्वरूपम् इत्यादि शीर्षक की कविताएँ संकलित है। कविता की भाषा सरल तथा सुबोध है, यथा–

> **"ब्रह्माण्डानि प्लवन्ते यदुदरविवरे नौकुलानिव सिन्धौ**
> **कल्लोलानां प्रवाहः प्रसरति निबिडा यत्र भा विद्युदादेः।**
> **यस्या ज्ञाने प्रमुग्धा अपि वरमनसश्चेह विद्वद्वरेण्याः**
> **केशो रुद्रस्य या सा लसति सकलसूरादिमा व्योममूर्तिः।।"[91]**

उत्तर भाग में विदेशी कहानियों, लोककथाओं को विषय बनाकर छन्दोबद्ध मुक्तक रचे है।

(xvi) अभिराज राजेन्द्र मिश्र का मुक्तक संसार

अर्वाचीन मुक्तक काव्य धारा को पल्लवित–पुष्पित करने में अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान सराहनीय है। आपने लगभग 40 मुक्तक–काव्यों की रचना की है– 'आर्यान्योक्तिशतकम्', 'पराम्बाशतकम्', 'अभिराजसप्तशती', 'पञ्चकुल्या', 'संस्कृतशतकम्', 'अभिराजसहस्रकम्', 'मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्', 'अभिराजशतकम्', 'चौरशतकम्', 'अयोध्योद्वारशतकम्', 'वियोगव्याहारशतकम्', 'पुष्करशतकम्', 'वरदेश्वरशतकम्', 'शनिशतकम्' आदि।

पराम्बाशतकम् शताधिक भुजङ्गप्रयात छंद में निबद्ध भगवती रुद्राणी को समर्पित स्तोत्र काव्य है।

अभिराजसप्तशती सात शतक काव्यों–नव्यभारतशतकम्, मातृशतकम्, प्रभातमङ्गलशतकम्, सुभाषितोद्वारशतकम्, चतुर्थीशतकम्, भारतदण्डकम् तथा सम्बोधनशतकम् का संकलन है। नव्यभारतशतकम् में वर्तमान भारत की दुर्दशा का चित्रण है। मातृशतकम् में मातृ रूपा शक्ति के प्रति श्रद्धा का दर्शन मिलता है। प्रभातमङ्गलशतकम् में कवि ने 104 पद्यों में देवी–देवताओं की महिमा का गुणगान किया है, यथा–

"या कालिदास–भवभूति–कवित्वनीर–
स्त्रोतोऽनुभूत–नवयामुनङ्गगासङ्गा
सा तीर्थराजधरणीव विमुक्तिशक्ता
हंसानना दिशतु मे नवसुप्रभातम्।।"[92]

सुभाषितोद्वारशतकम् में पूर्व सुभाषितों को नवीन सन्दर्भ से जोड़कर पैरोडी का निर्माण किया है। चतुर्थीशतकम् दुर्जन व्यक्ति पर व्यंग्यात्मक काव्य है। भारतदण्डकम् में दण्डक छन्द में भारत की प्रशस्ति वर्णित है। सम्बोधनशतकम् में कवि ने 100 पद्यों में रात्रि, मृत्यु, दूर्वा, चातक, भ्रमर आदि को सम्बोधित कर अपनी मनोव्यथा का वर्णन किया है।

पञ्चकुल्या भी 5 शतक काव्यों का संकलन है– 'विमान यात्राशतकम्', 'बालिप्रत्यभिज्ञान', 'यवसाहित्यशतकम्', 'सुरभारतीदण्डकम्' तथा 'देववाणीहुङ्कार–शतकम्'।

अभिराजसहस्त्रकम् भी एक कोश काव्य में जिसमें दस शतककाव्यों का संकलन है– 'प्रबोधशतकम्', 'धारामाण्डवीयम्', 'हिमाचलशतकम्', 'भारतीपरिदेवन– शतकम्', 'उज्जयिनीशतकम्', 'वैशालीशतकम्', 'विस्मयलहरी', 'सौवास्तिशतकम्', 'गुर्जरशतकम्' तथा 'पाकशासनशतकम्'। इनमें प्रबोधशतकम् मेघदूत का पूरक काव्य है, जिसमें यक्षिणी द्वारा यक्ष्ज्ञ को उत्तर प्रेषित किया गया है। सुख तथा दुःख को रथ के पहियों के आरों के समान बताता हुआ कवि कहता है–

"को विन्दते सौख्यामिहात्र भूमावजीवनं दुःखमथोऽपि को वा

उपर्यधोऽलं रथचक्रनेमिक्रमेण यातस्तदुभे सदैव।"[93]

धारामाण्डवीयम् में मालेश्वर भोजदेव की प्रशस्ति है। हिमाचलशतकम् में हिमाचल प्रदेश का मनोरम वर्णन है। भारतीयपरिदेवशतकम् में राजीव गाँधी के मरने पर भारत माता के विलाप का वर्णन है। उज्जयिनीशतकम् में उज्जयिनी के महत्त्व का वर्णन है। वैशालीशतकम् में वैशाली नगरी का ऐतिहासिक चित्रण है। विस्मयलहरी में देश में व्याप्त आपराधिक गतिविधियों को देख कवि विस्मय व्यक्त करता है। सौवास्तिशतकम् अध्यक्षीय भाषण में जिसमें संस्कृत विरोधियों को फटकारा गया है। गुर्जरशतकम् में गुजरात की महिमा है। पाकशासनशतकम् में भारतीय वीरों का स्तवन है, जिन्होंने कार्गिल युद्ध में अपना सर्वस्वन्यौछावर कर दिया।

(xvii) डॉ. हर्षदेव माधव का मुक्तक संसार

डॉ. हर्षदेव माधव ने 'मृत्युशतकम्' तथा 'भूतप्रेतशतकम्' नामक मुक्तक काव्यों की रचना की। 'मृत्युशतकम्' शताधिक पद्यों में करुण रस प्रधान शतक काव्य है, जिसमें मृत्यु के विषय में बिम्बात्मक चित्रण है।

'भूतप्रेतशतकम्' मृत्युशतकम् का पूरक काव्य है। इसमें मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की स्थिति का वर्णन है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य भूत बनकर विश्व में विहार करता है। 'भूतप्रेतशतकम्' पाठक को मृत्यु के बाद के विश्व में विहार कराता है। प्रायः सभी व्यक्तियों का यह अनुभव रहा है कि कभी–कभी आखें बंद करने के बाद कुछ भास–आभास.......... होता है।.........मनुष्य की मृत्यु के बाद की पहचान का नाम 'प्रेत' या 'भूत' भी है। कवि हर्षदेव माधव ने मृत्यु के बाद के इस भाव–विश्व को अपनी कलम से आधुनिकता में समाविष्ट करते–करते मानों नज़र के सामने खड़ा कर दिया है। परावास्तववाद या बिम्बवाद की एक प्रणालिका के अनुसार निर्जीव वस्तुओं का सजीव वस्तुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करना या दृश्य–बिम्बों का अन्य बिम्बों के साथ जोड़ने का कवि का अभिगम यहाँ सफल होता हुआ दिखाई देता है।"[94]

(xviii) रमाकान्त शुक्ल का मुक्तक संसार

रमाकान्त शुक्ल ने 'भाति मे भारतम्' तथा 'जयभारतभूमे' आदि मुक्तक काव्यों की रचना की।

भाति में भारतम् में 108 पद्यों में भारत की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। स्रग्विणी छन्द में लिखा गय यह काव्य भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य को उद्घाटित करता है। भारत की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुये कवि कहता है कि भारत कर्म, शील, धर्म तथा जीवन के मर्म को समझने की स्थली है। यहाँ सत्य, शिव और सुन्दर सुशोभित रहता है और वह पवित्र रामराज्य के लिये प्रसिद्ध है–

"यत्र सत्यं शिवं सुन्दरं राजते,
रामराज्यं च यत्राभवत्पावनम्।
यस्य ताटस्थ्यनीतिः प्रसिद्धिं गता,
भूतले भाति तन्नामकें भारतम्।।"[95]

इस काव्य ने भारतराष्ट्र की आत्मा को हमारे सामने रख दिया है। इस काव्य का परवर्ती रचनाओं पर प्रभाव पड़ा है। आचार्य वेदानन्द झा ने 'भारतीभारतेऽनारतम्', डॉ. बनेश्वर पाठक ने 'भारतेभास्ताभारतीसंस्कृति' आदि रचनाएँ भाँति में भारतम् के कथ्य और छन्द का अनुसरण करती है। डॉ. रमाकान्त शुक्ल द्वारा दिये गये प्रस्तुत काव्य के पाठों के सन्दर्भ में डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने लिखा है कि कवि सम्मेलनों में इस अवसर पर श्रोताओं द्वारा पुनः पुनः ऐसा कहा जाता है–

"सत्कवेरोजपूर्णैः स्वरैर्भूषितं श्रोतृवृन्देषु रोमांचसंचारकम्
पाठकाले पुनः शब्दसम्पूजितं तादृशं विद्यते भातिमेभारतम्।।"[96]

जयभारतभूमे में कवि ने 108 श्लोकों को सात शीर्षकों में विभक्त किया है– जयभारतभमे! भजेभारतम्, मम भारतं विजयते, भारतभूमिर्विलसति, जय भारतमेदिनी, भारताख्यः स्वदेशः एवं दिव्यं मम भारतम्। इस काव्य में भारत देश की प्रतिष्ठा, सुरक्षा और शालीनता के प्रति जनचेतना को प्रबुद्ध किया गया है और भारतीयता, संस्कृति,

ज्ञान–विज्ञान की महनीय राशि का गौरव के साथ उल्लेख किया है, इस सम्पूर्ण काव्य में भारतभूमि की महिमा एवं गरिमा का गुणगान है।

कवि ने भाति में भारतम् के विपरीत भारतदेश की दुर्दशा को लेकर 'रौति में भारतम्' नामक कविता भी लिखी। आतङ्कवाद को लेकर 'राष्ट्रदेवते' नामक कविता लिखी।

(xix) उमाकान्त शुक्ल का मुक्तक संसार

उमाकान्त शुक्ल ने 'कूहा' नामक मुक्तक काव्य की रचना की, जिसमें श्री राजीव गांधी द्वारा हिमालय की चोटियों पर श्रीमती इंदिरा गांधी की अस्थियों के विसर्जन के समय राजीव गांधी द्वारा अपनी माता का भावपूर्ण स्मरण वर्णित है। काव्य के प्रारम्भ में हिमालय के गौरव और शोभा का वर्णन है। काव्य में आयुधों की स्पर्धा त्यागकर सम्पूर्ण भूमि को एक भीड़ के रूप में देखने की बात कही गयी है, जो पाठकों के मनोमस्तिष्क पर निश्चय ही भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा के भाव पनपाती है।

(xx) नलिनी शुक्ला का मुक्तक संसार

नलिनी शुक्ला ने 'प्रकीर्णम्', 'भावाञ्जलिः' तथा 'वाणीशतकम्' नामक मुक्तक काव्य लिखे। प्रकीर्णम् में 100 श्लोकों में कवयित्री ने समाज में व्याप्त लोक वैषम्य पर कटाक्ष किया है।

भावाञ्जलि एक स्तोत्र काव्य है, जिसमें शस्तोत्र है। इसमें कवयित्री ने अपने आराध्य देवी–देवताओं की स्तुति की है।

वाणीशतकम् में 108 पद्यों में शिखरिणी छन्द में पराम्बा, भगवती, सरस्वती की वन्दना की है, यथा–

"रविस्त्वं कामाख्यः प्रकटमुखबिन्दौ समरसात्
स्तनद्वैतव्यक्त्या हिमकरणवह्न्यात्मकवपुः।
त्रिबिन्दूनां तत्त्वं कलयति च हार्दामपि कलाम्
जनोऽसौ दिव्येते जननि! रमते धाम्नि सुचिरतम्।।"[97]

(xxi) प्रियव्रत शर्मा का मुक्तक संसार

प्रियव्रत शर्मा ने ऋतुवर्णन पर 'वसन्तशतकम्' नामक मुक्तक काव्य लिखा, जिसमें शिखरिणी छन्द में वसन्तकालीन प्राकृतिक शोभा का वर्णन है। वसन्त के आगमन के विषय में कवि कहता है–

> **"शरानस्यन् पश्यन् दिशि दिशि महाघूर्णितदृशा**
> **मृषोदष्यन् पान्थान् प्रियजनवियुक्तान् विकलयन्।**
> **उषः काले भाले दिनकरकरामृष्टमधुरो**
> **वसन्तोऽयं प्राप्तः कमलमुकुलानिव कलयन्।।"[98]**

(xxii) रामजी शास्त्री का मुक्तक संसार

रामजीमिश्र ने 'तीर्थोदकम्' नामक मुक्तक काव्य संकलन की रचना की, जिसमें 'अवधशतकम्', 'प्रयागशतकम्' तथा 'काशीशतकम्' संकलित है।

अवधशतकम् में कवि ने अवध नगरी का वर्णन किया है। इसमें अयोध्या नगरी के ऐतिहासिक तथा पौराणिक महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

प्रयागशतकम् में महाकुंभ की चार स्थलियों में से एक, गंगा–यमुना–सरस्वती का त्रिवेणी संगमस्थल, तीर्थराज प्रयाग की विशेषताओं का वर्णन है। प्रयाग की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

> **"संस्कृतवाङ्मयस्यापि गौरवं सुष्ठु राजते**
> **छात्राश्च शोधकर्त्तारो विद्वांसो निरताः सदा।"[99]**

'काशीशतकम्' में आद्य वैष्णव स्थान, पौराणिक नगरी, गंगा के वाम तट पर उ.प्र. के दक्षिण–पूर्वी कोने में वरुणा और असी नदियों के गंगासंगमों के बीच बस्ती वाराणसी नाम से विख्यात् काशीनगरी के माहात्म्य का वर्णन है। कवि ने आदि गुरु शंकराचार्य, कबीरदास, पण्डितराज जगन्नाथ, श्रीहर्ष, स्वामी करपात्री जी जैसी अनेक विभूतियों के स्मरण पुरस्सर काशी की महिमा का बखान किया है। काशी विश्वविद्यालय में स्थित बिरला द्वारा निर्मित शिव मन्दिर की विशेषता का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"विश्वविद्यालये काश्यां विश्वनाथस्य मन्दिरम्
द्विस्तीरयं विशालञ्च लोके ख्यातं समुज्ज्वलम्
विडलापरिवारस्य बलदेव सुधीर्महान्
दिव्यशिवालयास्यास्य निर्माता प्रथितौ भुवि।।"[100]

(xxiii) डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी का मुक्तक संसार

डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी ने विभिन्न छन्दों में गुरु की महिमा प्रस्तुत करने वाले मुक्तक काव्य 'गुरुमाहात्म्यशतकम्' की रचना की। भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही गुरु को विशेष महत्त्व देती आई है। वैदिक काल से लेकर अब तक गुरु–परम्परा निरन्तर नैसर्गिक रूप से चली आ रही है। गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"त्वयावेदशस्त्राणि संवर्धितानि,
पुराणानि गीतानि सर्वाणि वाण्या।
अभूत सार्थकीयं नृवाणी त्वयैव,
गुरो ते पदेभ्यः नमस्ते नमस्ते।।"[101]

(हे गुरुदेव तुम्हारा द्वारा वेद तथा शास्त्र समृद्धि को प्राप्त हुये, तुम्हारी वाणी के द्वारा पुराण गाये गये (वेदव्यास रूप में) तुम्हारे द्वारा ही यह मानवीय वाणी सार्थक सिद्ध हुई। हे गुरु! तुम्हारे चरणों को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

(xxiv) कालिका प्रसाद शुक्ल का मुक्तक संसार

कालिका प्रसाद शुक्ल ने 'भास्कर भावभानव', जिसका दूसरा नाम 'सूर्यशतकम्' भी है, की रचना की। यह 'सुधी' ग्रन्थमाला के चतुर्थ पुष्प में प्रकाशित हुआ। कवि ने 108 शिखरिणी छन्दों में सूर्य की उपासना की है, यथा–

"तमो भिन्दन् पादैरुदयगिरिगर्वं विदलयन्
दिश प्राचा वामं वदनविधुमालं पिशुनयन्
द्विजालीनामर्ध्यं कमलदलगन्धं सुलयन्
धरां धाम्ना सिञ्चन् विमलकरभानुर्विजयते।।"[102]

(किरणों द्वारा अंधकार को भेदता हुआ, उदयगिरि के गर्व को नष्ट करता हुआ, पूर्व दिशा के सुन्दर मुखचन्द्र से युक्त मस्तक को सूचित करता हुआ, ब्राह्मण–समूहों के अर्घ्य और कमलदल की गन्ध को सफल करता हुआ, निर्मल किरणों से धरती को तेज से सींचता हुआ सूर्य सुशोभित हो रहा है।)

(xv) रवीन्द्र कुमार पण्डा का मुक्तक संसार

रवीन्द्र कुमार पण्डा की मुक्तक रचनाएँ उनके काव्य संग्रहों 'शतदलम्', 'काव्यकैरवम्' तथा 'काव्यामृततरंगिणी' में संकलित है।

रवीन्द्र कुमार पण्डा का अष्टम काव्य संग्रह शतदलम् है, जिसमें 8 मुक्तक काव्यों का संग्रह है– 'शारदाशतकम्', 'स्वतन्त्रताशतकम्', 'प्रियाशतकम्', 'उत्कलशतकम्', 'संस्कृतशतकम्', 'जीवनशतकम्', 'भारतशतकम्' तथा 'अद्वैतशतकम्'। शारदाशतकम् में कवि ने माँ शारदा के स्वरूप का प्रतिपादन किया है।

स्वतन्त्रताशतकम् में स्वतन्त्रता के महत्त्व का प्रतिपादन है। प्रियाशतकम् में कवि ने प्रिया वियोग से उत्पन्न रमणीय भावों का प्रणयन किया है। प्रिया वियोग में उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"शून्यं प्रियेऽत्र सदने प्रणयस्य पात्रम्
संस्मृत्य नित्यमिह मे गलितं हि गात्रम्
सौख्यं ददाति वदनस्य निशाधिषस्ते
दूरे प्रिये! कथय किं करणीयमद्य।।"[103]

उत्कलशतकम् में कवि ने अपनी जन्मभूमि का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वर्णन किया है। कवि ने प्रारम्भ में अपने ग्राम देवता को नमन कर वहाँ के प्रसिद्ध स्थलों का वर्णन किया है।

संस्कृतशतकम् में कवि ने संस्कृत भाषा की महत्ता का हृदयग्राह्य प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसमें संस्कृत की महत्ता का प्रतिपादन कर उसे सर्वोच्च शिखर पर स्थापित करने का प्रयास किया है।

जीवनशतकम् में जीवन के सुख–दुःख जीवन के उतार–चढ़ावों तथा जीवन के विभिन्न परिदृश्यों का चित्रण है। इसमें जीवन की सत्यता का प्रतिपादन है। भारतशतकम् में भारत देश की श्रेष्ठता, महानता, संस्कृति का प्रतिपादन कर यहाँ की दुर्बलताओं की ओर भी कटाक्ष किया है–

"यत्र सरस्वती शुक्ला वसति सर्वदा शुभा।
यत्र भागीरथी गंगा वहति च सुशीलता।।
खलानां प्रबलानाञ्च वृद्धिनित्यं प्रवर्धते।
सरलास्ताऽनन्यैषां पीड्यन्ते मम भारते।।"[104]

'अद्वैतशतकम्' में वेदान्त के सिद्धान्त 'ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्या' का प्रतिपादन है।

'काव्यकैरवम्' में 'दुर्जनशतकम्' तथा 'संसारशतकम्' नामक दो मुक्तक काव्य संग्रहित है। दुर्जनशतकम् में कवि ने 101 पद्यों में दुष्टों के क्रियाकलापों उनकी दुष्टता का जीवन्त चित्रण किया है।

संसारशतकम् में 100 पद्यों में कवि ने सम्पूर्ण संसार को मानो शब्दों में उतार दिया है। संसार के प्राणियों की सांसारिकता, संसार की सारता, निस्सारता का हृदयग्राह्य वर्णन किया है, यथा–

"संसारस्य महाजाले पातयति रसं सुखम्
यो हासयति मामत्र वन्दे तं कालकन्दुकम्।।"[105]

काव्यामृततरंगिणी में चार मुक्तक काव्य 'ते के च जानीमहे', 'भवार्णवशतकम्', 'विश्वेश्वरीशतकम्' तथा 'तृष्णाशतकम्' संकलित है। 'ते के च जानीमहे' में कवि ने दुर्जनों की निन्दा करते हुए सज्जनों के गुणों का प्रतिपादन किया है।

भवार्णवशतकम् में संसार सागर का वर्णन है। इस संसार सागर को पार करने का एकमात्र उपाय परमपिता परमेश्वर है–

"सर्वास्ति लीला परमेश्वरस्य सर्वे वयं क्रीडनकाश्च तस्य
भवाब्धिपाराय स सेतुबन्धः सुखाय तस्यास्ति ह नामनौका।"[106]

विश्वेश्वरीशतकम् में देवी विश्वेश्वरी की स्तुति है।

तृष्णाशतकम् में मानवीय भाव तृष्णा के विभिन्न आयामों का वर्णन है।

(xxvi) डॉ. जगन्नाथ पाठक का मुक्तक संसार

डॉ. जगन्नाथ पाठक ने मुक्तक काव्यों को अधिक प्राथमिकता दी है। 'कापिशायनी', 'मृद्वीका', 'विच्छिति–वातायनी' तथा 'जगन्नाथ–सुभाषितम्' नामक मुक्तक काव्यों की रचना की है।

कापिशायनी तथा मद्वीका वियोगिनी छंद में निबद्ध गीतिकाव्य है। डॉ. जी.सी. त्रिपाठी ने कापिशायनी को मुक्तक काव्य की श्रेणी में गिनते हुए कहा है–

"Kapisayni is not a Khandkavya but a Muktaka where every stanza has got it own independent existence. The stanzas when read together may not seem to be consistant with each-other nor do they follow a single line of thought."[107]

बज्रमोहन चतुर्वेदी ने भी कहा है– "कापिशायनी के पद्य मुक्तक है, जिनकों हम लोगों ने 'चषक' की संज्ञा दे रखी है।"[108]

'विच्छित्ति वातायनी' नामक मुक्तक काव्य कलेवर की दृष्टि से बहुत बड़ा है, जिसमें 2083 आर्याएँ है। यह काव्य 6 भागों में विभक्त है– 'विच्छित्तिवातायनी', 'श्रीकृष्णभावनाशतकम्', 'रामत्वातकम्', 'कविताशतकम्', 'स्त्रीशतकम्' तथा 'सौन्दर्यकारिका'। 'विच्छित्तिवातायनी' नामक भाग में कुल 1454 आर्याएँ हैं, जिनमें विभिन्न विषयों को लेकर मुक्तक है। सर्वप्रथम कवि ने सज्जन हृदय की प्रशंसा करते हुए कहा है–

"रम्यं सुरभिनिधानं बहुविधवर्णप्रसूनमुपवनकम्
सद्भावस्नेहमयं सज्जनहृदयं तु रम्यतरम्।"[109]

श्रीकृष्णभावनाशतकम् में श्रीकृष्ण व राधा को सर्वस्व मानकर अपनी भक्तिभावना का प्रतिपादन किया है। कवि ने राधा–कृष्ण को अभेद मानकर कहा है–

"राधाभावो यत्र श्रीकृष्णस्तत्र, नात्र सन्देहः
राधाभावविरहितः श्रीकृष्णः केवलं कृष्णः।"[110]

यह भाग श्रीकृष्ण व राधा के प्रति कवि के उदात्त भक्ति–भाव का परिचायक है।

'रामत्वशतकम्' में 'रामत्व' की व्याख्या करते हुए राम के प्रति अपनी असीम भक्ति का प्रतिपादन किया है। कवि रामत्व की परिभाषा देते हुए कहता है–

"प्रचलति झंझावाते व्याकुललोके महाविपद्रूपे
अविचलितत्वं यदिदं तदुच्यते किमपि रामत्वम्।।"[111]

कविताशतकम् में कविता को परिभाषित करते हुए उसके सौन्दर्य का प्रतिपादन किया है। कवि का मानना है कि जिसमें जनसामान्य के जीवन का चित्रण हो, वही कविता है–

"या न स्पृशति समग्रं जनसामान्यस्य जीवनंकिमपि
नहि कवितापदवाच्या सदलङ्कारऽपि सा वाणी।।"[112]

स्त्रीशतकम् में स्त्री की महत्ता, उसके गुणों का वर्णन है। कवि स्त्री को विधाता की अतिशयाद्भुत कृति मानता है–

"अद्भुतमतिशयमद्भुतमतिमुग्धं धातुरस्ति निर्माणम्
जगतीह यत् सुधीभिः प्रायो व्यपदिश्यते स्त्रीति।"[113]

सौन्दर्यकारिका में कवि ने 102 आर्याओं में सौन्दर्य के विविध पक्षों तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न मतों का उपस्थापन किया है। कवि ने सौन्दर्य को सबसे सुकुमार माना है–

"सौन्दर्यादिह मन्ये सुकुमारतरं न किञ्चिदभ्यस्ति
अनपेक्षितसम्पर्कात् झटिति विनाशं तु यल्लभते।।"[114]

'जगन्नाथसुभाषितम्' में जीवन के विविध पहलुओं, श्रेष्ठ कवियों, गंगा, अक्षयवट, वाग्देवता, पङ्क आदि की व्यथा आदि को लेकर अनेक मुक्तक लिखे हैं। प्रथम भाग में कवि वाल्मीकि, कालिदास, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि अनेक कवियों की प्रशस्ति की है। इसी क्रम में पण्डितराजजगन्नाथ पर 114 पद्यों में पण्डितराज की प्रशस्ति की है। पण्डितराज को कवि ने साहित्याकाश में कलङ्करहित चन्द्रमा माना है–

"साहित्याकाशस्य त्वं कश्चित् पूर्णिमाशरच्चन्द्रः
न कलङ्कादात्मानं शक्तो मोचयितुमभवस्त्वम्।।"[115]

निष्कर्षतः मुक्तक काव्य हमारे जीवन में मूल प्रेरणा के सुन्दर स्रोत है। समृद्ध मुक्तक काव्य का स्वरूप बहुआयामी होकर लोकमानस की सुन्दर मीमांसा करता है। कुछ मुक्तक काव्य देवस्तोत्रात्मक है, तो कुछ सौन्दर्यपरक, तो अनेक राष्ट्रीयता पर आधारित तो कुछ सुभाषितपरक, कुछ गीतात्मक तो कुछ सप्तशती में निरूपित।

लोकजीवन के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक नाना पक्षों पर मुक्तक काव्य रचे गये है। प्रकृतिचित्रणपरक मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त शैक्षिक विषयों, जीवन के विभिन्न आयामों, काव्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, शिक्षा, सदाचार, देशभक्ति आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित मुक्तक काव्यों की रचना की। मुक्तक काव्य लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वेदकाल से लेकर अर्वाचीन वाङ्मय तक मुक्तक काव्य लेखन की एक अनवरत धारा प्रवाहमान रही है। संख्यात्मक दृष्टि से ही नहीं वरन् साहित्यिक दृष्टि से भी मुक्तक काव्य विधा एक उत्कृष्ट काव्य विधा के गौरव को प्राप्त है। आज मुक्तक काव्य–परम्परा अपने विकास के सर्वोच्च शिखर पर है। आज के कवि अपनी मुक्तक रचनाओं से अल्प समय में ही प्रशंसा तथा प्रसिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं।

आधुनिक मुक्तक रचनाओं की विषय–वस्तु में परिवर्तन हो रहे है। वे कल्पना–लोक के आकाश तल से उतरकर यर्थाथता के धरातल पर आ गये है। आज कवि निजी जीवन से प्राप्त संस्कारों एवं संघर्षों की अभिव्यक्ति अपने सृजनात्मक कार्य में कर रहा है। आज कवि बदलते परिवेश एवं मूल्यों के अनुरुप बदलती मानवीय संवेदनाओं को अपनी मुक्तक रचनाओं का विषय बना रहा है। आज का मुक्तक साहित्य समसामयिकता के कूलों को संस्पर्श करते हुए निरन्तर प्रवाहमान साहित्य है। वर्तमान समाज की कोई भी ऐसी समस्या नहीं रह गई है जिसका संस्पर्श अर्वाचीन समाज की कोई भी ऐसी समस्या नहीं रह गई है जिसका संस्पर्श अर्वाचीन मुक्तक साहित्य में न हो।

अर्वाचीन मुक्तक साहित्य में विषयवस्तु के स्तर पर शिल्प एवं भाषा के स्तर पर लोकचेतना उसकी अंतर्मुक्त काव्य चेतना है। मुक्तक काव्य के आस्वादन स्तर पर यह

चेतना काफी सहायक सिद्ध होती है, क्योंकि कवि, काव्य और पाठक के बीच में रचनात्मक और आस्वादनपरक सामञ्जस्य स्थापित करने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। आज तमाम वैश्विक जटिलताओं को आत्मसात् करने वाले मुक्तक काव्य ने अपने अंतरंग में परम्परा विमुख और भू–सापेक्ष लोक पक्ष को सुरक्षित रखा है।

अर्वाचीन मुक्तक साहित्य में आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण उसके बाह्य एवं अन्तः दोनों रूपों में पर्याप्त अन्तर आया है। जहाँ एक ओर सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को उद्‌धाटित किया गया वहीं दूसरी ओर इनके निराकरण के लिए समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। वस्तुतः आधुनिक मुक्तक काव्यों में जहाँ एक ओर जीवन मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति है वहीं दूसरी ओर लोगों के चारित्रिक विकास के लिए आवश्यक शाश्वत् मूल्यों सत्य, परोपकार, अहिंसा, प्रेम, तप, त्याग, शिष्टाचार आदि को भी प्रमुखता दी है। आज मुक्तक कृतियाँ शासकों के समक्ष काम, कर्ण आदि का आदर्श प्रस्तुत करती है तो सामाजिकों के लिए सीता, कुन्ती, आदि स्त्रियों का। इसी प्रकार अन्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक नीतियों की भी अभिव्यञ्जना है।

साहित्यिक दृष्टि से भी अर्वाचीन मुक्तक साहित्य की प्रासंगिकता है। साहित्य का उद्देश्य लेखनी के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र का उत्थान करना है। इस दृष्टि से अर्वाचीन मुक्तककारों ने पौराणिक कथानकों द्वारा न केवल पौराणिक आदर्शों को प्रस्तुत किया है वरन् आधुनिक विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, व्यवसायहीनता, नारी संरक्षण, ज्ञान का महत्त्व, पर्यावरणसंरक्षण, भ्रष्टाचार आदि विषयों को लेकर मुक्तक रचना की है और उन प्राचीन व नवीन सभी विषयों को आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर उनके समाधान की दिशा को भी प्रदर्शित किया है। इस प्रकार सभी दृष्टियों से मुक्तक काव्य आधुनिक युग में उपादेय है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ–सूची

1. शब्दकल्पद्रुम, राजाकान्तादेव बहादुर
2. ईशावास्योपनिषद
3. भाट्टतौत
4. काव्यमीमांसा, राजशेखर, 3
5. अग्निपुराण, 339/10
6. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, प्रथमोद्योत
7. नाट्यशास्त्र, आचार्यभरतमुनि, षष्ठ अध्याय
8. काव्यालंकार, भामह
9. काव्यालंकार सूत्र, आचार्य दण्डी
10. काव्यादर्श, दण्डी, प्रथम सूत्र
11. सरस्वतीकण्ठाभरणम्, धारापति भोज, प्रथम परिच्छेद
12. काव्यमीमांसा, राजशेखर, तृतीय अध्याय
13. वक्रोक्तिजीवितम्, आचार्यकुन्तक, प्रथमोन्मेष/7
14. काव्यप्रकाशम्, आचार्य मम्मट, प्रथमोल्लास
15. साहित्यदर्पणम्, आचार्य विश्वनाथ, प्रथम परिच्छेद
16. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, 1/1/1
17. अभिराजयशोभूषणम्, प्रो. राजेन्द्र मिश्र, परिचयोन्मेष/34–35
18. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, प्रो. हर्षदेव माधव, वाक्तत्वपद्मपराग/13
19. कल्पद्रुमकोश, केशव
20. अग्निपुराण, 337/36
21. काव्यालंकार, आचार्य भामह, 1/20
22. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, 3/7 वृत्ति
23. गोविन्दवैभवम्, एकसमीक्षात्मक अध्ययन, कु. कमलेश कौशिक, पृ.सं. 42–43
24. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–246
25. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, 8/10

26. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, 8 / 10

27. साहित्यदर्पणम्, 6 / 3 / 14

28. वही, 6 / 3 / 14

29. वही, 6 / 3 / 15

30. ध्वन्यालोक, 3 / 7 वृत्ति

31. संस्कृत साहित्यशास्त्र काव्य, पृ.सं.–937

32. काव्यमीमांसा, राजशेखर

33. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.सं.–322

34. अग्निसूक्तम् 1–1 / 8

35. इन्द्रसूक्तम्, 2–12 / 2

36. उषस् सूक्तम्, 5–80 / 5

37. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, एम. विन्टरनित्स, भाग–2, पृ.सं.–106

38. थेरगाथा, सम्पादक, एन.के. भागवत्, पृ.सं.–11

39. थेरगाथा, प्रथम निपात, चतुर्थ वर्ग

40. गाथा सप्तशती, शोध कृति, परमानन्द शास्त्री, पृ.सं.–32

41. मेघदूतम्, कालिदास, उ.मे. / 45

42. ध्वन्यालोक, 3 / 7 वृत्ति

43. अमरुकशतकम्, श्लोक सं. 69

44. नीतिशतकम्, भर्तृहरि, श्लोक सं. 23

45. श्रृंगारशतकम्, भर्तृहरि, श्लोक सं. 13

46. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, पृ.सं.–113–115

47. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.सं.–201

48. भल्लटशतकम्, श्लोक सं. 11

49. देवीशतकम्, आनन्दवर्द्धनाचार्य, श्लोक सं. 74

50. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.सं.–300

51. शांतिशतक काव्यगुच्छमाला, अष्टक गुच्छक

52. खड्गशतक काव्यगुच्छमाला, अष्टक गुच्छक
53. दृष्टान्तशतकम्, काव्यगुच्छमाला, चतुर्दशगुच्छक
54. उपदेशशतकम्, गुमान कवि श्लोक सं. 8
55. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, चतुर्थ खण्ड, पृ.सं. 124–125
56. रामशतकम्, काव्यगुच्छमाला, नवम् गुच्छक
57. गीतिशतकम्, काव्यगुच्छमाला, नवम् गुच्छक, श्लोक सं.–7
58. आर्यासप्तशती, गोवर्धन, श्लोक सं. 52
59. वही, ग्रन्थारम्भ व्रज्या, श्लोक सं. 35, 36,37
60. आर्यासप्तशती, गोवर्धन, श्लोक सं.–47
61. गंङ्गालहरी, पण्डितराज जगन्नाथ, श्लोक सं. 52
62. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.सं.–362
63. सभारञ्जनशतकम्, नीलकंठ दीक्षित, श्लोक सं. 92–93
64. कलिविडम्बनशतकम्, नीलकंठ दीक्षित, श्लोक सं. 5
65. सं.वा. का पृ.इ., चतुर्थ खण्ड, पृ.सं.–476
66. श्रृंगारशतकम्, धनदराज, श्लोक सं. 2
67. अधरशतकम्, नीलकण्ठ शुक्ल, श्लोक सं. 40
68. संस्कृत वाङ्मय का वृ इति., चतुर्थ खण्ड, पृ.सं.–418
69. अभिराजयशोभूषणम् 210 / 57
70. वही, पृ.सं.–211
71. वही, पृ.सं.–211–212
72. वही, पृ.सं.–210–211
73. मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी, डॉ. रामसागर त्रिपाठी, पृ.सं.–1–2
74. अभिनव काव्यालंकारसूत्रम्, 3 / 1 / 7
75. ध्वन्यालोक, 3 / 1 / 7 वृत्ति
76. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, भारत प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ.सं.–197
77. संस्कृत वाङ्मय का वृ. इतिस सप्तम खण्ड, लघुकाव्य, पृ.सं.–187

78. वही, पृ.सं.–114

79. स्फूर्ति सप्तशती, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, समस्यापूर्तयः खण्ड

80. लालबहादूरशास्त्रीचरितम्, रमेशचन्द्र शुक्ल, श्लोक सं.1

81. वाल्मीकिशतकम्, रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी

82. मातृभूलहरी, श्रीधर भास्कर वर्णेकर

83. वही

84. रेवाभद्रपीठ्म, रेवाप्रसाद द्विवेदी, श्लोक सं.19

85. जवाहर तरंगिणी श्रीधर भास्कर वर्णेकर

86. भारतशतकम्, महादेव शास्त्री

87. जीवनमुक्तकम्, शंकरदेव अवतरे, श्लोक सं. 29

88. भारतशतकम्, रामकैलाश पाण्डेय

89. संस्कृतवाङ्मय का वृ. इति., सप्तमखण्ड, गीतिकाव्य, पृ.सं.–347

90. ईशा, केशवचन्द्रदास, पृ.सं.–4

91. पद्य पुष्पाञ्जलि, सुब्रह्मण्य अय्यर, पृ.सं.–31

92. प्रभातमङ्गलशतकम् अभिराजसप्तशती, प्रो.राजेन्द्र मिश्र, श्लोक सं. 23

93. प्रबोधशतकम्, अभिराजसहस्रकम्, श्लोक सं. 85

94. मृत्यु के उस पार/बिम्बअ काव्यः भूतप्रेतशतकम्ः रविन्द्र वि. खाण्डवाला, दृक् XI

95. भाति में भारतम्, रमाकान्त शुक्ल

96. संस्कृत साहित्य में इन्दिरा गाँधी पर आधारित शतककाव्यों का साहित्यिक अध्ययन, वाणीशतकम्, नलिनी शुक्ला शोध–कृति, जेबा खान, प्रथम अध्याय, पृ.सं.–32

97. वाणीशतकम्, प्रियव्रत शर्मा

98. प्रयागशतकम्, रामजी शास्त्री

99. प्रयागशतकम्, रामजी शास्त्री

100. काशीशतकम्, रामजी शास्त्री

101. गुरुमाहात्म्यशतकम्, डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी

102. सूर्यशतकम्, सुधीग्रन्थमाला, चतुर्थ पुष्प

103. शारदाशतकम्, डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा, शतदलम्
104. भारतशतकम्, शतदलम्, डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा
105. संसारशतकम्, काव्यकैरवम्, डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा, श्लोक सं. 3
106. भवार्णवशतकम्, काव्यामृततरंगिणी, डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा, श्लोक सं. 71
107. कापिशायनी, Forword पृ.सं.–2
108. कापिशायनी, दो शब्द, ब्रजमोहन चतुर्वेदी
109. विच्छित्ति–वातायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं.–1
110. श्रीकृष्ण भावनाशतकम्, विच्छित्ति–वातायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं. 21
111. रामत्वशतकम्, विच्छित्ति–वातायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं.–1
112. कविताशतकम्, विच्छित्ति–वातायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं.–51
113. स्त्रीशतकम्, विच्छित्ति–वातायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं.–1
114. सौन्दर्यकारिका, विच्छित्ति–वातायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं.–76
115. पण्डितराजप्रशस्ति, जगन्नाथ सुभाषितम् भाग–1, डॉ. जगन्नाथ पाठक, श्लोक सं.–8

तृतीय अध्याय

डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक व सांस्कृतिक अध्ययन

तृतीय अध्याय
डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक व सांस्कृतिक अध्ययन

(1) समसामयिक अध्ययन

विषय प्रवेश – समसामयिकता का सम्बन्ध समयबोध से है अर्थात् समसामयिकता मनुष्य के अपने जीवित समय का बोध है। समसामयिकता में समकालीन जिंदगी के आर्थिक, राजनैतिक और साहित्यिक पक्ष दिखायी पड़ते हैं। इसमें समयगत चेतना के बोध होते है। समसामयिकता आज वर्तमान जीवन प्रणाली के सभी अनुशासनों मसलन समाज, इतिहास, राजनीति, संस्कृति, साहित्य एवं अन्य सभी को व्याख्यायित करने वाला महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द बन गया है। समसामयिकता हमें अतीत और भविष्य के उचित बोध और संबंध से तो परिचित करवाती है, वर्तमान युग की वृत्ति को भी समझने में सहायता देती है। समसामयिकता एक तरह का कालबोध है। लेखकीय अनुभवों से पाठकीय अनुभवों का सीधा साक्षात्कार होना समसामयिकता की नींव है।

समसामयिकता इतिहास बोध की प्रक्रिया है जो निरंतर परिवर्तित होती रहती है। किसी युग विशेष में क्रियाशील जीवन–पद्धति और उस पद्धति को झेले हुए मानव के अंतर्भावों और उसकी स्थितियों का चित्रण समसामयिकता के लिए पर्याय नहीं है परन्तु युग–संदर्भ को उद्वेलित या विकसित करने में विगत प्रक्रियाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उनकी पहचान भी समसामयिकता के लिए अनिवार्य है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक ने जो समाज में देखा, वहीं अपनी रचना का विषय बनाया है। उनकी रचनाएँ पूर्णरूपेण समसामयिक है। डॉ. पाठक की रचनाओं का समसामयिक अध्ययन निम्न आधार पर किया जा सकता है–

(क) यथार्थवाद

यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट विचारधारा है, जो जनजीवन और समाज के यथार्थ अंकन पर विशेष जोर देता है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है और इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति यथार्थवाद।

साहित्य का मूल उत्स या स्रोत जीवन और मानव समाज को ही स्वीकार किया जाता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। कवि जो समाज में अनुभव करता है, उसी को अपनी लेखनी द्वारा जनमानस तक सम्प्रेषित करता है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक एक यथार्थवादी कवि है। उन्होंने संस्कृत साहित्य की पुरातन परम्परा को छोड़कर जनसामान्य के भावों का अङ्कन अपनी रचनाओं में किया है। उनकी रचनाओं में आम आदमी के जीवन–संघर्ष, उसकी मनोव्यथाओं, विषम परिस्थितियों का चित्रण है। डॉ. जगन्नाथ पाठक के यथार्थ वर्णन के विषय में डॉ. जगदीश प्रसाद ने लिखा है– "यह देखकर प्रसन्नता होती है कि संस्कृत साहित्य की प्रवाहमान धारा भी आधुनिक भाव–बोध से प्रेरित हो उसे अभिव्यक्ति देने में प्रयासरत है। वर्तमान की विसंगतियों से देश का प्रत्येक व्यक्ति क्षुब्ध और व्याकुल है। साहित्यकार का संवेदनशील मानस इन परिस्थितियों की पीड़ा अधिक गहराई से अनुभव कर रहा है। वर्तमान साहित्य में ये ही अनुभूतियाँ किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त हो रही है।"[1]

इसी क्रम में वे आगे कहते हैं–

"वर्तमान जीवन की विसंगतियों को देखने की डॉ. पाठक की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म है। घूमते हुए आइने के समान उनकी दृष्टि प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक पतन का सूक्ष्म निरीक्षण करती है। इसमें प्रमुख है वर्तमान जीवन की संवेदनशून्यता, कृत्रिमता, अस्तव्यस्तत, वर्ग और जाति भेद, सांस्कृतिक मूल्यों का विस्मरण, पाश्चात्यीकरण की प्रवृत्ति, शिक्षण–संस्थाओं की दुर्दशा, राजनीति की प्रधानता, धर्म के क्षेत्र में राजनीति का हस्तक्षेप, शासनवर्ग की विलासिता, नेतृ वर्ग का नैतिक पतन इत्यादि।"[2]

डॉ. पाठक की रचनाओं में यथार्थवाद का वर्णन है। उनकी रचनाओं में वर्णित यथार्थवाद को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) सामाजिक यथार्थ

विषय प्रवेश–यह सुविदित सत्य है कि समाज निरपेक्ष रचना का कोई महत्त्व नहीं। हर रचना दरअसल समाज की प्रतिक्रिया है। यह प्रतिक्रिया अधिकतर सामाजिक अनीतियों, अत्याचारों एवं असमानताओं के खिलाफ होती है। क्योंकि रचना में तत्कालीन जन–मानस की आशाओं एवं अभिलाषाओं का चित्रण होता है। उसमें एक ओर सामाजिक यथार्थ के किसी न किसी पहलू का अनावरण होता है तो दूसरी ओर उसके प्रति रचनाकार की मानसिकता भी अभिव्यक्त हो उठती है।

वर्ग–भेद – डॉ. पाठक ने भी जो समाज में अनुभूत किया, उसी को अपने शब्दों से अभिव्यक्त किया। सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लेने पर भी मनुष्य का मन संतुष्ट नहीं हुआ। अपने को मनुष्य जाति में सबसे ऊँचा स्थापित करने के लिए उसने जाति, वर्ण, वर्ग आदि का सहारा लिया। जाति–भेद की इस दीवार ने करोड़ों मनुष्य को मनुष्यता के अधिकार से वंचित कर दिया। कवि कहता है यदि मनुष्य समाज इन जातिगत विभागों में न बंटा हो तो सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है, यथा–

"जातिषु वर्गेष्वेवं विभक्त इह मानवो विभागेषु।
न स्युर्यदि न विभागास्तर्हि सुखं मानवोजीवेत्।।"[3]

जाति धारण करके जाति भेद को समाप्त नहीं किया जा सकता। वर्णव्यवस्था में उच्च वर्ण को विशेषाधिकार प्राप्त है, जबकि निम्न वर्ग उपेक्षित है। सामाजिक व्यवस्था के आरम्भ में न तो कहीं कोई जाति थी न ही वर्ण–व्यवस्था। तब समाज में सभी की समानता और सहभागिता रही होगी। आगे चलकर बनी वर्णव्यवस्था जाति व्यवस्था का रूप लेने लगी। कवि कहता है जब ईश्वर ने हमें बनाने में कोई भेदभाव नहीं किया, तो हमने जातिगत भेदभाव क्यों कर रखा है–

"निर्माणमीश्वरस्य त्वमसि यथा वस्तुतस्तथाऽहमपि।
विप्रस्त्वं शूद्रोऽहं जातः कथमावयोर्भेद।।"[4]

आज समानता की अवधारणा मानकीय राजनीतिक सिद्धांत के मर्म में निहित है। सभी मनुष्य जन्म से समान होते हैं, अतः मानव–मानव में अन्तर नहीं करना चाहिए, यथा–

"जीवितुमिहाधिकारः प्रत्येकं मानवस्य सम एव।
तत्तु गुणित्वं तस्य श्रमसाधयं बुद्धिसाध्यञ्च।।"[5]

आज समाज में विभिन्न जातियों तथा सम्प्रदायों का विकास हुआ है। मानव अपनी क्षमता तथा विशिष्टता के आधार पर अपना सम्प्रदाय बनाता गया। यही समूह आगे चलकर जातियों में विभक्त हुए। यदि कोई जाति अपनी स्व रक्षा तक ही अपनी जिम्मेदारी समेट लेती है तो उसमें जड़ता आती है, वह दूसरी जाति की ओर से सशंक होने लगती है और अपने भीतर और अधिक फँसने लगती है, उसे अन्य जाति का कोई अस्तित्व नज़र नहीं आता। इस कारण आज समाज में जातिगत भेदभाव की स्थिति उत्पन्न होने लगी है। कवि कहता है कि भले ही समाज जातियों में विभाजित है, फिर भी सबमें मनुष्यत्व धर्म समान है–

"जातिस्वभावदृष्ट्या सत्यपि भेदे मनुष्यमात्रगते।
मानवतेति स धर्मः सर्वेष्वेको हि जागर्ति।।"[6]

आपसी सद्भाव, प्रेम तथा परोपकार की भावना कहीं खो सी गई है। रह गई है एक होड़, एक दूसरे से आगे जाने की। इस सबके बीच मनुष्य की मनुष्यता दम तोड़ रही है। मनुष्य को दूसरे मनुष्य के सुख–दुःख की अब कोई परवाह नहीं रह गई है। सम्प्रदायों में पड़ती यह अलगाव की भावना मानव को किस राह पर ले जा रही है। जाति व्यवस्था एक सामाजिक बुराई है जो प्राचीनकाल से भारतीय समाज में मौजूद है। वर्षों से लोग इसकी आलोचना कर रहे हैं लेकिन फिर भी जाति व्यवस्था ने हमारे देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखी है। आज सब अपने लिए जी रहे हैं। इसी विचारधारा से कवि क्षुब्ध है–

प्रवहति झञ्झावाते प्रभ्रंश्यति हन्तवस्तुजाते च।
स्वस्थ्वविषयया मन्ये जनोऽधुना चिन्तया ग्रस्तः।।[7]

आज उच्च जाति के लोगों को सम्मान एवं निम्न जाति के लोगों को हेय दृष्टि से देखते हुए तिरस्कार की भावना के साथ व्यवहार किया जाता रहा है। आज के समय में,

शिक्षा प्राप्त करने और नौकरी हांसिल करने के लिए भारत में जाति व्यवस्था आरक्षण का आधार बन गई है। देश में लोगों का सामाजिक एवं धार्मिक जीवन सदियों से जाति व्यवस्था की वजह से काफी हद तक प्रभावित रहा है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है। कवि इन सबका विरोध करता है। उसके मत में स्नेह की मानव मात्र का धर्म है–

"स्नेह : केवल एको मानवमात्रस्य धर्म इतिमन्ये।
अन्ये तु सन्ति धर्मा भिन्नं व्याख्यानमस्यैव।।"[8]

मानवता

इंसानियत व मानवता सबसे बड़ा धर्म है। कहते हैं दुनिया में कोई ऐसी शक्ति नहीं जो मानव का सर्वनाश कर सके, केवल मानव ही मानव का नाश कर सकता है। आज संस्कारों का चीरहरण हो रहा है, खूनी रिश्ते खून बहा रहे हैं। संस्कृति का विनाश हो रहा है। दया, धर्म, ईमान का नामोंनिशान मिट चुका है। मानव खुदगर्ज बनता जा रहा है। आज ईमानदारी कराह रही है, अच्छाई बिलख रही है, भाईचारा, सहयोग एक अंधेरें कमरें में सिमट गये हैं। आज मानव इतना गिर चुका है कि रिश्तेनाते भूल चुका है। संवेदनशीलता खत्म होती जा रही है। आज मानव मशीन बन गया है निजी स्वार्थों के आगे अंधा हो चुका है। अपने ऐशों आराम में मस्त है। दुनिया से कोई लेना–देना नहीं है। संस्कारों का जनाजा निकाला जा रहा है। मर्यादाएँ भंग हो रही है। कवि ने भी इस बात का अनुभव किया है कि आज मानव स्वार्थ भावना में इतना लिप्त हो चुका है कि अपनों का ही विनाश करने लगा है–

"सङ्कीर्णत्वमिदानीं ह्रदयेऽस्माकं तथा घनीभूतम्।
मन्यामहे निजानपि जनान् यथा हन्त परकीयान्।।"[9]

आज मानव कृतघ्न बनता जा रहा है। मंदिरों में दुष्कर्म हो रहे हैं। आज मानव स्वार्थ की पट्टी के कारण अंधा होता जा रहा है। गाय पर अत्याचार हो रहा है। मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है। आज के इस भौतिक युग में यदि मनुष्य, मनष्य के साथ अच्छा व्यवहार करना नहीं सीखेगा, तो भविष्य में वह एक–दूसरे का विरोधी ही होगा। इसी कारण हर तरफ मानवता का गला दबाया जा रहा है। हर तरफ मानवता जैसे रो रही हो। हर तरफ ना जाने कितने लाखों लोग बेघर हो रहे हैं और कितने ही मासूम बच्चे

अनाथ हो रहे हैं। वर्तमान में धार्मिकता से रहित आज की यह शिक्षा मनुष्य को मानवता की ओर ले जाकर दानवता की ओर लिए जा रहे हैं। आज मानव मोह ग्रसित हो गया है। अगर मानव मोह का त्याग कर दे तो उसका जीवन महान बन जाएगा। मानव को कोई भी चीज क्रोध से नहीं प्रेम से जीतनी चाहिए और क्रोध को क्रोध से नहीं क्षमा से जीतना चाहिए। जो व्यक्ति क्षमा को धारण करके रहता है वह महान बन जाता है। मानवता शीलवान् का शस्त्र है और अहिंसक का अस्त्र है। मानवता प्रेम का परिधान है, विश्वास का विधान है, सृजन का सम्मान है, नफरत का निदान है, पवित्रता का प्रवाह है, नैतिकता क निर्वाह है, सद्गुण का संवाद है, अहिंसा का अनुवाद है। मानवता क्षमा की अंगुठी में अहिंसा का मोती है। जीवन में स्व के लिए तो सभी जीते है, किन्तु जो पर के लिए जीता है वही श्रेष्ठ मानव है, वही धन्य है–

"जीवन्ति जगति बहवो निजसुखलाभार्थमेव यतमानाः।
ये च परार्थव्रतिनो धन्यास्तेऽपीह जीवन्ति।।"[10]

समाज की अवधारणा इस प्रकार निर्धारित की गयी है कि समाज एक ऐसी सुसंगठित संस्था है जो अपने सदस्यों को घातक तत्त्वों से नष्ट होने से बचाता है, उसके व्यक्तित्व का विकास करता है, व्यक्ति के सामने कुछ श्रेष्ठ जीवन–मूल्यों और परम्पराओं की प्रतिष्ठा देता है। मानव कुछ ऐसे बन्धनों में अपने को जकड़ा रहता है जो मनुष्य निर्मित है। साधारणतया व्यक्ति इन सीमाओं के अन्दर रहकर ही अपना पुरुषार्थ साधता है लेकिन मानवीय संस्कृति में कुछ ऐसे भी उदात्त मूल्य है–जो इन सीमाओं को लांघकर मानव मात्र के प्रति जुड़ जाने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करते हैं। जिस गुण को मानव–समाज अपने उत्कर्ष हेतु सामूहिक स्वीकृति प्रदान करते हैं, वही मानवता है। इस से अभिभूत होकर व्यक्ति का अपना हृदय इतना उदार हो जाता है कि पूरी वसुधा उसके लिए कुटुम्ब बन जाती है। यही मानवता की पराकाष्ठा है। यही मानव का श्रेष्ठ लाभ है–

"देवत्वलाभमेके बहु मन्यन्ते नरस्य कस्यापि।
मानवतैवास्माकं दृशि लाभो मानवस्य महान्।।"[11]

आज समाज में मानवता दम तोड़ रही है। मानवता का अस्तित्व बिखर रहा है। सत्य विखण्डित हो रहा है, मानव का गरिमा गिर रही है। जिस तरह मानवता समाज से

गायब हो रही है, उस तरह मानव का अस्तित्व ही विनाश के कगार पर खड़ा है। मानवता के विषय में आस्था–हीन होना ही हमारी संस्कृति का संकट है। व्यक्ति हो या समाज, वह चाहे कितना ही समर्थ और बलवान क्यों न हो, यदि वह सोया हुआ है तो वह मुर्दे के समान निश्चल और निष्प्राण है उसे कोई भी आसानी से खत्म कर सकता है। वस्तुतः मानव को मानव के रूप में देखना ही मानवता है। आकार इत्यादि से मानव मानव नहीं कहलाता है, उसमें निहित मानवीय गुण उसे मानव बनाते हैं–

"आकृत्यैव मनुष्यों न मनुष्यो भवति किन्तु मन्येऽहम्।
यस्मिन्नुदितमुदात्तं सुमनुष्यत्वं मनुष्यः सः।।"[12]

मानवीयता ही प्रेम है, प्रेम ही ईश्वर है, प्रेम ही सर्वस्व है। मानवीयता ही दुनिया की चालक ऊर्जा है। जो व्यक्ति मानवीयता से युक्त हो या जिसमें मानवीय भाव का समावेश हो, वही मानव कहलाने योग्य है, क्योंकि मानवीय संसक्ति ही मानव कुल का आधार है। जिस देश में मानवोचित गुण युक्त मानव रहते हैं, वह देश स्वर्ग तुल्य है–

"समशीलाः समहृदयाः परहित सम्पादने सदैव रताः।
यत्र वसन्ति मनुष्या देशः स स्वर्ग इतहुः।।"[13]

ज्ञान–विज्ञान हो, साहित्य या कला जो भी हो इन सबकी नींव ही मानवता है। मानवता एक ही समय आंतरिक होकर भी बाहर प्रकट होती है। विज्ञान सुख–सुविधाओं की चिंता करता है लेकिन मानवता के अभाव में सुख–सुविधाओं का कोई औचित्य नहीं। दरअसल सच्ची बात तो यह है कि इंसानियत की प्रतिष्ठा में ही मानवीय संसक्ति निर्भर है। हम मानते हैं कि ईश्वर सत्, चित्त और आनन्द है। ईश्वर की यही सत्ता ही मानवता है। मानवता तो सौन्दर्य का भी सौन्दर्य है–

"त्वामाश्रित्य लभन्ते सर्वाण्यपि सुन्दराणि सौन्दर्यम्।
सौन्दर्याणामपि रे मानवते त्वमसि सौन्दर्यम्।।"[14]

मानव की पूर्णता मानवता में है, मानवीय संसक्ति में है। महर्षि व्यास का कथन प्रसिद्ध है– **"न हि मानुषात श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्"**[15] धर्मग्रन्थ हो या साहित्य सभी इस बात की घोषणा करते हैं कि सृष्टि में मनुष्यता ही सर्वोच्च सत्य है। हमारा समस्त धार्मिक व

दार्शनिक चिंतन, सीधे अथवा प्रकारांतर से इस समूची सृष्टि रचना के केन्द्र में मानवता को ही देखता है। मनुष्य का एकमात्र धर्म मनुष्यता है, जात्यादि तो उसके बाह्यारोप है–

"परिचय एको वस्तुत इतो मनुष्यस्य रे मनुष्यत्वम्।

मुस्लिम इति हिन्दुरिति क्रिश्चिन इति बाह्य आरोपः।।"[16]

मानवीयता मानव मन का भाव है। विधाता ने दूसरों के प्रति जो सहानुभूति, आर्द्रता, अनुकंपा, लगाव इत्यादि प्रकट किए है, जो एक–दूसरे के प्रति ममत्व करने के लिए सक्षम है। इन सबके मूल में मानवीयता है। यह मानवीयता ही मानव को दानव नहीं, मानव बनाती है। जिस प्रकार फूल चाहे कितना भी सुन्दर हो यदि उसमें सुरभित्व नहीं है तो उसका कोई महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार मानवता धर्मरहित मानव का भी कोई औचित्य नहीं है–

"मानवतया विरहितः स्पृहणीयो भवति मानवो नेह।

रूपवदपि कोमलमपि गन्धविरहितं प्रसूनमिव।।"[17]

मानवता से युक्त समाज ही सुन्दर समाज कहा जा सकता है। आधुनिक समाज की स्थिति बिच्छू या केकड़ा के समान है, समाज में दूसरों की मदद करना बुरा कार्य माना जाता है। आज लोग जगह–जगह की जानकारियों से अपना ज्ञान–वर्धन करता रहता है लेकिन मानवता उनमें नहीं है। आज के इंटरनेट के युग में मनुष्य के पास समय की कमी है, विशेष रूप से मानवता की। आज मानव संकुचित प्रवृत्ति का हो गया है। उसे केवल स्वयं से मतलब है। मानवता न होने के कारण व्यथित मन, कुण्ठित हृदय, कलुषित सोच, अमानवीय आरोप–प्रत्यारोप की अभिव्यक्ति अभिनव समाज की नींव बनती जा रही है। थोथे वचन कर्मविहीन व्यक्तित्व, स्वार्थलिप्सा आज मानव के मित्र बन गये हैं। आज वही मानव श्रेष्ठ है जो इन अवगुणों से सम्पन्न है–

"मनुरद्यत्वे व्यर्थो व्यर्थोऽद्यत्वे च शङ्कराचार्य।

सार्थक इतः स सम्प्रति य इमान् महतोऽपभाषेत।।"[18]

मानवता के अभाव में मानव–प्रेम, मानव–आस्था, मानव–पूजा आदि परम मूल्यों की क्षति होती जा रही है। आज जो जितना स्वछंद, उत्श्रृंखल, धूर्त, लम्पट व अवसरवादी है

उतना ही वह व्यक्ति सफल व सार्थक है। आज मानव का गुण मानवता न रहकर धूर्तता हो गयी है, वही बुद्धि का पर्याय मानी जा रही है–

"सफलः स एव तावान् धूर्ता यो भवति साम्प्रतं यावान्।
धूर्तत्वमेव सम्प्रति पर्यायो बुद्धिमत्त्वस्य।।"[19]

आज प्रत्येक साल रावण का पुतला दहन करके अधर्म पर धर्म की जीत का नारा देकर खुशियों में डूब जाते हैं। किन्तु मानव इस रीति के पीछे छिपे सत्य को भूलता जा रहा है। इसका उद्देश्य मानवता का विकास तथा मानव में छिपी बुराईयों का अन्त था। आज मनुष्य स्वयं का स्वार्थ सिद्ध करने में लगा हुआ है। प्रतियोगिता के इस युग में मनुष्य अपने ही भौतिक लक्ष्यों व सुख–सुविधाओं की दौड़ में दौड़ रहा है। मनुष्य स्वयं के दुःख दूर करने व सुखार्जन में रत है, उसे दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह अपना फ़र्ज भूलता जा रहा है। वह सिर्फ अपने लिए जी रहा है, उसे समाज से कोई मतलब नहीं है। यथा–

"व्यस्तोऽद्यत्वे सकलो विनिवारयितुं स्वमेव दुःखमिह।
परदुःखकातरस्यात्यन्ताभावोऽधुना जातः।।"[20]

बदली परिस्थितियों के प्रभाव में मानव के व्यष्टि और समष्टि दोनों पक्षों को प्रभावित किया है, उसकी दृष्टि परम्परागत रास्ते से हट गयी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से पूँजीवादी सभ्यता, भ्रष्ट राजनीति, बढ़ी हुई स्वार्थपरता आदि के कारण भारतीय समाज में अमानवता बढ़ रही है। यही नहीं, स्वार्थ लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनुष्य अनेक मूल्यों की तिलांजलि देता हुआ दिखाई पड़ता है। समाज का इतना अधिक पतन हो चुका है कि उचित–अनुचित में फर्क करना भी अनुचित लगने लगा है। परिणामतः मानव से मानवता सूखती जा रही है। मानव में अहिंसा, दया, करुणा, धैर्य, सहिष्णुता, परोपकार आदि मानवीय मूल्यों के स्थान पर हिंसा, निष्ठुरता, आक्रामकता, झूठ–फरेब जैसे अमानवीय मूल्यों की वृद्धि हो रही है। मानव स्वोदरपूर्ति में लगकर पशु जैसा आचरण करने लगा है–

"स्वोदरपूर्त्युद्देश्यकमस्तित्वं यस्य नाम मनुजस्य।
सिद्धं तस्य पशुत्वं स्थितिवत आकारमात्रेण।।"[21]

राजनीतिक यथार्थ

विषय–प्रवेश – राजनीति हमारे जीवन की निर्णायक शक्ति है। हमारे जन्म से लेकर मृत्यु सब राजनीति पर ही निर्भर है। साहित्य और राजनीति दोनों का एक–दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य समाज अथवा सामान्यजन मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब है। ये मनोवृत्तियाँ समाज में ही प्रस्फुटित एवं पल्लवित दिखाई पड़ती है। समाज को परिचालित करने के लिए राजनीतिक नियमों की सुरक्षा आवश्यक है। वस्तुतः सच्चा साहित्यकार जिस मिट्टी पर जीता है, जिस समाज में रहता है और जिस युग के राजनीतिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकास होता है, उसकी झाँकी साहित्य के सिवाय और कहाँ देखी जा सकती है। समाज का कल्याण राजनीति के द्वारा संभव होता है। राजनीतिक मूल्यों का प्रभाव समाज में मानवीय आधार पर मूल्यों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

वर्तमान राजनीति

देश–विदेश की घटनाओं का प्रभाव समाज पर पड़ता है। सच्चा साहित्यकार सामाजिक प्राणी होने के नाते ऐसी घटनाओं से अनभिज्ञ नहीं रह सकता अतः राजनैतिक गतिविधियाँ, साहित्यिक रचनाओं में पाना बहुत ही सहज है। डॉ. जगन्नाथ पाठक एक ऐसी महान शख्सियत है, जिन्होंने व्यापक धरातल पर राजनैतिक गतिविधियों का मानचित्र, अपनी रचनाओं में, प्रस्तुत किया है। किसी भी राजनीतिक दल से न जुड़कर उन्होंने अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किये तथा वर्तमान राजनीति के प्रति अपनी असंतुष्टि प्रकट की है। स्वतंत्र भारत की राजनीति ही नहीं, उससे पूर्व की राजनीति का विघटित स्वरूप भी उन्हें खटकता रहा है। यह पाठक जी की परिवेशगत प्रतिबद्धता ही है कि उन्होंने अपने मुक्तकों में राजनीति को वर्णित किया। भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध जनमानस को उद्बुद्ध करना ही डॉ. पाठक का लक्ष्य रहा है। कोई भी कवि तभी महान कवि बनता है जब उसकी सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि समाज व राष्ट्र की हर स्थिति को समझ उसका वर्णन कर सके। आज जब हर क्षेत्र चाहे वह शिक्षा का हो, चिकित्सा का हो, सबमें राजनीति का बोलबाला है। ऐसी स्थिति में साहित्य भी राजनीति से कैसे बच सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति की राजनीतिक चेतना विविध स्वार्थी प्रवृत्तियों के रूप में प्रस्फुटित हुई सदा के लिए आपा–धापी ने राजनैतिक भ्रष्टाचार को जन्म दिया। भ्रष्टाचार के कारण

प्रत्येक व्यक्ति निम्न और उच्च स्तर पर सत्तात्मक राजनीति की शतरंज में अपनी गोटी बैठाने के प्रयत्न में संलग्न हो गया। व्यक्तिगत स्वार्थों ने दल–बदलू राजनीति को जन्म दिया। राजनीतिक दलों के नेता एक के बाद दूसरा दल बदलते रहे। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय जनता के जो सपने संजोए थे, वे धराशायी हो गये। राजनीतिक हत्यायें, घेराव, हड़ताल और तथावत् प्रवृत्तियाँ राजनीतिक अभिशाप के रूप में सामने आयी। साहित्य, समाज एवं युग स्थिति में अनिवार्य सम्बन्ध है। इसी से साहित्य और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यद्यपि भारतीय साहित्य में मूलतः धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है तथापि समयानुसार राजनीतिक स्थितियों से भी वह प्रभावित होता रहा है। साहित्य में राजनीति के प्रवेश के विषय में डॉ. पाठक ने लिखा है–

"साहित्यनन्दगेहं प्रवष्टिया राजनीतिपूतनया।
सन्तर्प्यते सुमुग्धः सहृदयजनबालगोपालः।।"[22]

प्रजातंत्र व्यवस्था, नौकरशाही व राजनीति के मुकाम पर अनेक खतरे उत्पन्न हुए है। बाबुओं और कनिष्ठ अधिकारियों की मेहनत पर फलने–फूलने वाले इन सत्ताधीशों की चिन्ता अपना बंगला बनाने, फार्म हाऊस खड़ा करने, बीवी बच्चे के नाम पर बेनामी सम्पत्ति लेने में है। स्वाधीन भारत में जितने भी राजनीतिक दल का उदय हुआ सबका उद्देश्य सत्ता प्राप्ति, धन–संग्रह और अपने को बनाए रखना मात्र था। वर्तमान राजनीतिक परिवेश में नैतिकता और देशसेवा के स्थान पर अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, धनलोलुपता एवं अनैतिकता को प्रश्रय मिलता आ रहा है। जिलाधीश और पुलिस जहाँ रहते हैं वहाँ चाटुकारों और चापलूसों की भरमार होती है। आज राजनीति भ्रष्ट, मक्कार, गुंडागर्दी और अराजकता का अखाड़ा बन गयी है। राजनीति में लिप्त इन भ्रष्ट लोगों के कारण आम आदमी के सपने टूट गए है। वर्तमान समय की राजनीति में हम सर्वत्र भ्रष्टाचार, अराजकता, अनुशासनहीनता, सत्ता मोह, स्वार्थपन, रिश्वत, दल–बदल की राजनीति देख सकते हैं। आज राजनीति में राष्ट्रीय प्रेम का अभाव चिन्तनीय विषय है। वर्तमान राजनीति, जातिवाद, भाई–भतीजावाद, आपसी–फूट, प्रान्तीयता का बीज़ बोकर लोकतांत्रिक मूल्यों को पतन की राह पर ले जा रही है–

"शास्त्राचारविहीनाः सन्ति समाजस्य हन्त नेतारः।
तुरगार्हं रथमधुना कर्षन्त्येते खराः कतिचित्।।"[23]

आज हमें इस दुःखद सत्य को मानना ही होगा कि नेतागण आज उचित नेतृत्व व पवित्रतापूर्ण आचरण के बदले सिद्धान्तविहीन, मूल्यहीन व दूषित राजनीति कर रहे हैं। वर्तमान राजनीति के भ्रष्ट व चहुँमुखी ह्रास के कारण समाज पतन की ओर बढ़ रहा है। देश की बहुमुखी राजनीति का पतन हुआ है, उसने नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर दिए है। अब जनता के सभी मसलें, चाहे वे रोटी के हों, चाहें धर्म के, वोट की नीति से तय होने लगे। सत्ता द्वारा भ्रष्टाचार और दुश्चरित्रता के संरक्षण एवं अपराध तथा राजनीति के गठजोड़ ने जन–जीवन में असहायता एवं असुरक्षा की भावना भर दी है। वोट की राजनीति में संकीर्ण जातिवाद और गुटबंदी का भरपूर प्रश्रय दिया है। परिणामस्वरूप जनता का विश्वास सभी प्रकार की संवैधानिक रक्षात्मक इकाइयों से उठ गया है। वर्तमान में राजनीति ने भी एक व्यापार का रूप धारण कर लिया है, इससे राजनीति का मूल स्वरूप पूर्णतः बदल गया है। आज सभी राजनेता अपना हित साधने में लगे हैं। डॉ. पाठक ने स्वयं लिखा है– "आज तथाकथित नेताओं ने संसार में शान्ति लाने का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर उठा रखा है। उनके इशारे पर हज़ारों लोग जान की बाजी लगा देते हैं और लाखों लोग उनके पीछे हो लेते हैं। जो आदमी जितनी मात्रा में अपने अनुगामी तैयार कर लेता है, वह उतना ही बड़ा नेता माना जाता है। किन्तु हम देख रहे हैं कि संसार ऐसे तथाकथित नेताओं के कारण शान्ति के लोभ में उलझ गया है। शान्ति की बातें निश्चय ही उसे अच्छी लगती हैं और आने वाला भविष्य उसे उज्ज्वल दिखाई देता है, पर सच्चाई यह है कि सब कुछ अन्त में भ्रमित करने के सिवा कुछ नहीं होता। आज की सभी लड़ाइयाँ तथाकथित नेताओं के मस्तिष्क की उपज है। सबसे बड़ी दयनीयता यह है कि सामान्य जनता इतनी भ्रमित है कि इन लोगों की चाले नहीं समझ पाती। राजनीति का क्षेत्र इस प्रकार नितान्त मलिन एवं दूषित हो चुका है। दुर्भाग्य यह है कि राजनीति का विष साहित्य में भी व्याप्त हो चुका है। साहित्य आज राजनीति का अनुगत होकर चल रहा है और कभी–कभी तो गुणगान मात्र होकर रह गया है।"[24] आज सर्वत्र शासन में राजनीतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। वास्तव में आज चुनाव की प्रक्रिया जातीय वर्चस्व धन एवं गुंडे लोगों के कब्जे में रहती है। नेता भी वोट के लिए

उनकी हर संभव सहायता करते हैं। कवि कहता है आज सर्वत्र दुःशासन व्याप्त है, जिसमें अबला जनता के सतीत्व की सुरक्षा करना असंभव है–

"सम्प्रति सर्वत्रैव व्याप्ते दुःशासने जगत्सदसि।

अबलाया जनतायाः सतीत्वमसुरक्षितं जातम्।।"[25]

आज राजनीति अत्यन्त मलिन हो गयी है। अपना हित साधने के लिए राजनेता मासूम जनता को भ्रमित करते हैं। आज समाज में जो भी विद्वेष, विसंगति, हिंसा का वातावरण, अराजकता, साम्प्रदायिकता व्याप्त है, उसका मूल कारण दूषित राजनीति ही है। जिस राजनीति का उद्देश्य समाज में शांति व्याप्त करना तथा जनकल्याण था वह आज हिंसा का प्रतिरूप बन गयी है–

"याऽधिश्रिता पुराऽभूत कल्याणं किमपि लोकमात्रस्य।

सा राजनीतिरधुना हिंसा कुलदेवतां मनुते।।"[26]

विभिन्न राजनीतिक दलों का असली चेहरा चुनावों के दौरान सामने आता है। राजनीतिक कुचक्र इस सीमा तक भयावह हो गया है कि देश के जीवन से सिद्धान्त और आदर्शों का लोप हो गया है। राजनीतिक दल–बदल, रोज सरकारों का बनना और गिरना, मुख्यमंत्री से लेकर बाबू तक मची हुई लूट–पाट और एक विचित्र सी आपाधापी में मनुष्य कुचला जा रहा है। आज की राजनीति में नेताओं का कोई नैतिक चरित्र नहीं है। आज के राजनेताओं की कथनी–करनी अलग–अलग है। न तो उनके व्यवहार में स्थायित्व है, न नैतिक चरित्रता। वह जिस हाथ से मूर्ति का निर्माण करते हैं उसी से विध्वंस भी कर देते हैं। नेता लोग नैतिक–अनैतिक की परवाह नहीं करते। आज के नेताओं का व्यवहार समझ पाना कठिन है–

"मूर्तीनां निर्माणं मूर्तीनां भङ्ग एतदुभयमपि।

अद्यत्वेऽपि विलसति व्यवहारों राजनीतिविदाम्।।"[27]

आज यही स्थितियाँ वर्तमान राजनीति में दिखायी दे रही है जो पाठक जी बहुत पहले ही वर्णित कर चुके हैं। भारतीय चुनाव प्रक्रिया में निस्वार्थी, सेवाभावी एवं ईमानदार व्यक्ति उम्मीदवार होना आवश्यक है। जनतंत्रात्मक चुनाव प्रणाली में आज कई दूषित गड़बड़ियाँ होने लगी है। डॉक्टर का बेटा डॉक्टर बन जाये, वकील का बेटा वकील या

अध्यापक का बेटा अध्यापक तो इसे कोई भी परिवारवाद की संज्ञा नहीं देता और न ही किसी को सार्वजनिक रूप से जलन होती है, लेकिन अगर किसी राजनैतिक नेता का बेटा या बेटी राजनीति में घुस जाये तो सबको खलता है क्योंकि हमारे देश में राजनीति एक बहुत बढ़िया व्यवसाय बन गया है, जिसमें कोई शैक्षिक योग्यता नहीं चाहिए, ना ही उम्र का कोई तकाजा है। राजनीति में बढ़ते वंशवाद का कारण जनता ही है। आज राजनीति में जनता को नेता चुनने का अधिकार है। जनता वोट के जरिए अपना नेता चुन सकती है तथा जिसे चाहे नकार सकती है। राजनीति में वंशवाद को कोई अवसर नहीं है–

"न कुलक्रमागतोऽसावधिकारः कोऽपि नाम नेतृणाम्।
तस्य तु स एव नेता जनसामान्यो यमाद्रियते।।"[28]

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था बिल्कुल धार्मिक विभाजन के आधार पर है। चुनाव के समय राजनेता वोट हांसिल करने के लिए धर्म को हथियार मानता है। आज हर जाति अपने को ऊँचा बनाने के लिए राजनीति के दलदल में फँसती जा रही है। जो संगठित धार्मिक स्थिति पहले मौजूद थी वह अब नष्ट हो चुकी है। राष्ट्रीय नेता लोक इस विघटन का पूरा फायदा उठाते है। स्पृश्य–अस्पृश्य का विवाद भी सामाजिक न्याय, करुणा या यथार्थता की अपेक्षा राजकीय स्वार्थ में पला हुआ, जान बूझकर पनपाया गया है। नेतागत सामान्य जनता को अपनी स्वार्थ सिद्धि का माध्यम मानता है। ग्रामीण समाज का सबसे बड़ा राजनीतिक यथार्थ धर्म के नाम पर राजनीति है। आज हर वर्ण अपनी राजनीति करने लगा है–

"स्वं स्वं वर्णमपेक्ष्य प्रवर्तते राजनीतिरेतर्हि।
वस्तुत एका रथ्या काचिदियं स्वार्थसङ्कीर्णा।।"[29]

आज की राजनीति प्राचीन राजनीति से पूर्णतया भिन्न है। पूर्व में राजनेता जनता के कल्याण के लिए दृढ़ संकल्पित रहते थे किन्तु आज के नेता जनता को भ्रमित कर वोट लेते हैं तथा जीतने के बाद अपने वादों को भूल जाते हैं, बेचारी जनता इन नेताओं के अभिनय को नहीं समझ सकती है–

"करुणाया अभिनयमिह नेतारः कुर्वते समेऽद्यत्वे
कारुणिकायेऽर्थत इह सम्प्रत्यालेख्यशेषास्ते।"[30]

डॉ. कलानाथ शास्त्री पुरोवाक् में डॉ. पाठक की राजनीति सम्बन्धी नीति के विषय में लिखते हैं कि– "वोटों की राजनीति और राजनैतिक विडम्बनाओं पर प्रहार करने की कवि की शैली भी अनूठी है–"[31]

"नीराजनां चरन्त्यै येन करेगेह हन्त तेनैव।
त्वन्मन्दिरशिखराग्रं भिन्दानायै नमो नीत्यै।"[32]

आज के राजनीतिक तन्त्र का उद्देश्य मानव का कल्याण करना नहीं है। आज राजनीति व्यवस्था अधिक धुँधलापूर्ण एवं अनैतिकता के रास्ते की ओर चल रही है। सब ओर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, क्रूरता एवं विध्वंस का बोलबाला है। आजादी के बाद की परिस्थितियों ने समाज को मोहभंग की दहलीज पर लाकर खड़ा कर दिया। जिन सपनों–आशाओं को लेकर स्वतंत्र भारत का सपना देखा था और जिस सुविधापूर्ण जीवन की चाहत नागरिकों के मन में थी, वह चूर–चूरकर बिखर गयी । आज की राजनीति युवा आक्रोश को सही दिशा देने में नाकामयाब है। राजनीतिक कार्यों का सर्वाधिक लक्ष्य और उद्देश्य जनता का मंगल और कल्याण होना चाहिए। लेकिन कुशल मंगल सिर्फ राजनेताओं और पूंजीपतियों का हुआ है–

"प्रतिजानाना जनहितमात्मीयं कार्यमेवकुर्वाणा
जीवनरसं पिबन्ति न राजनीतिः क्वचित् सेव्या।"[33]

आजादी के बाद से हमारे देश में राजनीतिक दलों, राजनेताओं और नौकरशाहों के चरित्र और नैतिक मूल्यों में लगातार गिरावट ने दर्शाया है कि प्राचीन राजनीति में तो एक धृतराष्ट्र या राजा ही मोहान्ध होता था किन्तु आज की राजनीति में तो हर नेता मोहांध है–

"प्राचीनों धृतराष्ट्रः स एव मात्रं न हन्त मोहान्धः।
साम्प्रतिका अपि बहवो मोहान्धाः सन्ति धृतराष्ट्रा।।"[34]

हमारे लोकतंत्र में जनता को चुनाव प्रक्रिया द्वारा अपना नेता चुनने का अधिकार है, किन्तु आज जनता कुछ लोगों के बहकावे में आकर अपनी शक्ति का सही उपयोग नहीं कर रहा है। आज लोकतन्त्र भीड़तन्त्र हो गया है। मतगणना बहुमत के आधार पर होती है

किन्तु जनता इसमें अपनी बुद्धि का उपयोग नहीं करती है। इस विडम्बना से कवि मन आहत है–

> **"मतगणनावसरेषु प्रायो लोके शिरांसि गण्यन्ते।**
> **परिमाप्यते न बुद्धेर्मात्रा खेदो महानेषः।।"[35]**

जीवन के इतने नग्न यथार्थ का चित्रण जगन्नाथ पाठक जैसा भविष्य दृष्टा कवि ही कर सकता है।

आतङ्कवाद

आतंकवाद किसी एक व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र विशेष के लिए नहीं अपितु पूरी मानव सभ्यता के लिए कलंक है। हमारे देश में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में इसका जहर इतनी तीव्रता से फैल रहा है कि यदि इसे समय रहते नहीं रोका गया तो यह पूरी मानव सभ्यता के लिए खतरा बन सकता है। भययुक्त वातावरण को अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु तैयार करने का सिद्धांत आतंकवाद कहलाता है। विश्व के समस्त राष्ट्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इसके दुष्प्रभाव से ग्रसित है। रावण के सिर की तरह एक स्थान पर इसे खत्म किया जाता है तो दूसरी ओर एक नए सिर की भाँति उभर जाता है। भारत देश एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ अनेक धर्मों के मानने वाले लोग निवास करते है। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आर्य समाजी, पारसी आदि सभी धर्मों के अनुयाइयों को यहाँ समान दृष्टि से देखा जााता है तथा सभी को समान अधिकार प्राप्त है। वास्तविक रूप में धर्मों का मूल एक है। सभी ईश्वर पर आस्था रखते हैं तथा मानव कल्याण को प्रधानता देते हैं। सभी धर्म एक–दूसरे को प्रेमभाव व मानवता का संदेश देते हैं परन्तु कुछ असामाजिक तत्त्व अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म का गलत प्रयोग करते हैं। धर्म की आड़ में वे समाज को इस हद तक भ्रमित कर देते है कि उनमें किसी एक धर्म के प्रति घृणा का भाव समावेशित हो जाता है। उनमें ईर्ष्या, द्वेष व परस्पर अलगाव इस सीमा तक फैल जाता है कि वे अपनों का ही विनाश कर रहे हैं। डॉ. पाठक कहते हैं कि यह तमरूपी आतंकवाद प्रतिदिन इस तरह फैल रहा है कि सूर्य रूपी मानवता छिपी–छिपी घूम रही है–

"प्रतिदिनमितस्तमोभिः प्रवर्धितः सर्वतोऽयमातङ्कः।

भगवानपि प्रविशति प्रभाकरो भीतभीत इव।।"[36]

आतंकवाद सकल मानव सभ्यता के लिए कलंक है। बहुत सारे देशों के द्वारा आतंकवाद का सामना करने की कोशिश की जा रही है, लेकिन कुछ देशों के द्वारा इसे आज भी समर्थन दिया जा रहा है। ऐसे देश इसके दुष्प्रभाव को नहीं समझते है। वे भूल गये हैं कि जो दूसरे के घर में आग लगवाता है, उससे सबसे पहले खुद का घर ही जलता है। डॉ. पाठक ने आतंकवाद को भस्मासुर की संज्ञा दी है जिस प्रकार भस्मासुर नामक राक्षस को शिव से वरदान प्राप्त हुआ कि वह जिसके भी सिर पर हाथ रखेगा वह तुरंत समाप्त हो जाएगा, तो उसने सर्वप्रथम आशीर्वाद देने वाले भगवान शंकर को ही नाश करने की सोचा। ठीक इसी तरह आतंकवाद है जो उसको प्रश्रय देने वाले देशों का ही प्रथमतया नाश करता है–

"आतङ्कवादनामा भस्मासुर एष कोऽपि जगर्ति।

स्वप्रश्रयदातारं प्रथममसौ भस्मसात् कुरुते।।"[37]

भारत और समूचे विश्व में आतंकवाद एक गंभीर समस्या बनकर उभरा है। यह किसी भी तरह लाभदायक नहीं। बल्कि इसने देशों में नई–नई समस्याओं को जन्म दिया है। आज विश्व का कोई भी नागरिक अपने आपको कहीं भी सुरक्षित नहीं कर पाता। विश्व की अधिकांश जनता इस राक्षस को कुचलना चाहती है। परन्तु यह राक्षस बहुत बड़ा है। अहिंसक और शांतिप्रिय देश भारत में पिछले कई दशकों से आतंकवाद का बोलबाला है। इसके कारण जन–जन में आज भय समा गया है। इसके कारण अनगिनत लोगों का घर उजड़ जाता है। धन–संपत्ति का नाश होता है। मानव जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। यह मानवता और सभ्य समाज के लिए कलंक है। डॉ. पाठक स्वयं मानवता का अस्तित्व बचाने के लिए चिंतित है। उन्होंने लिखा है–

"आतंकवादजनिते वात्याचक्रे प्रवर्त्तमानेऽस्मिन्।

कथमस्तित्वं रक्षतु मानवताख्यालता स्वीयम्।।"[38]

हमारे देश में आतंकवादी हमलों का सबसे बड़ा कारण गरीबी, सामाजिक भेदभाव और असमानता है। ऐसी समस्याओं से ग्रसित लोग कुछ बुरे लोगों के प्रभाव में आज तो हैं जहाँ

उनकी सभी इच्छाओं को पूरा करने का वादा किया जाता है। वो सभी एक साथ मिलते हैं और एक आतंकवादी समूह बनाते हैं जो कि अपने ही राष्ट्र, समाज और समुदाय से लड़ता है। आतंकवाद के फैलने का मुख्य कारण राष्ट्र के ही कुछ लोग है जो अपने अनैतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आतंकवाद का समर्थन करते हैं। कवि ने खुद इस विषय में अपने मनोविचार प्रकट करते हुए लिखा है–

"परितो राष्ट्रमिदानीं प्रतीक्षमाणा न केवलं रिपवः।
राष्ट्राभ्यन्तरपीमे सन्ति विघटनार्थमुद्युक्ताः।।"[39]

इस आतंकवाद के कारण सकल मानव जाति असुरक्षित है–

"असुरक्षा नगरेषु ग्रामेष्वपि चातिमात्रमसुरक्षा।
असुरक्षितमस्तित्वं नासीदीदृङ् मनुषस्य।।"[40]

इस प्रकार कवि ने अपने मुक्तकों में बढ़ते आतंकवाद पर बहुत चिंता जताई है।

(ख) मानवीय संवेदना

विषय प्रवेश – संवेदनायें मनुष्य की अभिन्न अंग है। हम संवेदहीन मनुष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय में उठने वाले भावों, मनोविकारों को अनुभव करने के बाद ही उसे प्रेषणीय बनाता है। जिस प्रकार चित्रकार अपने भावों को चित्र के द्वारा, शिल्पकार मूर्ति के द्वारा, कुम्हार अपने घड़ों के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है उसी प्रकार साहित्यकार भी अपने विचारों को, संवेदनाओं को, अनुभवों को अपनी रचना द्वारा व्यक्त करता है।

साधारणतया संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा हैं, मूलतः संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। मानवीय संवेदना का अर्थ बताते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है कि– "नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनमें संबंध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न–भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। यह भाव या मनोविकार ही मानवीय संवेदन कहलाता है। यह मानवीय संवेदना प्रत्येक व्यक्ति के अंदर निहित रहती है। मानव

के सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय भेद के अनुसार प्रेम, ह्रास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूपधारण करता है।"[41]

साहित्यकार का संवेदनशील होना अत्यन्त आवश्यक है। संवेदनहीनता की अवस्था में ना तो साहित्यकार अपनी रचना में सफलता प्राप्त कर सकता है और ना ही लोगों की भावनाओं के साथ तादात्मय स्थापित कर सकता है। इसी प्रकार डॉ. जगन्नाथ पाठक ने भी अपने मुक्तकों में मानवीय संवेदनाओं को उजागर किया है, जिसे हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

सुखानुभूति

मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सुख प्राप्ति होता है। सुख प्राप्ति के लिए जीवनपर्यन्त मनुष्य संघर्षरत रहता है। इसके लिए वह अनेक कार्य भी करता है। सुख भी अनेक प्रकार के होते हैं–वैयक्तिक सुख, पारिवारिक सुख, प्रेमपरक सुख, कार्यप्रवृत्ति का सुख आदि। कवि ने प्रेमी, सहृदय के मिलन से प्राप्त सुख को कविता का कारण मानते हुए लिखा है–

"यदा क्वचन सङ्गतो भवति कश्चिदेकान्ततः,
प्रमोदपरिपूरितः प्रियजनो व्यथां संहरन्।
यदा समुपजायते मदु च तेन सम्भाषितं,
क्षण नु कविता तदा मनसि में समुन्मीलति।।"[42]

जीवन में सुख–दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू है। सुख–दुःख का क्रम बदलता रहता है। डॉ. पाठक सुख की प्राप्ति की प्रतीक्षा ना जाने कब से कर रहे हैं। यह सुख उन्हें मिलेगा या नहीं यह भी निश्चित नहीं है। फिर भी एक ऐसी संवेदना है जो उन्हें सुख देती है–

"सम्मोहनमुत्पाद्य स्वरेण शाखां समाश्रयस्यन्याम्।
पुनरागमं तवाहं प्रतीक्षमाणश्च तिष्ठामि।।"[43]

जीवन ने प्रेम से बढ़कर कोई सुख नहीं है। कवि ने प्रेम को ही वास्तविक सुख माना है। जिस प्रेम को जगत वासना की पूर्ति का साधन मानता है, उसी प्रेम के द्वारा भगवत्प्राप्ति भी होती है, जो कि सुख की चरम सीमा है, जैसा उन्होंने कहा है–

"यत्प्रेम वासनायाः पूर्तेरिह साधनं मतं जगति
प्राप्यत इह तेनैव प्रेम्णा भगवान् मुकुन्दोऽपि।"[44]

कवि ने वास्तविक सुख कृष्ण भक्ति को माना है। उन्होंने उसके सामने अपनी पूर्व कृतियों को भी फीका बताया है—

"मृद्वीका बत 'फीका' किं वा सा 'कापिशायनी' विरसा
कृष्णेत्यक्षरयोर्ननु माधुर्यं किञ्चिदुल्लसति।"[45]

दुःख की अनुभूति

दुःख मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है। सुख जितना सच है दुःख भी उतना ही सच है। सुख का मूल्य और अनुभव हम तभी कर सकते हैं जब हम दुःख से परिचित होते हैं। कहते हैं कि सुख बाँटने से बढ़ता है तथा दुःख बाँटने से कम होता है। दुःख व्यक्ति के जीवन का वास्तविक सत्य हैं, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को भोगना ही पड़ता है। डॉ. पाठक ने भी जीवन में दुःख का अनुभव किया है। दुःख के अनेक कारण होते हैं, जैसे पारिवारिक समस्याएँ, प्रेम संबंधी विषय, जीवन की विफलताएँ और संघर्षशीलता, मानवीय संबंधों में परिवर्तन, समाज की वास्तविक परिस्थिति आदि दुःख के अनेक कारण बनते हैं।

डॉ. पाठक आज समाज के मध्य व्याप्त अमीरी—गरीबी की रेखा से बहुत दुःखी है। इसी दुःख को प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है—

"गगनस्पृशमिदानीं भवनानां मध्यतो विलुप्तमहो।
इह मामकीनमेकं कुटीरकं वदत कुत्रास्ति।।"[46]

जीवन में दुःख की गति के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है। वह जीवन में कुछ समय के लिए भले ही लुप्त हो जाए लेकिन वह कभी भी फिर से वापिस आ सकता है। दुःख हमेशा अनिश्चित होता है और जीवन में आँख मिचौली का खेल खेलता है। कवि इसी सत्य की ओर इंगित करते हुए कहता है—

"सम्पूर्ण एव गेहे स्नेहेन प्रज्वलन् पुरा योऽभूत।
निःस्नेहादिव दीपात् तस्माद् गेहोऽधुना ज्वलति।।"[47]

दुःख और आँसुओं के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। दुःख और आँसुओं का सम्बन्ध धागे और मोती के समान अन्योन्याश्रित है। जब दुःख होता है आँसु अवश्य आते हैं। कवि कहता है कि सुखानुभूति के समय अचानक दुःख आ जाने के कारण अश्रुपात हो ही जाता है–

"हसितोत्तरीयकेण प्रच्छादयितुं क एष यत्नस्ते।
स्फुटतां गतं त्विदानीं त्वद्रुदितं सर्वलोकस्या।"[48]

आज समाज में व्याप्त अमानवता से भी कवि मन दुःखी है। आज मानव ही मानव का भक्षण कर रहा है, यह बहुत चिन्ता एवं दुःख का विषय है–

"मानवभक्ष्यस्याघ नु वृद्धिं प्राप्ता न तावती सीमा
निर्धारयेत्, स यस्यां मानव एव स्वभक्ष्यः स्यात्।।"[49]

आज संसार में सांसारिक हिंसा, अत्याचार, दुर्व्यवहार, अनाचार आदि वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। इनका प्रभाव मानव जीवन पर पड़ रहा है। यही मानव के दुःख का वास्तविक कारण है। कवि समाज में सब तरफ असहिष्णुता देख रहा है। वे कहते हैं कि आज सम्पूर्ण देश असहिष्णुता की अग्नि में जल रहा है, जिसके फलस्वरूप उसे दुःख की अनुभूति हो रही है–

"असहिष्णुत्वमिदानीं मन्ये प्रत्येकमिह जने व्याप्तम्।
नगर ग्रामा–सर्वेऽग्निपरीता हन्त दृश्यन्ते।।"[50]

"एकस्मिन् नगरे वा ग्रामे वा नायमग्निकाण्ड इह।
प्रतिभात्यग्निपरीतं भारतमेतर्हि सम्पूर्णम्।।"[51]

आज एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से कोई मतलब नहीं है। सब अपने सुख में खुश है। किसी के दुःख से किसी को कोई मतलब नहीं है। व्यक्ति खुद के लिए जी रहा है। कवि समाज में व्याप्त इस विडम्बना से बहुत दुःखी है। वह कहता है आज शहरों में तो उत्सव मनाया जा रहा है, लेकिन गाँव में जीवन यापन करने वाले कृषक वर्ग के दुःख किसी को मतलब नहीं है–

"नगरे प्रवर्तमानो वसन्तिक उत्सवोऽयमेकत्र।
ग्रामे करकापाताद् रोदिति कृषकोऽयमन्यत्र।।"[52]

जब इंसान दुःखी रहता है तो उसे एकमात्र भगवान याद आता है। मनुष्य जानता है कि एक भगवान् वह परमशक्ति है जो उसके दुःख का समूल विच्छेद कर सकती है। डॉ. पाठक भी दुःख के क्षणों में भगवान् को याद करते हुए कहते हैं–

"बहवो दिवसा नु या पिता
व्यथितेनेह मया प्रतीक्ष्यसे।
भवनारकसूत्रधार हे
निजनेपथ्यगहाद् विनिः सर।।"[53]

दुःख जीवन की वास्तविकता है। भले ही दुःख के अनेक कारण हो, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को इससे जूझना ही पड़ता है। डॉ. पाठक कहते हैं कि आज सकल समाज दुःखी है–

"निजशर्म विशीर्णतां गतं
विपदः कुज्झरिका प्ररोहति।
मम दुःखमिदं न केवलं
सकलोऽपीह जनो विषीदति।।"[54]

करुणा की अनुभूति

दया और करुणा की भावना मानव का धर्म होता है। जब एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के दुःख का कारण का ज्ञान होता है, तब उसके मन में करुणा की भावना जागृत होती है। इसीलिए करुणा को मानव का धर्म भी कहा जाता है। जिस धर्म में दया और करुणा की भावना नहीं होती वह धर्म नहीं कहला सकता। आज का मानव संवेदनाविहीन होता जा रहा है, उसमें करुणा का अभाव है। आज का लोक भावना शून्य हो रहा है–

"अनुभव इह पीडाया यस्य स एवावगन्तुमिदमर्हेत्।
शून्यः सम्प्रति लोको भावनया सर्वथा जातः।।"[55]

करुणा की भावना एक सात्विक भावना है। मनुष्य को संसार के प्रत्येक जीवी के प्रति करुणा दिखानी चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य को कष्ट, दुःख और समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उसी प्रकार अन्य जीवियों को भी अनेक प्रकार की कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। तब अगर मनुष्य उन पर दया दिखाता है तो वह

मनुष्य होने में सार्थकता का अनुभव करता है। आज मानव विविध प्रकार के कष्ट रूपी पाशों से बँधा हुआ है। डॉ. पाठक कहते हैं कि केवल करुणा में ही वह शक्ति है जो मानव को इन पाशों से मुक्त करवा सकती है–

"बद्धः पाशैरभितः क्लिश्यति जन एषजीवनेसततम्।
एका छिनत्ति पाशानकारणा कस्यचित् करुणा।।"[56]

आधुनिक काल में जहाँ मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि वह केवल अपने लाभ के बारे में ही सोचता है जिससे हर जगह हिंसा, भ्रष्टाचार, अत्याचार की घटनाएँ बढ़ रही है। इसी विषय को ध्यान में रखकर डॉ. जगन्नाथ पाठक ने अपने मुक्तकों में करुणा के महत्त्व को उजागर किया है। अपने मुक्तकों में उन्होंने समाज की विभिन्न परिस्थितियों को देखते हुए करुणा की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला है। वे कहते है कि आज मानव के हृदय से करुणा गायब होती जा रही है। ऐसे में करुणों की पुकार सुनने वाला कोई नहीं है। ऐसी परिस्थिति में कवि को गजेन्द्र की आर्त्तपुकार सुन उसके प्राणों की रक्षा करने वाले एक मात्र भगवान् ही सहारा दिखते हैं। उनका मानना है कि भगवान् ही एक मात्र कारुणिक है–

"करुणार्द्रान्तः करणं क्वचिदुपलब्धासि नैव जनमद्य।
त्वमकारणकारुणिकं तमेकमुपयाहि शरणमतः।।"[57]

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों के कारण मनुष्य में क्रोध की भावना उत्पन्न होती है। क्रोध के अनेक कारण होते हैं–जैसे वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, स्त्री शोषण आदि। आधुनिक काल में वैयक्तिक कारण के साथ–साथ सामाजिक कारण भी क्रोध का विषय बन गये हैं। डॉ. पाठक ने भी क्रोध के लिए वैयक्तिक कारणों के साथ–साथ सामाजिक कारणों का उल्लेख भी अपने मुक्तकों में किया है। यथा आज के मानव के पशुतुल्य आचरण के विषय में अपना क्रोध व्यक्त करते हुए कवि पाठक कहते हैं–

"यत्प्रवदन्ति कदाचित् पशुंरासीन्मानवः पुराकाले।
तस्मिंस्तन्नु पशुत्वं जागर्त्यद्यापि यत्किञ्चित्।।"[58]

आज समाज में निर्धन वर्ग का शोषण हो रहा है। कृषक वर्ग के पास खाने को भोजन तक नहीं है। कवि ने इस प्रकार की सामाजिक विषमता के प्रति क्रोध की भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि–

"डिम्भश्चूषति निर्दयं प्ररुदितः शुषकं स्वमातुःस्तनं
वत्सो धेनुमुखस्थमेककवलं भोक्तुं समुत्कण्ठते।
तूष्णीमाश्रयते च पञ्जरशुकः पक्षाग्रमास्य दधत्
पश्यन् दृश्यमिदं गृहस्य कृषको निद्राति नान्तः शुचा।।"[59]

इस प्रकार डॉ. पाठक ने भी अपने मुक्तकों में सामाजिक क्रोध को व्यक्त किया है।

प्राणी मात्र के प्रति प्रेम

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का एक प्रमुख अंग है। मनुष्य अपना जीवन केवल मनुष्य के बीच में ही नहीं बिताता। बल्कि नदी–नाले, पहाड़, टीले, खेत, खलिहान, पेड़–पौधे एवं पशु पक्षियों के बीच भी बिताता है। मनुष्य ने इन सभी प्राकृतिक अंगों के साथ एक रागात्मक संबंध स्थापित किया है। डॉ. पाठक को भी प्रकृति से बहुत प्रेम है। इसलिए उनके मुक्तकों में इन सभी तत्त्वों के प्रति संवेदनाएँ व्यक्त है। इसके अतिरिक्त आराध्य या परमात्मा के प्रति प्रेम या भक्ति की भावना भी मानवेतर प्रेमपरक संवेदना के अंतर्गत आती है। आज मानव अपनी सुविधाओं के लिए प्रकृति का विनाश कर रहा है। मनुष्य इतना स्वार्थी बन गया है कि वह अपने मनोरंजन के लिए बेजुबान जानवरों का आखेट कर रहा है। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए डॉ. पाठक ने लिखा है–

"ग्रीष्मे कदाचिदुपगत्य वने हतायां
व्याधेन केनचिदपेतमुदो मयूर्याम्।
नृत्यप्रियस्य दिवसा बत प्रावृषेण्या
यास्यन्ति केन विधिना नु शिखण्डिनस्ते।।"[60]

इसी प्रकार डॉ. पाठक ने ईश्वर के प्रति भी अगाध श्रद्धा तथा विश्वास अपने मुक्तकों में प्रकट किया है। वे श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व मानते है। श्रीकृष्ण को अपनी हर सुखद परिस्थिति का कारण मानते हुए वे कहते हैं–

"श्री कृष्णो मम मुदितं श्रीकृष्णोहन्त किञ्च में रुदितम्।
श्री कृष्णो मम चलितं श्री कृष्णः किमपि मे स्खलितम्।।"[61]

"श्री कृष्णो जागर्या श्री कृष्णः स्वप्न एव मम कश्चित्।
श्रीकृष्णश्च सुषुप्तिः श्री कृष्णो में दशात्रितयम्।।"[62]

वेदना परक अनुभूति

कवि जो भी समाज में देखता है, उसी को अनुभूत कर शब्दों का रूप दे देता है। डॉ. पाठक ने भी जो भी समाज में देखा, उसको आत्मसात कर मुक्तकों में पिरोकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। आज समाज में जो भेद–भाव की नीति है, उससे कवि मन वेदना से परिपूर्ण है तथा वह इस नीति से मुक्ति चाहता है, यथा–

"काकानामधिकारः कियदवधिः स्याद् रसालयनभूमौ।
कोकिलकेभ्यो देयः सम्प्रति सामाजिक न्यायः।।"[63]

आज जिसको अपना समझते है, वही अन्त में परायों जैसा व्यवहार करता है। जिसे पाल–पोसकर बड़ा करते हैं, वहीं हमारे दुःख का कारण बन जाता है। सर्प के माध्यम से इसी वेदना को व्यक्त करते हुए डॉ. पाठक कहते हैं–

"येनोद्यानकपालकेनसुचिरं ग्रीष्मेषु पूर्णैर्घटै
राहत्याम्बु निषेवितोऽद्य महतीं शोभां भजस्याम्र हे!
दष्टः कोटरशायिना स तव तत् सर्पेण शेते मृत
स्त्वल्लीलायितमस्ति वैतदथवा कालस्य लीलायितम्।।"[64]

आज देश में सर्वत्र हाहाकार व्याप्त है, कहीं भी शान्ति नहीं है। जो भारत देश कभी शान्तिदूत था आज उसमें सर्वत्र अशान्ति फैली हुई है, इसी वेदना को व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

"न दिशोः पूर्वोत्तरयोः शान्तिर्न च हन्त पश्चिमोत्तरयोः
शान्तेः सन्देशहरं भारतमेतर्ह्यशान्ततरम्।"[65]

अन्य अनुभूतियाँ

डॉ. पाठक के साहित्य में मानवीय मन की समस्त अनुभूतियाँ यथा क्रोधपरक, कामपरक, ईर्ष्यापरक, भयपरक, अहं परक, औदार्यपरक, विस्मयपरक, हासपरक, मोहपरक, रागपरक, द्वेष परक, आशात्मक, निराशात्मक, खेदात्मक आदि सभी देखने को मिलती है।

मनुष्य का मानसिक तन्त्र अनेक विकारों से भरा पड़ा है जिके कारण आज समाज की स्थिति दयनीय हो गयी है। सभी विकारों के मूल में होता है मोह। मोह वैसे तो इन्सान के जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया है परन्तु इसका असंतुलित होना अत्यन्त हानिकारक है। डॉ. पाठक धृतराष्ट्र का निदर्शन देकर आज के मानव की मोहात्मकता की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं–

"अन्धः केवलमासीन्नेत्राभावान्न हन्त धृतराष्ट्रः।
परमार्थतः सुतानां मोहेनान्धः स कोऽप्यासीत्।।"[66]

"धृतराष्ट्रस्यान्धत्वं नासीत् खेदावहं तथान्येषाम्।
मोहान्धत्वं खेदं यथा जनयति स्म हृदेशे।।"[67]

आज समाज गुणवान लोग नहीं दिखाई देते है, इस खेदात्मक संवेदना को व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

"येषां हृदयमिहासीत् सततं प्रीतं समुच्छलत्स्नेहम्।
नवनीतकोमलास्ते सन्तः क्व गताः क्वते सन्ति।।"[68]

निष्कर्षतः मानव और संवेदनाओं के बीच एक अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य को इसलिए मनुष्य कहा जाता हैं क्योंकि उसमें संवेदनाएँ जाग्रत रहती है। लेकिन आधुनिक मानव अनेक कारणों से अपने अंदर की संवेदनाओं का दमन कर रहा है। आधुनिक जीवन शैली, आधुनिक परिस्थिति, बदलता परिवेश मानव मन को संकुचित बना रहा है। इसी संवेदनहीनता को ध्यान में रखते हुए डॉ. जगन्नाथ पाठक ने अपने मुक्तकों में संवेदना के महत्त्व को उजागर करते हुए मनुष्य को पुनः उसी रूप में परिवर्तित करना चाहिते है, जो वह पहले से था। उनका उद्देश्य एक आदर्श मानव, आदर्श समाज का निर्माण करना ही है। वे चाहते है कि, जो आज का मानव देश की गौरवमयी संस्कृति को भूल विनाश के पथ पर अग्रसर हो रहा है, वह मानव पुनः अपनी संस्कृतिका सम्मान कर मानवता के पथ पर आगे बढ़े।

(ग) सामाजिक विसंगतियाँ

विश्व के प्रत्येक प्राणी का जीवन किसी न किसी प्रकार सामाजिकता के सूत्र में बंधा हुआ है। मानव भी ऐसा जीवधारी है, जो अपनी जिन्दगी को सामाजिकता की कसौटी पर कसकर ही आगे बढ़ता है।

आदिम युग से ही मानव ने अपने विवेक और नैसर्गिक क्रियाओं के द्वारा जीवन की सुगमता के लिए, मुसीबतों का सामना करने के लिए सामाजिक संगठन बना दिया था। वे समझ सके कि अकेले जीना मुश्किल है तो संघ के रूप में जीना अच्छा है। समाज के दर्पण में मनुष्य अपनी प्रतिमा देखता रहता है। मनुष्य का व्यक्त जीवन समाज के व्यवहार में दिखाई देता है। मनुष्य समाज में अपना अनुकूल या प्रतिकूल परिवर्तन स्वयं की प्रतिमा देखकर करता है। समाज का सृष्टिकर्ता व्यक्ति ही है। व्यक्ति और समाज का संबंध आपस में पूरक है, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं है।

सामाजिक अनुशासन में दरार आने से यानी व्यक्ति का कुंठित, स्वार्थ एवं निराशावादी मन सामाजिक मूल्यों को तोड़ने में उत्सुक हो जाता है तो सामाजिक विसंगतियों का उदय होता है। ऐसी कोई अवांछित तथा आपत्ति जनक दशा, स्थिति अथवा व्यवहार, जो किसी समाज के अधिसंख्यक व्यक्तियों द्वारा असहनीय एवं निंदनीय मानी जाती है, जिनसे समाज में कुरुपता आती है, सामाजिक विषमता कहलाती है।

समकालीन समाज अनेक विसंगतियों से त्रस्त है। जीव के हर क्षेत्र में कुप्रवृत्तियों, विद्रूपताओं के दर्शन होते है। डॉ. पाठक द्वारा रचित मुक्तक साहित्य में भी सामाजिक विसंगतियों के बारे में लिखा गया है। उनके साहित्य में रचित मुख्य सामाजिक विसंगतियाँ निम्न प्रकार है–

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था

एक व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक यानी सर्वांगीण विकास में शिक्षा महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा के द्वारा ही मानवता का विकास होता है। शिक्षा प्रकाश और शक्ति का ऐसा स्रोत है, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का निरंतर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके हमारे स्वभाव को परिवर्तित

करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती है। अतः मानव के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों पक्ष शैक्षिक अनुभवों पर निर्भर है।

आज व्यक्ति की स्वार्थपूर्ण मानसिकता तथा सामाजिक विद्रूपताओं का असर शिक्षा पर भी पड़ा है। जो शिक्षा कभी विनय की प्रतिमूर्ति थी, जो व्यक्ति का छिपा हुआ धन थी, जो व्यक्ति की सबसे अच्छी मित्र थी, आज वही शिक्षा समय के प्रभाव में फँसकर अपना स्तर खो रही है। आज व्यक्ति दूसरे का धन अर्जित करने के लिए शिक्षा का उपयोग कर रहा है–

"सा विद्या किमु विद्या परधनहरणाय याऽर्जिता भवति।
लोकं प्रवाहपतितं सम्प्रति को नाम विरुणद्ध।।"[69]

आज सरकार शिक्षा के नाम पर बहुमंजिला भवन खड़े कर देती है, किन्तु वहाँ समुचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पाती है। डॉ. पाठक का मानना है कि बड़े–बड़े भवन बनाने से शिक्षा प्राप्त नहीं होती, बल्कि शिक्षा के लिए तो एक जाग्रत गुरु आवश्यक है–

"विद्यालयः सुविस्तृतमेतदहो विश्वमेव मे मान्यम्।
स्वानुभव एव यस्मिन् गुरुरेको नाम जागर्ति।।"[70]

आज जनसंचार माध्यमों के बढ़ते प्रभाव के कारण युवक–युवतियाँ फैशन की चकाचौंध में फँस गये हैं। आज के युवक–युवतियाँ दिशाहीन होकर चार दिन की चाँदनी के लिए जिन्दगी बर्बाद कर लेते हैं। आज छात्र पढ़ाई में ध्यान न देकर अपनी कामवासना की मौज उठाने के लिए आवारा घूमते हैं। आज छात्र–छात्राएँ घर से पढ़ाई के निकलते हैं, लेकिन कक्षाओं में ना जाकर बाहर नाचने–गाने में समय व्यतीत करते हैं–

"शिक्षाया विधिरेष प्रवर्तमानोऽभिधेहि कोऽयमिह।
कक्षाभ्यो निर्गत्यच्छात्रा गायन्ति नृत्यन्ति।।"[71]

आज का व्यक्ति बिना मेहनत किये सब कुछ हांसिल करना चाहता है। आज के समय में सबके पास समय का अभाव है। विद्या से व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु आज छात्र का ध्यान ज्ञानार्जन करने की जगह मात्र डिग्री प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें शिक्षा के मर्म से कोई मतलब नहीं है। वे सिर्फ सतही ज्ञानार्जन में लगे हैं, जिसका कोई लाभ नहीं है–

"अन्तः प्रवेश इह चेद् विद्याब्धेर्योवदेव नहि सिध्येत्।
उपर्युपरि सन्तरणं कस्मै लाभाय तावत् स्यात्।।"[72]

विद्या से व्यक्ति में विनयता आती है, किन्तु आज का व्यक्ति विद्या पाकर उन्मत्त हो जाता है, उसमें घमण्ड आ जाता है। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है कि वस्तुतः यह विद्या नहीं है, विद्या तो उसी को कहा जाता है जो विनयता दे–

"उत्पादयेन्मदं यद् वैदुष्यं तन्नु वस्तुतो भारः।
विद्या सैव हि विद्या दद्याद् या सर्वथा विनयम्।।"[73]

पहले विद्या का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्त कर समाज को एक नवीन दिशा देना था, धनोपर्जान आनुषंगिक उद्देश्य था, किन्तु आज सब बदल गया है। आज वह धन प्राप्ति ही शिक्षा का मुख्य तथा एकमात्र उद्देश्य रह गया है–

"लक्ष्मीः पुराऽऽनुषङ्गिकमासीत् फलमेव येह विद्यायाः।
अतिशय्य साऽथ विद्यां सम्प्रति पार्यन्तिकं जाता।।"[74]

आज जो शिक्षा का मुख्य स्रोत वेद, दर्शन, पुराणादि है उनके प्रति किसी की जिज्ञासा नहीं है। आज ये सब विषय उपेक्षित हो रहे हैं–

"वेदानां स्वाध्यायोऽस्माकं देशे विराममाप्त इव।
क्वचिदपि वेदान्ता न श्रुतिगोचरतां न उपयान्ति।।"[75]

"मीमांसामध्येतुं प्रवर्तते नैव कोऽपि जिज्ञासुः।
नापि न्यायस्य कृते कोऽप्युत्सहते सुनिपुणोऽपि।।"[76]

"अष्टाध्यायी क्रन्दति रोदिति रात्रिन्दिवं महाभाष्यम्।
विरतः सम्प्रति विदुषां सूत्राण्याश्रित्य शास्त्रार्थः।।"[77]

"कस्यापि न जिज्ञासा कौटिल्स्यार्थशास्त्रविषयेऽपि।
भरतस्य नाट्यशास्त्रं नादयेतुं कश्चिदुत्सहते।।"[78]

"वाल्मीके रामायणमपि कश्चिच्चेष्टते न परिचेतुम्।
नैके सुमहद्भारतमवलोक्येवैह मूर्च्छन्ति।।"[79]

हर क्षेत्र की तरह आज राजनीति शिक्षा में भी अपना हस्तक्षेप कर रही है। राजनीति ने शिक्षा को भी व्यवसाय बना दिया है। पौराणिक काल से ही भारतीय संस्कृति शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान देती आ रही है। छात्रों ने गुरु आश्रम में रहकर उनकी सेवा करके विद्या प्राप्त की थी। आज के बदलते हुए संदर्भ में शिक्षा भी बदल गयी है। आज शिक्षा रुपया देकर बाजार से खरीदने वाली चीज़ हो गयी है। आज विद्या केन्द्र व्यापार केन्द्र बन गये हैं। विद्या क्षेत्र में व्यापार के प्रवेश करने से कवि मन बहुत आहत है–

"कामं प्रवर्ततां रे विपणिषु वाणिज्यमत्र को दोषः।
विद्याक्षेत्रे वणिजां प्रवेश दूत खिद्यते चेतः।।"[80]

कवि पाठक कहते हैं कि जिस प्रकार गङ्गा तथा यमुना मलिनता को प्राप्त हो गयी है, उसी प्रकार सरस्वती की स्थिति भी आज बहुत दयनीय हो गयी है–

"गङ्गा मलिनीभूता प्राप्ता मालिन्यमिह च यमुनाऽपि।
का नु सरस्वत्याः स्याद् दशा न जाने दिनेष्वेषु।।"[81]

भारत में ऐसा जमाना था जिसमें गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया गया था। गुरु–शिष्य का संबंध पवित्र एवं मजबूत था। शिष्य गुरुकुल में रहकर अध्ययन करता था तथा गुरु पितावत् छात्र का ध्यान रखता था। आज गुरु शिष्य परम्परा समाप्त प्रायः है। आज शिक्षा में सर्वत्र पैसे का बोलबाला है। आज गुरु विक्रेता तथा छात्र क्रेता है–

"विद्याक्षेत्रे व्याप्तं वाणिज्यं दृश्यते यदेतर्हि।
विक्रेतारो गुरवः क्रेतारः शिष्यपदवाच्या।।"[82]

इस प्रकार वर्तमान में अभी देश में जो भी शिक्षा व्यवस्था चल रही है, वह मानकों के हिसाब से भारतीय नीति के अनुरूप नहीं है। वास्तव में शिक्षा का मूल यह होना चाहिए कि उसमें उस देश का मूल संस्कार परिलक्षित हो। आज शिक्षा के नाम पर जो फैलाया जा रहा है वह शिक्षा का कंकाल मात्र है। शिक्षा का जो मूल प्राण है, मूल सत्व है 'ज्ञानार्जन' उसे न तो पहचाना जा रहा है न फैलाया जा रहा है, यदि गहराई से देखा जाये तो शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य धनार्जन रह गया है–

"अर्थकरीषु प्रथमं पुत्रक! विद्यासु सम्प्रवर्तस्व।
तत्पश्चात् कुरु पाठं गीतारामायणादीनाम्।।"[83]

आज शिक्षा जैसे पवित्र शब्द को व्यवसाय मात्र बना दिया गया है।

समाज में विघटन

स्वातन्त्र्योत्तर कालीन मोहभंग, विभाजन, टूटते हुए जीवन मूल्य, भ्रष्टाचार, असन्तोष, आक्रोश, अनास्था आदि ने समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न की है। स्वतंत्रता के पश्चात् समाज तथा परिवार में विघटन हुआ है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समाज में अलगाव की स्थिति को उत्पन्न कर दिया। आज जो क्रोध का युग है उसने समाज में असुरक्षा तथा अलगाव को जन्म दिया है। डॉ. पाठक कहते हैं कि हम सब एक ही ईश्वर की स्थान है, फिर भी कलह करके समाज में अलगाव की स्थिति को उत्पन्न कर रहे हैं–

"सर्वे वयं नु पुत्रा एकस्यैवेश्वरस्य समदृष्टेः।
सर्वेऽपि बुद्धिमन्तस्तथापि कलहे प्रवृत्ताः स्मः।।"[84]

प्राचीनकाल से ही भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा चली आ रही है। संयुक्त परिवार में सबके लिए समान नियम होते हैं। सामाजिक परिवर्तन, भौतिक संस्कृति और व्यक्तिवादिता के कारण परिवार बिखर रहा है। आज मनुष्य प्रेम, त्याग आदि की भावनाओं से रहित हो गया है। प्राचीन काल से हमारी संस्कृति का परिचायक रही 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना आज समाप्त हो गयी है। आज सबको सिर्फ अपने आप से मतलब रह गया है–

"प्रज्वाल्यन्ते स्म पुरा स्निग्धा दीपाः कुटीरके यस्मिन्।
स्नेहविरहितैस्तस्मिन् दीपैरभिनीयते शोभा।।"[85]

टूटन और बिखराव तो आज सम्पूर्ण विश्व के परिवेश में है। हम जिधर दृष्टि डालते हैं, उधर भीतर या बाहर अलगाव ही अलगाव है। आज व्यक्ति अपने आप तक सीमित रह गया है, उसे किसी से भी कोई मतलब नहीं है। आज की भौतिकतावादी संस्कृति में व्यक्ति अपने पड़ौस में रहने वाले व्यक्ति को भी नहीं जानता है। आज का व्यक्ति इस हद तक स्वार्थी हो गया है कि उसे पड़ौसी के सुख–दुःख से कोई मतलब

नहीं है, उसे तो सिर्फ अपने सुख की चिन्ता है। आज यदि पड़ौसी का मकान जल रहा हो तो व्यक्ति उसकी सहायता करने की जगह अपने मोबाईल से उसका चलचित्र बना वाट्सएप पर डालने में लगा है–

"प्रतिवेशिषु विश्वासो ह्यसमानः सम्प्रतीयते लोके।
दृश्यमिवालोकन्ते ज्वलति प्रतिवेशिनः सदने।।"[86]

वसुधैवकुटुम्बकम् के महत्त्व को समझते हुए कवि मानव को निज स्वार्थ छोड़कर सभी को अपना समझने के लिए अभिप्रेरित करता है। वे मानवता के कल्याण के लिए निरन्तर चिन्तन करते हैं। जैसा कि उन्होंने कहा है–

"हानिर्यथा न चिन्त्या भग्ने विधिना कुटीर के क्षुद्रे।
जाता कुटीरकं मे सम्प्रति वसुधैव सम्पूर्णा।।"[87]

वे कहते हैं कि भारत चीन इत्यादि विभाग राजनीति के विषय है, जिसके सम्पूर्ण वसुधा ही अपना घर है उसके लिए कोई विभाग नहीं, उसके लिए तो सब एक है–

"भारतमिति चीनमिति प्रविभागो राजनीतिविषयोऽहम्।
वसुधैव स्वकुटुम्बं यस्य कृते तस्य के भागाः।।"[88]

इस प्रकार व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से देश और देश से दुनिया सब मिलकर एक परिवार है। यही सोच अगर सब लेकर चले तो समाज व देश में कभी विघटन, लड़ाई जैसी स्थिति उत्पन्न ही नहीं होगी।

वर्ण–संघर्ष

सदियों से भारतीय समाज की रीढ़ है वर्ण व्यवस्था। सम्भवतः आरम्भ में समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए इसे आदर्श के रूप में देखा। किन्तु आज इसी वर्ण–व्यवस्था ने जातिवाद का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। आज सम्पूर्ण मानव समाज जाति व वर्गभेद की विभिन्न दीवारों से बँटा हुआ है। जाति व्यवस्था वर्ण व्यवस्था का ही विकृत स्वरूप है। यदि मानव समाज जाति व वर्ग–भेद की जंजीरों से मुक्त हो जाए तो मानव सुखपूर्वक अपना जीवन जी सकता हैं। यथा–

"जातिषु वर्गेष्वेवं विभक्त इह मानवो विभागेषु।
न स्युर्यदि न विभागास्तर्हि सुखं मानवो जीवेत्।।"[89]

आज भी समाज में अत्यधिक विषमता है, समाज के तथाकथित ठेकेदार है जो जैसा चाहते हैं, वैसा ही समाज का निर्माण करते हैं। समाज पर जब ऐसे लोग अपना आधिपत्य रखेंगे तो समाज की स्थिति विचारणीय ही होगी–

"यस्मिन् हन्त समाजे प्रतिष्ठिता दस्यवो नु जायन्ते।
तस्य समाजस्य परं विचारणीय प्रतिष्ठाऽपि।।"[90]

वर्ण–व्यवस्था से संचालित भारतीय हिन्दू समाज में दलित को सबसे नीच मानते थे। चारों वर्णों में शूद्र सबसे नीचे माने गये। उनका मुख्य धर्म द्विजों की सेवा करना था। प्रत्येक समाज में निम्न कोटि के कार्य संचालन के लिए एक वर्ग रहा है जिसका कार्य उच्च वर्ग की सेवा करना है। यथा–

"शूद्रा इत्युक्ता वयमिह द्विजानां स्थिताश्च सेवायाम्।
वयमीश्वरस्य राज्ये परिचरणायैव यज्जनिताः।।"[91]

दलित वर्ग के साथ सदियों से निर्मम, निष्ठुर और अमानवीय व्यवहार किया गया है। भारत का दलित पूँजीपतियों द्वारा शोषित है और सवर्णों द्वारा विभाजित एवं शासित है। कवि का मानना है कि शूद्र कुल में जन्म लेना पूर्व जन्म में कृत पापों का परिपाक है–

"पूर्वस्मिन्नस्माभिः कृतस्य पापस्य कोऽपि परिपाकः।
अस्मिञ्जन्मनि यदिदं शूद्राणां न कुले जन्म।।"[92]

डॉ. पाठक ने इस वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है। उनका मानना है कि मनुष्य का एकमात्र धर्म मानवता है तथा उसे इससे कभी भी विरत नहीं होना चाहिए। जब मानव जात्यादि से ऊपर उठकर अपने धर्म को पहचानेगा तभी देश की तथा समाज की उन्नति होगी। यथा–

"जातिस्वभावदृष्ट्या सत्यपि भेदे मनुष्यमात्रगते।
मानवतेति स धर्मः सर्वेष्वेको हि जागर्ति।।"[93]

कवि का मानना है कि वर्ण–संघर्ष को समाप्त करने में मानवीय श्रम की महत्ता है मानव अपनी मेहनत, लगन व श्रम के आधार पर ईश्वरीय सौन्दर्य व सर्जना को भी चुनौति दे सकता है। कवि ने मानव श्रम को विशेष महत्त्व देकर समाज को दिशा निर्देश दिया है कि मनुष्य ईश्वर की ही प्रतिकृति है और उसके द्वारा निर्मित हर वस्तु सौन्दर्यमयी हो सकती है। प्राकारान्तर से कवि कहना चाहता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि तथा श्रम के द्वारा वर्ण–व्यवस्था से आगे बढ़कर जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर सुन्दर तथा स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। वह चाहें तो समाज को जातिवाद जैसे बंधनों से मुक्त करवाकर सामाजिक स्थिति तथा परिवेश को पूर्णतः परिवर्तित कर सकता है। यथा–

"करनिर्मितस्य विधिना सौन्दर्यं मानवस्य किं वाच्यम्।
मानवकरनिर्मितमपि सौन्दर्यं किमपि न न्यूनम्।।"[94]

नारी–समस्या

भारत की अर्द्वनारीश्वर परिकल्पना के अनुसार सृष्टिकर्ता ने अपने शरीर के दो हिस्सों को स्त्री और पुरुष की संज्ञा दी थी। स्त्री और पुरुष समान और परस्पर पूरक है। नर–नारी संबंधों के मलभूत तत्त्व के तहत स्त्री के बिना पुरुष या पुरुष के बिना स्त्री का अस्तित्व अधूरा है। मानव जाति की सभ्यता, संस्कृति एवं सौन्दर्य के विकास की प्रेरणा भी नारी ने दी है। सृष्टि के प्रारंभ में ही नारी को पूजनीय कथा सम्मानीय हैसियत दी गयी थी। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः[95] में नारी का भव्य स्वरूप द्रष्टव्य है। धर्मशास्त्र में नारी मानवता के उत्कर्ष और स्वच्छ जीवन प्रवाह का परिचालक है। अर्द्धांगिनी के पद पर कार्यरत नारी अपनी जिम्मेदारी एवं सहधर्मिणी की भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह करती है। नारी की सृजनात्मक शक्ति से ही मध्यकाल में गृहसंस्था की नींव डाली गयी। संसार का सारा चक्र उसी के इर्द–गिर्द घूमता नजर आता है। कभी जन्मदात्री, पोषणकर्त्ता माता के रूप में, तो कभी स्नेह की अजस्त्र धारावली भगिनी के रूप में तो कभी अखण्ड सेवाव्रती के रूप में तो कभी निस्वार्थ प्रेम करने वाली सखी, सेविका के रूप में तो कभी पत्नी के रूप में समान रूप से प्रेम करने वाली अद्वितीय, अप्रतिम निर्मात्री मानी जाती है। परिवार का समारंभ नर–नारी के प्रेमपूर्ण समन्वय से हुआ। नारी प्रेम, करुणा एवं आत्मसमर्पण का मूर्तरूप है। समाज की स्थिरता, सुरक्षा, शांति आदि बनाये रखने में पुरुष

के साथ स्त्री की मौजूदगी अनिवार्य है। नारी और पुरुष का व्यवहारमूलक, भावनामूलक और सम्बन्धमूलक पारस्परिकता समाज को दृढ़, स्वस्थ, संतुलित एवं कल्याणकारी बनाये रखता है। जहाँ कुटुम्ब में, समाज में नारी के धर्म और कर्मों का सम्मान पुरुष के द्वारा और पुरुषों के दायित्वों और प्रयत्नों का अंगीकार नारी के द्वारा हो तो वह श्रेष्ठ समाज कहलाता है। स्वामी विवेकानंद का कथन है– "यह अन्याय है। पुरुष के समान स्त्री भी साहसी है। नारी जिस प्रकार क्षमा, सहिष्णुता और प्रेम के द्वारा बच्चे की देखभाल करती है, कोई पुरुष ऐसा नहीं कर सकता। यदि एक में कुछ करने की क्षमता है तो दूसरे में सहने की। वास्तव में सारा विश्व एक पूर्णत राजे है।"[96]

यदि हम भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करे तो हम देखते हैं कि भारतीय नारी ने परिवर्तनशील सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य पर अनेक उत्थान पतन देखें हैं। कभी उसे लक्ष्मी, देवी जैसे शब्दों द्वारा सम्मानित कर कहा गया तो कभी उसे उस सीमा तक नकारते हुए कुलक्षणा की स्थिति में ला दिया गया। नारी अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न समस्याओं का सामना कर रही है।

आज नारी पुरुष के साथ कदम मिलाकर हर एक क्षेत्र में अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर रही है। उन्होंने जीवन के लगभग हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। डॉ. पाठक कहते हैं कि जब नारी पुरुष के साथ प्रगति के पथ पर कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है तो से अबला कहना न्यायोचित नहीं है–

"पुरुषाः स्त्रियः समानाः सत्युत्साहे तयोः समा प्रगतिः।
अबलेति स्त्रीसंज्ञा न न्याय्या क्वचन नारीषु।।"[97]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पुरुषों के समक्ष बराबरी से आने का हौंसला नारी में हुआ लेकिन नारी मुक्ति का आंदोलन आज भी जारी है। नारी की स्वयं की विशिष्टता एवं उसका समाज में स्थानहीन हो रहा है। नारी के अधिकारों का हनन करते हुए उसे पुरुष का आश्रित बना दिया गया। पुरुष ने स्वयं का वर्चस्व बनाए रखने के लिए ग्रंथों व व्याख्यानों के माध्यम से नारी को अनुगामिनी घोषित कर दिया। डॉ. पाठक कहते हैं कि उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होने के बाद भी यदि नारी को अगला कहा जाता है तो देश के स्वतन्त्र होने का क्या लाभ है, यथोक्तं–

"अबलेत्याख्यां भजते नारी राष्ट्रस्य यावदेकाऽपि।

तावत् कोऽपि न लाभो मन्ये स्वतन्त्रतालाभस्य।।"[98]

प्राचीनकाल में भारतीय नारी को विशिष्ट सम्मान और पूजनीय दृष्टि से देखा जाता था। सीता, सती–सावित्री, अनुसूया, गायत्री आदि अनगिनत नारियों ने अपना विशिष्ट स्थान सिद्ध किया है। तत्कालीन समाज में किसी भी विशिष्ट कार्य के संपादन में नारी की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण समझी जाती थी। वैदिक युग में नारियों की गतिशीलता पर कोई रोक नहीं थी। उसे पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। वैदिक युग भारतीय समाज का स्वर्णिम युग था। उत्तर वैदिक युग में नारी की स्थिति वैदिक युग जैसी नहीं रही। महाभारत काल में भी स्त्रियों के अधिकारों का हनन हुआ। आज भी नारियों का शोषण ही हो रहा है। डॉ. पाठक ने कहा है–

"इह रुदितं सीताभिः पाञ्चालीभिश्च पीडया रुदितम्।

अद्यापि नारि नितरां त्वदञ्चलं क्लिन्नमेवास्ति।।"[99]

आज नारी घर की चार दीवारी में कैद हो गयी है। नारी किसी भी क्षेत्र में समस्या से मुक्त नहीं है। अज्ञान की समस्या के कारण नारी का जीवन बर्बाद होता जा रहा है। नारी का शोषण किया जा रहा है। बढ़ती कुण्ठा के कारण आज नारी मनोरुग्णता की समस्या से ग्रसित हो गयी है। नारी का जीवन भ्रम, भय, अंधविश्वास और अज्ञान से ग्रस्त है। नारी अपने अधिकार से भी वंचित है। उसे नाम मात्र स्वतंत्रता दी गयी है। आज समाज व परिवार में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की है। पहले भारतीय समाज–जीवन में विवाह को पवित्र संस्कार के रूप में मान्यता दी गयी थी लेकिन विषम सामाजिक परिवेश व प्रथा–परंपराओं के कारण दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों का जन्म या उदय हुआ। वस्तुतः इस प्रथा को आज की बढ़ती हुई भौतिकतावादी दृष्टि ने और भी प्रोत्साहन प्रदान किया है। इस सामाजिक कलंक के कारण पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों में दरारें पड़ी हैं। सामाजिक और संवैधानिक रूप से दहेज देने या लेने की प्रथा गलत है। फिर भी बहुत अधिक लोग इसका पल्ला जोर से पकड़ते हैं। उनके लिए लड़की अच्छी या कुरुप हो, यह तो चिंता की बात नहीं बल्कि अधिक दहेज पाने की चिन्ता है।

जब लड़के के परिवार वालों को अपनी इच्छानुसार दहेज नहीं मिलता तो वे लड़की पर अन्याय या अत्याचार करते हैं। गरीब घराने के कम पढ़े–लिखे लड़कों को भी शादी के लिए मोटी रकम चाहिए। प्राचीन काल में दहेज की समस्या नहीं थी। लोग कन्या का विवाह आभूषणों से अलंकृत करके करते थे। आज तो दहेज एक मध्यवर्गीय समाज की घृणित बीमारी है। आज विवाह के लिए दहेज आवश्यक हो गया है। भारतीय समाज आज उपभोक्तावादी बन गया है। आज तो मानवता की जगह कमजोर रीढ़ विहीन भौतिक परिस्थिति ने ले ली। इसी कारण से बहुत अधिक बहुएँ स्वयं जल रही है या दहेज की लालच में फँस गए ससुराल वाले उन्हें जला रहे है। जैसा कि डॉ. पाठक ने कहा है–

"शुष्यत्यङ्गणतुलसी ग्लानिं सान्ध्यश्च दीप आपन्नः।

हेतुभिरज्ञातैरिह नवा वधूः स्वैर्जनैर्दग्धा।।"[100]

दहेज प्रथा के कारण ही अनेक समस्याएँ यथा वेश्या समाज, अनमेल विवाह आदि फैल रहे हैं। जब तक दहेज की कुरीति समाज का दामन नहीं छोड़ेगी तब तक नारी का विकास असंभव है।

नर एवं नारी दोनों ही समाज का आवश्यक अंग है। लेकिन हमारे समाज में नारी की स्थिति दयनीय तथा हीन रही है। पुरुषों ने नारी के साथ हमेशा ही छल और विश्वासघात कर उसका शोषण किया है। पुरुष ने अनेक बंधनों में बाँधकर उसका शोषण किया है। स्त्री प्राचीनकाल से ही अग्निपरीक्षा देती आयी है तथा आज भी दे रही है–

"काचिन्नाद्यप्रभृति स्त्री जीवन्त्यग्निसात् क्रियेतेह।

कस्याश्चित सीताया नाग्निपरीक्षा प्रवर्त्येत।।"[101]

नारी साक्षात् मातृत्व तथा करुणा की मूर्ति हैं लेकिन आज उसके मातृत्व के अधिकार का ही हनन हो रहा है, यथोक्तं–

"स्निग्धच्छायं तरुतलमासीद् विश्रान्तिदं नु यदिह पुरा।

तदिदानीं मातृत्वं वात्याव्याकीर्णमिव पत्रम्।।"[102]

अपने घरेलू वातावरण में चार दीवारों के भीतर विद्रोह कर पाने में अनेक नारियाँ असमर्थ है। आज नारी जीवन संघर्षों को झेलते–झेलते थक गयी है। नारियों का अन्तर्मन शान्त होता है, किन्तु समाज के अत्याचारों ने उसे मुखरित होने पर विवश कर दिया है। नारी अबला नहीं है, उसे अबला समाज के ठेकेदारों ने बनाया है। नारी ही शक्ति है स्वयं की ही नहीं नर की भी। नारी शक्ति का स्रोत है, जिसे पुरुष वर्ग पहचानने में असमर्थ है। नारी तब तक ही अबला है जब तक वह अपनी सारी शक्तियों को सहेजती नहीं, जिस दिन नारी ने अपनी शक्ति का उपयोग किया पुरुष का अस्तित्व मूकीभूत हो जाएगा–

"वर्षाणां निष्पीडितमिदं शतेभ्यः कदाचिदिह नारि!
विस्फोटं यदि कुर्यान्मूकीभूतं त्वदस्तित्वम्।।"[103]

भारत में शताब्दियों की पराधीनता के कारण महिलाएँ अभी तक समाज में पूरी तरह वह स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है जो उन्हें मिलना चाहिए। सदियों से समय की धार पर चलती हुई नारी अनेक विडम्बनाओं और विसंगतियों के बीच जीती रही है। वैदिक काल में अपनी विद्वता के लिए सम्मान पाने वाली नारी मुगलकाल में रनिवासों की शोभा बनकर रह गयी। पुरुष प्रधान समाज के द्वारा चुप रहकर सब कुछ सहने को विवशनारी आज अपना अस्तित्व खोजने में लग गयी है–

"मूकीभूता सर्वं सोढुं विवशीकृता त्वया नारी।
सम्प्रति किञ्चिद् वक्तुं प्रचेषमानाऽर्हसिश्रोतुम्।।"[104]

डॉ. पाठक ने नारी समस्याओं का वर्णन करने के साथ–साथ नारी के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। नारी ही पुरुष को कुछ करने लायक बनाती है। नारी का महत्त्व हमारे समाज में सबसे ज्यादा है, उसके बिना पुरुष की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नारी दाता से भी बढ़कर है, जो देने के बदले लेने की चाह नहीं रखती, त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति है, उसी के कारण पुरुष का पौरुषत्व है–

"पुरुषस्य पौरुषं भुवि विलसति मन्ये नु तावदिह यावत्।
यष्टिः कनकमीयं परितस्तं नृत्यति स्त्रीति।।"[105]

उसके जीवन में पग–पग पर संघर्ष है, फिर भी वह स्नेह की ही वर्षा करती है–

"सम्पूर्णमेव जीवनमातप इति येन किञ्चिदनुभूतम्।

अनुभूतमेव तेन स्निग्धा मनोरमा सुखयति स्त्रीति।।"[106]

त्याग, तपस्या और बलिदान स्त्री सहज भावनाएँ है। माँ के रूप में नारी के त्याग और बलिदान की सीमा आँकी भी नहीं जा सकती। अपनी संतान को पालन–पोषण करने में वह आग का दरिया तक पार कर सकती है। स्नेहमयी बहन के रूप में वह भाई के मंगलमय जीवन की कामना करती है। आदर्श पत्नी के रूप में वह परामर्शदात्री है। नारी विधाता की सर्वोत्कृष्ट कृति है, वह केवल रमणी रूप नहीं है, अपितु सम्पूर्णतया सम्मान्या है, महारत्न है–

"भद्रं तवास्तु भद्रं धातस्त्व भद्रमस्तु सर्वत्र।

यदिह त्वयोदपादि स्त्रीति महार्हं महारत्नम्।।"[107]

"सम्मान्या भुवि मन्ये रमणीरूपेण केवलं नैषा।

स्त्री तु सदा सम्मान्या सर्वेणापीह रूपेण।।"[108]

नारी ही आज के भोक्तावादी युग में संत्रस्त पुरुष के लिए प्रेम की मूर्ति है। वही उसे जीवन की समस्त परेशानियों से दूर कर उसी प्रकार शान्ति प्रदान करती है, जिस प्रकार आतप से आकुल व्यक्ति को वृक्ष की छाया–

"आतपतप्तायां भुवि सकलेष्वेव प्रधावमानेषु।

क्षणमेकं विश्रामः स्त्रीति स्निग्धा तरुच्छाया।।"[109]

आज समय में परिवर्तन आ रहा है। महिलाओं के हित में बने कानूनों, न्यायिक अधिकारों, सामाजिक संस्थाओं के प्रयास से नारी की स्थिति सुधरने लगी है। किंतु जब तक नारी स्वयं अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए सजग नहीं होगी तब तक सब प्रयास विफल है। जब नारी पुनः पुरुष के समरूप अधिकार पाकर उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलेगी तब राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो पाएगा।

आर्थिक–वैषम्य

मानव समाज की आर्थिक विषमतायें ही वह मर्ज़ है, जिसके कारण मानव–समाज में दूसरी विषमतायें और असह्य वेदनाएँ देखी जाती हैं। आर्थिक विषमता मानव–जाति की सबसे बड़ी समस्या है। वास्तव में समाज की सभी समस्याओं की जड़ तो अर्थ ही है। अर्थ ने समाज को दो भागों में बाँट दिया है यानी अमीर और गरीब। गरीब लोग आर्थिक अभाव के कारण जीवन का अर्थ खोजने में भी पराजित हो जाते हैं। एक तरफ समाज में ऊँचे–ऊँचे भवन है जिनमें रहने वाला कोई नहीं है तो दूसरी तरफ लोग फुटपाथ पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कवि कहता है कि–

"गगनस्पृशामिदानीं भवनानां मध्यतो विलुप्तमहो
इह मामकीनमेकं कुटीरकं वदत्त कुत्रास्ति।।"[110]

आज बढ़ते पूंजीवाद ने गरीब की स्थिति ओर भी दयनीय कर दी है। रात–दिन मेहनत करने पर भी उसे दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होती रोटी, कपड़ा और मकान जो कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ है, ये भी उसे नहीं मिल पा रहे हैं। आज भी गरीब कहीं भूख से लड़ता, तो कहीं ठण्ड से ठिठुरता दिखाई देता है। आज किसी के पास तो इतने वस्त्र है कि उसे एक वस्त्र दुबारा पहनने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, वहीं किसी के पास पहनने को समुचित वस्त्र भी नहीं है। उसे वस्त्राभाव में जानवरों की तरह सर्दी की रातों में ठिठुरते हुए फुटपाथ पर रात बितानी पड़ती है। कवि इसी दुरावस्था की ओर इशारा करते हुए कहता है–

"सन्धारयन्ति केचिद् दिने दिने नूतनानि वसांसि।
तिष्ठन्ति चार्धनग्ना वसनाभावाच्च केचिदिह।।"[111]

आज सबको संवैधानिक अधिकार है कि उसके साथ समानता का व्यवहार हो। किसी मनुष्य में बौद्धिक स्तर पर व शारीरिक श्रम के स्तर पर अन्तर हो सकता है, किन्तु इस आधार पर कोई छोटा–बड़ा नहीं होता। अतः मनुष्य–मनुष्य के बीच अन्तर नहीं समझना चाहिए–

"जीवितुमिहाधिकारः प्रत्येकं मानवस्य सम एव।
तत्तु गुणित्वं तस्य श्रमसाध्यं बुद्धिसाध्यञ्च।।"[112]

निष्कर्षतः डॉ. पाठक ने अपने मुक्तक साहित्य में वर्तमान समसामयिक परिस्थितियों को उजागर कर उन्हें दूर करने का जो प्रयास किया है, वह श्लाघनीय है। वे यथार्थवाद, जाति–भेद, वर्तमान राजनीति, आतङ्कवाद, हिंसा, नारी समस्या, आर्थिक विषमता का वर्णन कर पाठकों के सामने तरह–तरह के प्रश्न उठाते हैं। उनका मानना है कि मानवता तथा प्रेम के बल पर सभी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। डॉ. पाठक जीवन के यथार्थ के साथ समकालीन जीवन की सच्चाईयों को खोजने वाला रचनाकार है। समसामयिक समस्याओं के सहज परिवेशों की धुरी से उनके मुक्तकों में अतीत और भविष्य की सनसनी के नये प्रतिमान दिखायी पड़ते हैं। सभी मुक्तकों में समसामयिक विद्रूपताओं एवं विपन्नताओं का जो आलेखन है, वे समाज का अभिन्न अंग है। इस प्रकार भारतीय समाज जिन समस्याओं को झेल रहा है, डॉ. पाठक के मुक्तक उनका दस्तावेज ही है।

(घ) प्रेम–प्रणय

जो प्रीति से तृप्ति दे–वही प्रेम है। प्रेम ही जीवन की चरम उपलब्धि है। प्रेम मानव हृदय की शाश्वत अनुभूति होती है। मानव मात्र को परस्पर एक सूत्र में बाँधने वाली भावना प्रेम है। प्रेम सृष्टि की मूल प्रेरणा और जगत् की प्रथम संचालक शक्ति है। चर–अचर सभी प्रेम के कारण युग–युगान्तर तक अजर–अमर रहते हैं। डॉ. पाठक की कृतियों में प्रेम, शृङ्गार, सौन्दर्य तथा जीवन की कोमल अनुभूतियों का सुन्दर चित्रण है। डॉ. जगदीश प्रसाद लिखते हैं कि "यह देखकर सन्तोष होता है कि 'सहस्त्रारामम्' का कवि जीवन को पूर्णता में देखता है। उसकी दृष्टि वर्तमान जीवन की कटुता तक सीमित नहीं, यह श्रृंगार के रस क्षेत्र में भी प्रवेश करती है। प्रेम और सौन्दर्य की स्रोतस्विनी जीवन के मरुस्थल में सूखती नहीं, इसे आर्द्र और स्निग्ध बनाये रखती है। 'सहस्त्रारामम्' के अनेक मुक्तक प्रेम, सौन्दर्य और श्रृंगार से सम्बद्ध है। इन चित्रों में स्थूल ऐन्द्रियता नहीं, मुक्त शिल्प के अनुरूप सूक्ष्म ऐन्द्रिय स्पर्श है, जो देर तक हृदय को झंकृत करता है। ये

चित्र अभिधेय नहीं व्यंग्य है। अतः देर तक प्रभावित करते हैं। इनमें एक ऐसा हल्का श्रृंगारिक स्पर्श है कि चित्त चमत्कृत हो उठता है, उदाहरणार्थ–

"न श्रूयते पदध्वनिरपि न श्रुतिमेति नूपुरक्वणितम्।
अन्तस्तथापि किञ्चन्नृत्यदिवाभाति मे सततम्।।"

पद–ध्वनि सुनाई नहीं पड़ रही, नूपुर–क्वणित भी श्रुतिगत नहीं, फिर भी अन्तस्तल में तुम्हारा नृत्य चलता रहता है।"[113]

कवि कहता है कि प्रेम व सौन्दर्य को अनुभूत करने के लिए मन की आँखें खोलनी पड़ती है क्योकि स्थूल दृष्टि द्वारा इसका निरीक्षण कर पाना सम्भव नहीं है। यथा–

"सौन्दर्यस्य दृशैव क्वचिन्नु रे दर्शनं न भवतीह।
आन्तरिकी काऽप्येका तस्मिननुपयुज्यते दृगिव।।"[114]

प्रेम तथा सौन्दर्य कल्पना के सहयोग से मनुष्य द्वारा सृजित और अनुभव की जाने वाली भावना है। प्रेम तथा सौन्दर्य व्यक्तिनिष्ठ गुण है। सौन्दर्य प्रेम का ही अनिवार्य अंग है जिस प्रकार सौन्दर्य से प्रेम उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रेम से सौन्दर्य भी। दोनों प्रायः अन्योन्याश्रित है। प्रेम से ही दृष्टि कण–कण में असीम सौन्दर्य देखने में समर्थ होती है। सौन्दर्य को आत्माभिव्यक्ति के लिए किसी बाह्यालंकार की अपेक्षा नहीं होती। वह तो प्रेम से प्रकाशित होता है। सौन्दर्य अलंकारों का भी अलंकार है। सौन्दर्य ही रागोत्पति का मूल कारण है। सौन्दर्य से ही आकर्षण उत्पन्न होता है।

यथा –

"सौन्दर्यमेव हेतू रागोत्पत्तौ मतः सतां लोके।
आकर्षणमन्योऽन्यं तन्मूलं वर्धते किञ्चित्।।"[115]

डॉ. पाठक के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य की रागात्मक अनुभूतियों का वर्णन यत्र–तत्र विकीर्ण है। डॉ. पाठक के काव्य में प्रेम–सौन्दर्य साधना का विकास 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' के स्वच्छ रूप में दृष्टिगोचर है। उनके अनुसार प्रेम एवं सौन्दर्य की सच्चिदानन्द के रूप में दृष्टिगोचर है। उनके अनुसार प्रेम एवं सौन्दर्य की सच्चिदानन्द के रूप की

अभिव्यक्ति सौन्दर्य है। समस्त सृष्टि के मूल में सौन्दर्य–भावना निहित है। कवि कहता है कि सौन्दर्य को परिभाषित करने में कोई समर्थ नहीं है–

"सौन्दर्यस्याकलने द्रष्टॄणां दृष्टिभेद उल्लसति।
इदमित्थमिति न शक्ता वक्तुं सौन्दर्यशास्त्रज्ञाः।।"[116]

कापिशायनी के चषक तो प्रेम तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण है। ब्रजमोहन चतुर्वेदी ने कहा है– "ये चषक प्रायः प्रिया के प्रति निवेदित है, जिनमें कहीं कोई उससे आग्रह है तो कहीं उपालम्भ या शिकायत। कहीं उसके पास पहुँचने की झिझक प्रकट होती है तो कहीं उसके साथ अद्वैत–भाव की अभिव्यक्ति। मधुपायी कभी मधुपान की आशा से ही समुल्लसित है तो कभी निराश होकर अपने भाग्य को कोसता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है मधु क्या है, कवि ने किस मधु का निरूपण इस कापिशायनी में किया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, सौन्दर्य ही वह मधु है, जिसकी अनुभूति नाना स्वरूपों में होती है तथा उसी अनुभूति से अनुप्राणित होकर उसको पुनः पाने के लिए जो ललक है उसकी अभिव्यक्ति इन चषकों में सुतरा हुई है।"[117]

डॉ. पाठक प्रेम तथा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सिद्धहस्त है। कवि प्रेम तथा सौन्दर्य को अद्वैत भाव से प्रस्फुरित मानते हुए रूप की स्वतन्त्रता का निराकरण अनुपयुक्त ठहराते हुए कहते हैं–

"तव वा मम वाऽस्ति जीवनेनहि काचित् परमार्थतो भिदा।
अयि रूपिणि! रूपमेव ते कुरुते दर्शक दृश्यभावनाम्।।"[118]

इसी तरह कवि रूप की प्रशंसा करते हुए कहता है कि इस संसार में सब दृश्य मात्र है, वस्तुतः सौन्दर्य तो तुम्हारा रूप ही है, यथा–

"सकलं खलु दृश्यमात्रकं
किमरूपस्य तवैव रूपकम्।
रमणीयतयाऽस्य कल्प्यते
त्वमपि स्या रमणीय एव रे।।"[119]

परन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण स्वरूप कवि को कहीं भी निश्चल प्रेम नज़र नहीं आता। आज प्रेम व्यापार के समान हो गया है। सर्वत्र स्नेह, प्रेम, दया, करुणा आदि भावों का अभाव हो रहा है। स्नेह तथा सौन्दर्य के मल स्त्रोत ही समाप्त हो गये हैं। कवि जिधर भी देखता है उसे संवेदना शून्यता दिखाई देती है, यथा–

"यमहं पश्यामि घरं स एव रिक्तः प्रतीतिमायाति।
अत्रस्याः किमु सर्वाः शुष्काः सरितः सरस्यश्च।।"[120]

निष्कर्षतः जीवन की कई उलझनों को प्रेम चुटकी में सुलझा सकता है। शब्दों के अपने मायने है और अनुभूति के अपने, शब्द अकेले कुछ नहीं कर सकते है जब तक कि अनुभूति ना ही जाए किन्तु प्रेम के शब्दों से तो डॉ. पाठक का साहित्य भरा पड़ा है जरुरत है तो उसकी अनुभूति की। प्रेम ही मनुष्य को नवीन उत्साह तथा आशा से भर सकता है।

(2) सांस्कृतिक अध्ययन

विषय–प्रवेश

संस्कृति बहुत प्राचीन है। मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही संस्कृति का भी जन्म हुआ। मानव स्वभाव की सुन्दरता और मौलिकता के लिए कारणीभूत सत्वों के सुसंगतत विकास ही संस्कृति है। डॉ. जगन्नाथ पाठक की सम्पूर्ण जीवन सृष्टि सांस्कृतिक बोध से अनुप्राणित है। डॉ. पाठक के समस्त साहित्य का आधार स्तम्भ उनकी सांस्कृतिक चेतना है जो अतीत, वर्तमान और भविष्य को समान रूप से समेटे हुए हैं। डॉ. पाठक की सम्पूर्ण सर्जन प्रक्रिया संस्कृति की सही अर्थवत्ता को जानने, उसको परिभाषित करने, उसके सही स्वरूप को पहचाने की दिशा में क्रियाशील रही है। उन्होंने संस्कृति के समस्त आयामों को दर्शाने का अथक श्रम किया है। डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन निम्न आधारों पर किया जा सकता है–

(क) जीवन–दर्शन

दर्शन शास्त्र का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः जीवन और दर्शन एक ही उद्देश्य के दो परिणाम है। जीवन–दर्शन का उद्देश्य है लोगों को जिन्दगी जीने का तरीका

सिखाना। कवि जिस समाज, परिवेश में जीवन–यापन करता है, उसकी झलक उसके साहित्य में भी देखने को मिलती है। डॉ. पाठक ने पुरातन परम्परा को छोड़कर वर्तमान समाज तथा संस्कृति को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। प्राचीनकालीन साहित्य में निन्दा–प्रशंसा तथा स्तुति सम्बन्धी मुक्तक रचे जाते थे किन्तु आज के साहित्य में लोक स्थिति का वर्णन होता है। साहित्य रचना का उद्देश्य केवल पाठकों का मनोविनोद करना नहीं होता, अपितु पाठक को जीवन जीने का वास्तविक तरीका बताना है। डॉ. पाठक ने इस विषय में स्वयं कहा है कि– "मानव–मन का परिष्कार भी साहित्य का कर्तव्य होता है और व्यक्तिगत तौर पर ऐसे ही साहित्य की रचना को मैं मौलिक मानता हूँ जो अपने कथ्य द्वारा क्षुद्र मानव–मन को सुसंस्कृत एवं परिष्कृत करे और उसे चिन्तन के नये आयामा देकर उजागर करे। आज इसकी विशेष आवश्यकता है।"[121] डॉ. जगन्नाथ पाठक के मुक्तक का उद्देश्य मात्र रसचर्वणा व चमत्कार उत्पन्न करना नहीं है, अपितु मानव को जीवन की वास्तविकता से परिचय करवाना है। डॉ. पाठक का अपना एक चिन्तन का धरातल है वह उन प्राचीन सभी मान्यताओं का विरोध करते हैं, जिनसे मानवता को खतरा है। वे परम्परागत मार्ग के अनुगामी नहीं है। वे अपना रास्ता स्वयं चुनते हैं, जिससे जीवन सही मार्ग पर अग्रसर हो सके–

"तेन पथा न गतोऽहं जनसम्मर्दः पथा गतो येन।
परिगण्यते तथापि प्रवाहपतितेषु मन्नाम।।"[122]

कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी कवि का यही मानना है कि उससे घबराकर जीवन से विमुख नहीं होना चाहिए। साहसपूर्वक हर समस्या का सामना करते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिए। उनका मानना है कि–हमेशा हँसते–मुस्कराते हुए जीना चाहिए, दुःखों से हार मानकर रोते हुए नहीं। जीवन जीना एक कला है। जीवन को 'रामादिवत् वर्तितत्वं न तु रावणादिवत्' इसी नीति वाक्य के अनुसार यापन करना चाहिए–

"ये हसन्तः सन्ति ननु जीवन्ति ते,
हन्त रुदतां किञ्चिदपि किमु जीवनम्।
जीवनं रामो हि रामो जीवनम्,
रावणात्वमुपेति किमु जीवनम्।।"[123]

आगे डॉ. पाठक ने स्वयं लिखा है कि जो जीवन की विषम परिस्थितियों में भी संघर्षरत रहते हैं, वे लोग वन्दनीय है। जो निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं, दूसरों के दुःखों पर हँसने की जगह उनकी मदद करते वे लोग वन्दनीय है, यही वास्तविक जीवन–दर्शन है–

"ये तटेऽपीह निमज्जन्ति जनास्ते वन्द्याः,

ये तरङ्गैः सह संघर्षरतास्ते वन्द्याः।"

"पीडिताः केचिदिमे हन्त रुदन्तोवन्द्याः।

पीडया केऽपि परीताश्च हसन्तो वन्द्याः।।"[124]

डॉ. पाठक न तो परम्परा विरोधी है और न ही आधुनिकता की अंधी दौड़ में वे मुक्तक साहित्य में भावपक्ष व संवेदनशीलता के होने की अत्याधुनिकता को स्वीकार करते है वरन् जीवन व जगत् के अनुभूत सत्यों का, पुरातनता की आधार भूमि पर कवि की भावजन्म अनुभूतियों का नवोन्मेष ही कवि का कर्म है। डॉ. पाठक की रचनाओं जीवन से पलायन नहीं है वरन् जीवन के सत्य को स्वीकारा गया है। उनके मुक्तकों में सामाजिक विषमताओं, अभावों, जीवन की विडम्बनाओं, युगीन विद्रूपताओं, मानवीय संवेदनाओं आदि का दर्शन है। डॉ. पाठक के मुक्तक केवल मधु–आप्लावित ही नहीं है, अपितु इनमें वेदना और निराशा भी छलक उठती है और जीवन के कटु सत्य की मार्मिक अभिव्यंजना हो जाती है, यथा–

"जलमध्यगता महोर्मया ममनावं तटभूमिमानयन्।

तटभूमिगता लघूर्मयो ममनावं शनकैर्न्यमज्जयन्।।"[125]

"निहतोऽहमिहाशयाऽप्यहो नहि नैराश्यहतोऽस्मि केवलम्।

सुमनोभिरपिक्षतोऽस्म्यहं नहि रे केवल कण्टकक्षतः।।"[126]

सबको समभाव से देखना, सबके प्रति सम्मान व्यक्त करना, सभी को अपना मानना, विश्वबन्धुत्व की भावना यह सब भारतीय संस्कृति व जीवन दर्शन का अभिन्न अंग है। इसी उदात्त जीवन दर्शन के कारण भारत सबको अपने में आत्मसात करता आया है। यही जीवन दर्शन की पहचान है। कवि का मानना है कि सब एक समान है, किसी में कोई भेद नहीं है–

"त्रिष्वपि जगत्सुमन्ये व्याप्तं स्यान्नाम यस्य बन्धुत्वम्।
रामः स एव कृष्णः स एव बुद्धः स एवेह।।"[127]

इस प्रकार डॉ. पाठक ने अपने द्वारा अनुभूत सत्यों को भाषा प्रदान की है। उनके मुक्तकों में जीवन के शाश्वत् सत्यों का दर्शन है। उनमें समता व सामञ्जस्य की भावना, लोकोपकारी नीतियों, विश्वबन्धुत्व की भावना का उद्घोष ही नहीं वरन् मानवीय धर्म, सदाचार, सद्गुण, सत्यधर्म में निष्ठा आदि का भी वर्णन है। उन्होंने अपने मुक्तकों में जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और साहित्यिक सभी आयामों का समावेश किया है। व्यक्ति को समुचित जीवन दर्शन का ज्ञान करवाकर समाज को एक नई दिशा तथा प्रेरणा दी है। अपनी प्राचीन भारतीय परम्पराओं, गौरवपूर्ण अतीत, तात्कालीन जीवन दर्शन के साथ वर्तमान जीवन की विडम्बनाओं का वर्णन भी है।

(ख) राष्ट्रिय–भावना

राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य की अन्तश्चेतना से है। जिस प्रकार मनुष्य के मन में ईर्श्या–द्वेष, प्रेम, घृणा आदि मनोभाव उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीयता की भावना भी लोगों के हृदय में उत्पन्न होती है। प्रत्येक दृष्टि से राष्ट्र को सम्पन्न बनाना एवं उसकी प्रगति चाहने की भावना ही राष्ट्रिय भावना है। अपनी जन्मभूमि से प्रेम, प्राचीन परम्पराओं के प्रति आदरभाव अपने देश के प्रत्येक प्राणी, वस्तु और उसकी सुन्दरता के प्रति ममत्व की भावना तथा अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति आस्था का हृदय में विद्यमान होना ही सच्ची राष्ट्रिय भावना है।

राष्ट्रिय भावना को अभिव्यक्ति देने व राष्ट्रिय चेतना को जाग्रत करते का सशक्त माध्यम साहित्य ही है। वहीं साहित्य श्रेष्ठ साहित्य है जो राष्ट्रिय भावना से ओत–प्रोत हो। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' कहते हैं कि "मौन धारण करने भूमिगत होने जैसे प्रसंग भी राष्ट्रिय चेतना के प्रकटीकरण का माध्यम रहे हैं परन्तु इन सबमें शब्द ही लोकमानस को आन्दोलित, विडोलित तथा झकझोरने वाला रहा है, अन्य नकारात्मक। प्रभावी दोनों है, परन्तु मंचों के ओजस्वी भाषण, गीत और कविताओं के आलम कुछ ओर ही होते हैं।"[128]

डॉ. जगन्नाथ पाठक के मुक्तक साहित्य में भी राष्ट्रिय भावना सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। उनके मुक्तक साहित्य में देश–गौरव एवं राष्ट्र भक्ति, अतीत का गौरवगान, संस्कृति का प्रशस्तिगान, प्राचीन कवियों के प्रति सम्मान, राष्ट्र ही हीनावस्था का चित्रण इत्यादि भावों का सर्वत्र आकलन है।

कवि कहता है कि हमारे देश में अलग–अलग भाषायें, रीति–रिवाज, वेशभूषा, रहन–सहन, धर्म व जातियाँ होने के बाद भी सम्पूर्ण विश्व के सामने एकता व अखण्डता का उदाहरण प्रस्तुत करने के पीछे जो सबसे बड़ा कारण है वह है हमारी राष्ट्रिय भावना जिसके मूल में भारतीयता है। यह भारतीयता ही है जो भिन्न वर्ण, भिन्न धर्म तथा भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय होते हुए भी भिन्नता में अभिन्नता को दर्शाता है–

"यद्यपि भिन्ना वर्णा भिन्ना धर्मा सम्प्रदायाश्च।
भिन्ने तथाप्यभिन्नं यत्किञ्चिद् भारतीयत्वम्।।"[129]

कवि ने यह भी कहा है कि विचारगत–भाषागत भेद होते हुए भी जो तत्त्व हमारी एकता तथा अखण्डता का परिचायक है, जो हमारी राष्ट्रिय भावना का पोषक है, वह तत्त्व है भारतीयता–

"सत्यपि विचारभेदे भाषाभेदे च भारतीयेषु।
उल्लसति तत्त्वमेकं यत्किञ्चिद् भारतीयेषु।"[130]

अपनी जन्मभूमि के अतीत की गौरवगाथा गाना भी राष्ट्रिय भावना का ही अंग है। राष्ट्र के अतीत के गौरव गान से लोगों में राष्ट्र के प्रति आदर व सम्मान की भावना बढ़ती है। कवि कहता है कि हमारी भारत भू बहुत आदरणीय है क्योंकि यही भगवान् बुद्ध ने शांति का उपदेश दिया तथा यहीं प्रताप–शिवाजी जैसे वीरों ने जन्म लिया–

"मैत्रीभावनयाऽऽगताय हि वयं बुद्धोपदेशस्थिता
लुब्धायातिथये प्रतापशिववीराणां सुपुत्रा वयम्।।"[131]

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता शान्ति तथा मानवता के पावन संदेश में निहित है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विश्वबन्धुत्व की भावना को लेकर चलने वाला संस्कृत साहित्य 'स्व' संकीर्ण भावना को त्यागकर अपने युग के प्रत्येक प्राणी के मंगल की कामना करता है।

वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना राष्ट्रीय एकता की परिचायक है। राष्ट्रिय भावना से तात्पर्य यही है कि भारत के अलग–अलग स्थानों पर रहने वाले और अलग–अलग धर्मों का अनुसरण करने वाले लोगों के बीच वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना। कवि कहता है कि सम्पूर्ण विश्व में अनेक भाषाओं, जातियों, रहन–सहन, खान–पान की भिन्नता होने पर भी सम्पूर्ण विश्व घौंसले के समान प्रतीत होता है–

"नानाभेदवशादिह भिन्नेष्वपि मानवेषु यदभिन्नम्।
विश्वमिदं नीडमिव प्रविभात्येकं नु तेनैव।।"[132]

निष्कर्षतः डॉ. पाठक के मुक्तकों में राष्ट्रिय भावना वर्णित है। उन्होंने देश के प्राचीन गौरव को अभिव्यक्त किया है तथा प्राचीन भारत की सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक भावना को भी अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने अपने मुक्तकों के द्वारा देश के लोगों में राष्ट्रिय भावना को जागृत करने का प्रयास किया है।

(ग) ईश्वर–सत्ता

ईश्वर सत्ता का तात्पर्य है उत्कृष्टता के प्रति असीम श्रद्धा रखने वाला साहस। संस्कृत साहित्य में ईश्वर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण संस्कृत साहित्य पर धर्म की अमिट छाप है। ईश्वर–सत्ता में विश्वास को ही धर्म कहा जाता है। ईश्वर प्रेम है और ईश्वर से प्रेम करना उसके लिए जो है वह है–भक्ति।

डॉ. पाठक के सम्पूर्ण मुक्तक साहित्य में ईश्वर के प्रति प्रेम, आस्था देखने को मिलती है। वे कहते हैं कि संसार में श्रीकृष्ण के अलावा कहीं भी उनका चित्त नहीं रमता है। वे अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण को ही मानते हैं। वे उन्हीं के साथ मित्रता करना चाहते हैं, उन्हीं के साथ निवास करना तथा उन्हीं के साथ खेलना चाहते हैं। उनके लिए श्रीकृष्ण ही सब कुछ है। उनकी शरण को छोड़कर वे कहीं नहीं जाना चाहते हैं, यथा–

"श्रीकृष्णेन च सख्यं श्रीकृष्णेनैव तु तेऽस्तु सह वासः
श्रीकृष्णः क्रीडनकं श्रीकृष्णस्तेऽस्तु सर्वस्वम्।।
श्रीकृष्णः शरण मे जगति परित्यक्तसर्वधर्मस्य।
तमिह विहाय कमन्यं सम्प्रति समुपाश्रये देवम्।।"[133]

ईश्वर के प्रति प्रेम एक पवित्र भावना है। यह उच्च स्तर की चेतना की ओर प्राणी को उन्नत करती है। जीवन में प्रत्येक कार्य ईश्वर से जुड़ा है। ईश्वर के प्रति निरंतर आकर्षण ईश्वर की ओर मनुष्य को अग्रसर करता है। ईश्वर के भक्ति के सामने उसे सब कुछ फीका लगता है। डॉ. पाठक कहते हैं कि श्रीकृष्ण की भक्ति में जो माधुर्य है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। उनके द्वारा रचित अन्य रचनाओं में उन्हें वह मधुरता नहीं मिली जो श्रीकृष्ण में है।

मानव जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए ईश्वर के प्रति प्रेम अन्यतम है। बड़े–बड़े दार्शनिकों और महाकवियों के कथनानुसार तो ईश्वर प्रेम से ही सब प्रकार की उन्नति, प्रगति और आनन्द की प्राप्ति होती है। ईश्वर का नित्य स्मरण करना चाहिए, वहीं ध्येय होना चाहिए–

"श्रीकृष्णं नम नित्यं श्रीकृष्णं स्मृतिपथं सदा नय तम्।
श्रीकृष्णध्यानपरं श्रीकृष्णस्त्वां क्वचित् पश्येत्।।"[134]

कवि ईश्वर के प्रति अत्यन्त आदर भाव रखता है किन्तु वह धार्मिक आडम्बरों का विरोध भी करता है। उन्होंने श्रम के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहा है कि मनुष्य विधाता की सृष्टि से भी सुन्दर सृष्टि कर सकता है, इस बात को मानते हुए उन्होंने ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकारा है। जगत् में कहीं फूल बनकर तो कहीं पत्थर के समान एक ईश्वर इच्छा ही बरसती है–

"कुसुमीभू य क्वचनक्वचन प्रतिपद्य हन्त लोषृकताम्।
कादम्बिनीसुरुपा वर्षत्येकेश्वरेच्छैव।।"[135]

कवि का मानना है कि जीवन में सब कुछ ईश्वराधीन है। जीवन में संतुष्टि भी ईश्वर की कृपा से प्राप्त होती है नहीं तो मनुष्य भिक्षु की तरह हाथ फैलाये घूमता रहता है–

"अनयाऽप्यहमहमिकया परीक्ष्यतां रे त्वयाऽऽत्मनो भाग्यम्
त्वद्गल एव कदाचिन्निपतेत् स्रगियं करात् तस्याः।।"[136]

कवि कहता है कि आज भारतीय समाज में ईश्वर–सत्ता व धर्म धीरे–धीरे संकुचित रूप धारण करने लगे हैं और आज सम्प्रदाय मात्र के वाचक बनकर रह गये हैं। आज

स्थान–स्थान पर अपनी पेट पूजा के लिए लोग मन्दिर का निर्माण करने लगे हैं। कवि इस पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि यह तो निश्चित नहीं है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया या नहीं परन्तु यह निश्चित हैं कि मनुष्य ने ईश्वर का निर्माण किया है–

"स्युर्निर्मिता मनुष्याः काममभी वेश्वरेण केनापि।
परमीश्वरो मनुष्यैर्विनर्मितः सत्यमेतदपि।।"[137]

आज ईश्वर के प्रति सच्ची आस्था रखने वाले व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है, अपितु जिसके पास धन है, जो मन्दिर में धन खर्च करता है, उसी को श्रेष्ठ भक्त माना जाता है। भाव व प्रेम का कोई महत्त्व नहीं है–

"त्वद्भक्त इति ख्यातः श्रेष्ठी त्वन्मन्दिरं विनिर्माय
स्वहृत्कुटीरस्थं त्वामर्चन् निःस्वः क्वचिद् गणितः।।"[138]

निष्कर्षतः कवि ने अपने मुक्तकों में वर्तमान में बिगड़ते धर्म के स्वरूप, उस पर हावी होती राजनीति तथा धर्म के नाम पर हो रहे कुकृत्यों का बेबाकी से वर्णन किया है और ईश्वर के प्रति प्रेम का भी वर्णन किया है। वे मनुष्य को धर्म के आडम्बर युक्त स्वरूप को छोड़ने व मानव कल्याण के श्रेष्ठ धर्म मार्ग पर चलने का आह्वान करते हैं।

(घ) जीवन–मूल्य

साहित्य के आधार पर ही हम अपने जीवन को देखते हैं, चूँकि साहित्य समाज का दर्पण होता है और वह हमें वास्तविकता से अवगत कराता है। जीवन मूल्य मानव एवं समाज की आन्तरिक प्रक्रिया को संचालित करने में अत्यधिक सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण जीवन जीने के लिए अनिवार्य है, क्योंकि श्रेष्ठ मूल्य कतिपय सामान्य नियमों तथा आदर्शों की व्याख्या करते हुये जीवन के श्रेष्ठ सशक्त मर्यादित गौरान्वित एवं सामार्थ्य को पूर्ण रूप से विकसित करते हैं।

डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य में वर्णित जीवन मूल्यों को निम्न आधार पर समझा जा सकता है–

वैयक्तिक जीवन मूल्य

वैयक्तिक जीवन मूल्य के अन्तर्गत व्यक्ति प्रधान होता है। व्यक्ति की भावनाएँ, ईच्छाएँ प्रमुख होती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के गुण यथा शौर्य, विवेक, औदार्य, विनय, प्रेम, शील, परोपकार आदि आते हैं। डॉ. पाठक ने वैयक्तिक जीवन मूल्यों पर बहुत मुक्तक लिखे है। उनका मानना है कि व्यक्ति में वैयक्तिकता होना आवश्यक है। आज जब इस संसार में सभी लोग विनयरहित हो सर घमण्ड से ऊपर करके चलते हैं, तब भी डॉ. पाठक विनयतापूर्वक जीवन यापन कर रहे है, यथा–

"यत्र चलन्ति कतिपये स्वमुन्नमय्य स्मयेन मूर्धानम्
तत्र जगन्नाथ! त्वं नतेन मूर्ध्ना कथं चलसि।।"[139]

इसी प्रकार डॉ. पाठक का मानना है कि व्यक्ति का चित्त करुणापूर्ण होना चाहिए। कवि कहता है कि आज का मानव बनावटी हो गया है, वह सब दिखावा करता है, सच्चे करुणार्द्र व्यक्ति तो बहुत कम रह गये हैं–

"अभिनेतारो लोके बहवो दृश्यन्त एव करुणार्द्राः
कस्यचिदेव हि चित्तं यथार्थतो भवति करुणार्द्रम्।।"[140]

इसी प्रकार कवि ने मानवता को इंसान का सबसे बड़ा गुण माना है। उनके अनुसार मानवता से बड़ा कोई धर्म नहीं है। मानवता तो देवत्व लाभ से महान है–

"देवत्वलाभमेके बहु मन्यन्ते नरस्य कस्यापि।
मानवतैवास्माकं दृशि लाभो मानवस्य महान्।।"[141]

सामाजिक जीवन मूल्य

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज से ही उसका अस्तित्व निर्माण होता है। समाज में रहने के कारण मनुष्य को सामाजिक नीति–नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। सामाजिक जीवन मूल्यों में समाज ही केन्द्र बिन्दु है। सामाजिक जीवन मूल्य के अन्तर्गत शिक्षा, नारी, परिवार, विवाह, जाति इत्यादि आते हैं। कवि कहता है कि शिक्षा में प्राचीनकाल में गुरु–शिष्य परम्परा चलती थी, किन्तु आज वह समाप्त प्रायः है। शिक्षा में जहाँ स्वाध्याय महत्त्वपूर्ण है और मनुष्य जीवन पर्यन्त विद्यार्थी रहता है लेकिन आज

स्थितियाँ भयावह है। विद्वान् स्वाध्याय को छोड़ अध्यवसाय में लगे हुए हैं। आज शिक्षा भी व्यापार बन गयी है। गुरु विक्रेता है तो शिष्य खरीददार। क्रय–विक्रय के इस व्यापार के विषय में डॉ. पाठक ने लिखा है–

"विद्याक्षेत्रे व्याप्तं वाणिज्यं दृश्यते यदेतर्हि।
विक्रेतारो गुरवः क्रेतारः शिष्यपदवाच्याः।।"[142]

डॉ. पाठक द्वारा नारी सम्बन्धी भावनाओं को भी अपने मुक्तकों का विषय बनाया है। वे कहते हैं कि आज भी समाज में व परिवार में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की है। वह परिवार में शोषण व घरेलू हिंसा की शिकार है। किन्तु आज आधुनिकता के आगमन के बाद धीरे–धीरे परिस्थितियाँ बदलने लगी है। नारी की स्थिति में कुछ सुधार आने लगा है। नारी उस अत्याचार से कुछ मुक्त हुई है, जिसमें उसे पूर्णतया नियन्त्रण में रखा जाता था। परिवार में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया है। आज नारी को भी अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत रहना होगा। आज नारी अपने मुक्ति–संघर्ष में आगे बढ़ रही है। पति के अनुचित नियन्त्रण से मुक्त होकर वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना का प्रयास कर रही है। आज समाज व परिवार में सम्मानजनक स्थिति को प्राप्त करने के लिए नारी को स्वयं तत्पर होना होगा। नारी जब तक अपने अन्दर की शक्ति को नहीं पहचानेगी तब तक कितने भी पर्यास हो सब व्यर्थ है। कवि ने समाज की नब्ज़ की इस गति को पकड़ा है तथा वह स्वयं उसकी बात इस प्रकार कहते हैं–

"नाहं परकीयोऽर्थो नाप्यबला नो गृहस्य शृङ्गारः।
पुरुषानुगता नाहं स्वतन्त्रमस्तित्वमेतन्मे।।"[143]

राजनैतिक जीवन–मूल्य

जनता के जीवन में आज राजनीति दूर तक प्रवेश कर गयी है। राजनीति जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी है। उसकी स्वतंत्र पहचान शेष नहीं रही है। राजनीति के साथ हमारे जीवन का सम्बन्ध इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि हमारे जीवन के कई निर्णय राजनीति पर आधारित होते हैं। दूषित शासित प्रणाली के चलते व्यक्ति का राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध अभिशाप बन गया है। आज राजनीति का क्षेत्र अत्यन्त दूषित हो गया है। अपना महत्त्व बनाये रखने के लिए नेता भोली–भाली सामान्य जनता को भ्रमित करते है।

आज जो भी हिंसा का वातावरण है और लोगों के बीच जो तनाव है, उसका प्रमुख कारण राजनेता है जो राजनीति कभी जनकल्याण व लोकहित के लिए चुनी जाती थी, वह आज हिंसा को कुलदेवता मानती है–

"याऽधिश्रिता पुराऽभूत् कल्याणं किमपि लोकमात्रस्य।
सा राजनीतिरधुना हिंसा कुलदेवता मनुते।।"[144]

आज जो राजनीति के विषय में कुछ भी ज्ञान न ही रखते हैं, वो नेता बने हुए है। वर्तमान राजनीति की विसंगति को देखते हुए जो वस्तुत नेता है, वो मौन धारण किये हुए है–

"येजानन्ति न मार्ग सम्प्रति जातास्त एव नेतारः।
ये नेतारो वस्तुत इह तैरधुनाश्रितं मौनम्।।"[145]

निष्कर्षतः यथार्थ जीवन की सबल अभिव्यक्ति और समर्थ भाषा डॉ. पाठक के मुक्तकों की जानी मानी विशेषताएँ है। उन्होंने अपने मुक्तकों के लिए जीवन का विशाल पर चुना एवं विभिन्न परिपार्श्व की उनकी यथार्थवादी दृष्टि ने अत्यन्त सूक्ष्म तथा सशक्त अभिव्यक्ति दी है। उनके मुक्तकों में व्यक्ति से लेकर समष्ठि तक के विचारों को दर्शाया गया है। व्यक्ति के वैयक्तिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन मूल्यों का चित्रण करके, जीवन मूल्यों की महत्ता, सार्थकता और बदलती स्थितियों के अनुसार जीवन मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों को डॉ. पाठक ने दिखाने का प्रयास किया है।

♦♦♦♦

संदर्भ–सूची

1. आर्यासहस्रारामम् में आधुनिक भावबोध, डॉ. जगदीश प्रसाद, दृक् X पृ.11
2. वही, पृ.सं. 14
3. आर्यासहस्रारामम्, 178
4. जगन्नाथसुभाषितम्, 121/195
5. आर्यासहस्रारामम्, 909
6. विच्छित्तिवातायनी 17/147
7. आर्यासहस्रारामम्, 740
8. विच्छित्तिवातायनी, 111/994
9. वही, 47/413
10. वही, 15/126
11. वही, 15/133
12. आर्यासहस्रारामम, 267
13. विच्छित्तिवातायनी, 17/148
14. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–I, मानवते, 1/4
15. साहित्य की मानवीय संसक्ति, सम्पा. पी.ए. शमीन आलियात, पृ.–11
16. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 93/26
17. वही, 107/109
18. आर्यासहस्रारामम्, आर्या, 464
19. वही, 184
20. वही, 218
21. वही, 801
22. वही, 190
23. विच्छित्तिवातायनी, 19/112
24. मैं क्यों लिखता हूँ? जगन्नाथ पाठक, दृक् X पृ.–4
25. विच्छित्तिवातायनी, 41/366
26. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 250
27. वही, 593

28. वही, 604
29. जगन्नाथसुभाषितम्, 209 / 724
30. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 620
31. आर्यासहस्रारामम्, पुरोवाक्, पृ.–III
32. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 3
33. वही, 371
34. वही, 625
35. वही, 871
36. जगन्नाथसुभाषितम्, 133 / 265
37. वही, 196 / 646
38. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 224
39. जगन्नाथसुभाषितम्, 209 / 725
40. वही, 199 / 666
41. भाव या मनोविकार, चिन्तामणि भाग–1, रामचन्द्र शुक्ल, पृ.–11
42. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, कविता तदा मे मनसि समुन्मीलन्ति / 17
43. जगन्नाथसुभाषितम्, 315 / 1361
44. वही, 256 / 1244
45. विच्छित्तिवातायनी, श्रीकृष्णभावनाशतकम् / 53
46. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 6
47. वही, 12
48. वही, 19
49. वही, 363
50. जगन्नाथसुभाषितम् भाग–2, 94 / 36
51. वही, 97 / 50
52. वही, 96 / 46
53. मृद्वीका, चतुर्थशतक / 342
54. वही, 348
55. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 142
56. विच्छित्तिवातायनी, 8 / 68

57. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, गजेन्द्र मोक्ष / 22

58. आर्यासहस्रारामम् आर्या, 139

59. कापिशायनी, प्रकीर्णकम् / 11

60. कापिशायनी, समस्यापूर्तयः / 16

61. विच्छित्तिवातायनी, श्रीकृष्णभावनाशतकम् / 21

62. वही, 22

63. आर्यासहस्त्रारामम्, आर्या 10

64. कापिशायनी, समस्यापूर्तयः / 4

65. जगन्नाथसुभाषितम्, 99 / 64

66. वही, 121 / 193

67. वही, 170 / 490

68. वही, 6 / 46

69. विच्छित्तिवातायनी, 8 / 64

70. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 198

71. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 146 / 346

72. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 908

73. जगन्नाथसुभाषितम्, 154 / 394

74. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 608

75. जगन्नाथसुभाषितम्, दिनष्वेषु / 1

76. वही, 2

77. वही, 3

78. वही, 5

79. वही, 6

80. आर्यासहस्त्रारामम्, आर्या 504

81. जगन्नाथसुभाषितम्, दिनेष्वेषु / 21

82. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 945

83. जगन्नाथसुभाषितम्, 160 / 432

84. विच्छित्तिवातायनी, 43 / 384

85. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 266

86. वही, 242
87. वही, 923
88. विच्छित्तिवातायनी 33/290
89. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 178
90. वही, 584
91. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, दलित/2
92. वही, 10
93. विच्छित्तिवातायनी, 17/147
94. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 925
95. मनुस्मृति 7/152
96. The Complete works of swami vivekanand, vol.-II, P.26
97. विच्छित्तिवातायनी, 13/144
98. वही, 58/517
99. वही, 157/1410
100. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 654
101. जगन्नाथसुभाषितम्, 312/1343
102. आर्यासहस्रारामम् आर्या 491
103. जगन्नाथसुभाषितम्, 264/1057
104. वही, 267/1190
105. विच्छित्तिवातायनी, स्त्रीशतकम्/2
106. वही/8
107. वही/25
108. वही/26
109. वही/65
110. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 6
111. वही, 919
112. वही, 909
113. 'आर्यासहस्रारामम्' में आधुनिक भावबोध–जगदीश्वर प्रसाद, दृक् X, पृ.16
114. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 735

115. विच्छित्तिवातायनी, सौन्दर्यकारिका / 26
116. जगन्नाथसुभाषितम्, 230 / 849
117. कापिशायनी, दो शब्द, ब्रजमोहन चतुर्वेदी
118. कापिशायनी 1 / 1
119. मृद्वीका, 49 / 223
120. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 118
121. मैंक्यों लिखता हूँ? जगन्नाथ पाठक, दृक् X, पृ. 6
122. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 73
123. पिपासा, 6
124. वही, 12
125. कापिशायनी, 6 / 47
126. वही, 6 / 41
127. जगन्नाथसुभाषितम्, 180 / 550
128. सांस्कृतिकराष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' घाटिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली
129. जगन्नाथसुभाषितम्, 2, 237 / 889
130. वही, भाग–2, 426 / 2029
131. कापिशायनी, भारतशार्दूलविक्रीडितम्, श्लोक–1
132. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 816
133. विच्छित्तिवातायनी, श्रीकृष्णभावनाशतकम्, श्लोक 11–12
134. वही, 8
135. आर्यासहस्रारामम्, आर्या 165
136. वही, 219
137. वही, 340
138. वही, 450
139. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 99 / 65
140. वही, 190 / 610
141. विच्छित्तिवातायनी, श्लोक 133
142. आर्यासहस्त्रारामम्, आर्या 945
143. वही, 619
144. वही, 250
145. विच्छित्तिवातायनी, श्लोक 691

चतुर्थ अध्याय

डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अनुशीलन

चतुर्थ अध्याय

डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अनुशीलन

कविगण संप्रेषण के लिए काव्य में सौन्दर्य साधक तत्त्वों का संधान करते हैं। इसलिए भावपक्ष की उत्कृष्टता के अनुरूप कलापक्ष का वैविध्य किसी कवि के मूल्यांकन का उच्चतम आधार होता है। कवि अपने काव्य में भाषा के विविध प्रयोगों, अलंकारों के सौष्ठव और छंदों के संयोजन द्वारा शिल्प को ऊँचाई प्रदान करता है। विभिन्न रीतियाँ और काव्य गुण उसके काव्य को मनोहारी बनाते हैं।

डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य में जहाँ वस्तु की समृद्धि उद्घाटित होती है, वहीं उनके काव्य में शिल्प पक्ष का परम सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। कवि ने भाषा, छंद, अलंकार, गुण आदि की दृष्टि से अपने काव्य को अलंकृत किया है। शिल्प की अनुपम योजना की है।

(1) भाषा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह हमेशा अपने भावों एवं विचारों को दूसरों के साथ अभिव्यक्त करता है तथा दूसरे के भावों एवं विचारों को ग्रहण करता है। ऐसा वह भाषा के माध्यम से ही कर सकता है। अतः भाषा मानव–जीवन का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। भाषा के बिना मानव के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है।

भाषा की महत्ता के सम्बन्ध में ऋग्वेद के एक मन्त्र में उल्लेख है कि– "वाग्देवी को देवों ने उत्पन्न किया और उसे सभी प्राणी बोलते हैं। यह मनुष्य के लिए धेनु अर्थात् उसकी इच्छा का दोहन करने वाली अन्नदात्री है।"[1]

मानव जीवन में भाषा की सदैव अपेक्षा रहती है। भाषा शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ. मङ्गलदेव शास्त्री ने कहा है कि– "भाषा मनुष्यों के उस व्यापार को कहते हैं जिससे वे अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किये गये वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचार को प्रकट करता है।"[2]

काव्य में भाषा सरस अर्थात् रसात्मक होनी चाहिए। सरस शब्दों की योजना से वह साधारण मनुष्यों द्वारा अनुकरणीय होती है। आचार्य विश्वनाथ ने भी **'रसात्मकं वाक्यं काव्यं'**[3] कहकर काव्य का रसात्मक होना अनिवार्य माना है। सरस तथा भाव प्रधान होने के कारण प्राचीन काव्यों की महिमा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक के मुक्तक साहित्य के परिशीलन से यह सम्यक् प्रतीत होता है कि डॉ. पाठक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इनकी भाषा सहज, सरल एवं सुबोध है। परिष्कृत, प्राञ्जल एवं कोमलकान्तपदावली की मधुरिमा हृदयावर्जक हैं। पदों में नाद सौन्दर्य विद्यमान है। मुक्तकों में गेयता है। भाषा यथासंभव व्याकरण से परिष्कृत है।

संस्कृत भाषा निसर्गतः कोमल व मृदुल भाषा है। वह निपुण कवि का कला कौशल प्राप्त कर भावों के उद्वेलन की अद्भुत क्षमता प्राप्त कर लेती है। डॉ. कलानाथ शास्त्री डॉ. पाठक के मुक्तकों की भाषा के विषय में लिखते हैं कि "इन आर्याओं में बड़े सहज तरीके से एक भाव विशेष या कथ्य विशेष को प्राञ्जल भाषा में अभिव्यक्त कर पाठक तक पहुँचाने का कवि का प्रयत्न सफल हुआ है। प्रत्येक आर्या में उक्तिभंगी है उसकी एक ही पहचान है सहजता। बिहारी के दोहे जिस प्रकार एक छोटा सा उक्ति माध्यम होने के बावजूद गहरा प्रभाव छोड़ते हैं, प्राकृत की गाथाएँ जिस प्रकार एक छोटा सा छन्दो–वाहन लेकर हृदय के अन्तस्तल तक उतर जाती है, उसी प्रकार यह आर्याएँ भी सहज सम्प्रेषणीयता के गुण के कारण एक छाप छोड़ देती है।

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीर।।"[4]

डॉ. जगदीश्वर प्रसाद लिखते हैं– प्राचीन मुक्तक जहाँ रसकेन्द्रित होते थे, समस्त कलात्मक उपादानों का लक्ष्य रसोद्रेक अथवा अलंकाराश्रित चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं, इसका लक्ष्य जीवन को अधिक सुन्दर और उदात्त बनाना है। इसकी सार्थकता जीवन का अन्धकार दूर करने में है। अलंकार, गुण, रीति इत्यादि बाह्य चमत्कारों से यह सार्थक नहीं होती। कवि के शब्दों में–

कविता तद् वक्तव्यं येन तमो यातु नाशमिहकिञ्चित्।

नालंकारैर्न गुणैः कवित्वमिह सार्थकं भवति।।124।।

कवि समाज का अत्यन्त संवेदनशील प्राणी होता है। अतः समाज के प्रति उसकी प्रतिबद्धता आवश्यक है। अतः इसमें ऐसी सहजता होनी चाहिए जो जन सामान्य के हृदय को स्पर्श कर सके। इसे अलंकरण के उपादानों से बोझिल करना उचित नहीं। इसमें जीवन सत्य का तात्त्विक एवं संक्षिप्त उद्घाटन होना चाहिए। अनावश्यक विस्तार अथवा अलंकारों के घटाटोप से मूल कथ्य ही गौण हो जाता है। कवि को अपने दायित्व का बोध कराते हुए डॉ. पाठक कहते हैं–

"सज्जय कवे! न वाच्यं प्रभारभूतैरिमामलङ्कारै।

विस्तरमपि च न गमय व्याहर सारं मितं किञ्चित्।।"[5]

डॉ. उमेशदत्त भट्ट डॉ. पाठक की भाषा के विषय में लिखते हैं– "पाठक जी के किसी भी काव्य–ग्रन्थ की भाषा व शब्द–विन्यास पर अँगुली उठाना बहुत बड़ी भूल होगी। इनके एक–एक शब्द का प्रयोग कुछ ऐसा ही होता है जैसे जड़िया के द्वारा किसी भी आभूषण में जड़ित नग जो अपने स्थान से यदि हट गया तो उस आभूषण की शोभा ही धुंधली करके रख देता है। भाषा की प्राञ्जलता तथा सुबोधता भावों की लऱज नपे–तुले शब्द विन्यासों के कारण गेयता में कुत्रापि अबाधता आदि सभी दृष्टि से 'पिपासा' का काव्यत्व डॉ. पाठक के अन्तर्मन को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करता एक अत्यन्त ही श्लाघनीय प्रयास है।"[6]

डॉ. पाठक के मुक्तकों में भाषा के तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार है–

क्रियाएँ

डॉ. पाठक ने अपने मुक्तकों में बड़ी कुशलता के साथ क्रियाओं का प्रयोग किया है। इनके प्रयोग में क्रियापदों की प्रायः स्पष्ट प्रतीति होती है यथा–

"तन्त्रीणां निर्मात्रे नमोऽस्तु हस्ताय लौहकारस्य"[7]

"तव रूपमपूर्वमात्मसात् प्रविधायेव मदीयमानसम्"[8]

"विषमें बत जीवने स्थिरा न भवत्येव मति : कथञ्चन"[9]

कहीं–कहीं पर क्रियाएँ वाक्य के प्रारम्भ में भी प्रयुक्त हुई है। यथा–

"चलितं हि ततः कृतोऽपराधः कथितं, हन्त ततः कृतोऽपराधः"[10]

"पृच्छ मृदितमृदितस्य व्यथां प्रसूनस्य माऽथवा पृच्छ"[11]

"विहसन्तमवेक्ष्य मां कदाचिदुवाचाधिकविस्मितः सुहृत्"[12]

सर्वनाम

सर्वनाम पदों का प्रयोग करने में भी कवि का नैपुण्य दिखलाई देता है। डॉ. पाठक ने अपने मुक्तकों में अनेक स्थलों पर पद्यारम्भ में सर्वनाम पदों का प्रयोग किया है, यथा–

"यस्य कस्यापि न भवतीह विलसितं सरलम्"[13]

"यच्च ललितादपि मधुरादपि ललितं मधुरम्"[14]

"स वृथैव विशङ्कते जनः कुतः एवं मधु तत्कुतो वयम्।"[15]

"येनोद्भासितमङ्गणं नरपतेः काचस्थितेनाधिकं"[16]

"त्वं यस्मात् समुपेतो निजदेशात् प्रावृषेण्य जलद सखे"[17]

इस प्रकार कई स्थलों पर सर्वनाम पदों का उचित प्रयोग हुआ है।

निपात

डॉ. पाठक ने मुक्तकों में निपातों का भी बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है। कवि की यह विशेषता है कि वे निपातों का प्रयोग केवल पाद–पूर्ति के लिए नहीं करते अपितु जहाँ भी इनका प्रयोग करते हैं वहाँ वे सार्थक होते हैं। इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है। यथा–

(क) ननु – "ननु नाममात्रमेवं भवसीह 'जगन्नाथः'।"[18]

"सुमनः शयनं हि जीवनं ननु येषामिह सन्तितेऽपरे"[19]

(ख) नूनम – "नायात्येव समझमदृश्यः कर्तरिकाहस्तो नूनम्"[20]

"कूष्माण्डकमपहतवानहं गृहच्छादनान्नतेनूनम्"[21]

(ग) वा – "तव धार्मिक/ मन्दिरेषु क मधुशालासु च वा तव प्रिये"[22]

"न शृणोति न हन्त वेत्ति वा तव मेऽन्योन्यसुभाषितं जनः"[23]

(घ) खलु – "एक गङ्गा खलु हिमगिरेर्निर्गता तुङ्गशृङ्गतः"[24]

"सस्नेहे शलाभायतां स खलु नो राष्ट्रपदीपानले"[25]

(ङ) नु – "प्रवृद्धिं कामपि प्राप्ता नु तस्या मय्युपेक्षेयम्"[26]

"विलोक्य मां नु जनः सुन्दरोऽपि सन्दिग्धे"[27]

(च) हि – "जीवनं च येष्वासीत् ते हि नो गता दिवसाः"[28]

"मार्दवं न हि काम्यं यद् दलितं स्यात् पदेन सर्वेषाम्"[29]

इनके अतिरिक्त कवि ने अथ, च, इव, अपि, किम् आदि नियातों का भी भरपूर प्रयोग किया है।

समान पद–प्रयोग

डॉ. पाठक के मुक्तकों में कहीं–कहीं पर समान–पदों का भी प्रयोग हुआ है। कवि ने कहीं पर समान शब्दों का प्रयोग एक साथ किया है और कही ंपर व्यवधान के साथ किया है। एक साथ यथा–

"कमल कमल भृङ्गमागतं न स्थिरयसि किं कमलं न वर्तते त्वम्"[30]

"त्वदीयं मुग्धमुग्धं रे विलसितम्, मदीयं दग्धदग्धं रे विहसितम्"[31]

"अहमित्यहमित्युदग्रतां सकलो व्यञ्जयति स्वचेष्टया"[32]

इसके अतिरिक्त कवि ने व्यधानपूर्वक भी समान शब्दों का प्रयोग किया है, यथा–

"हत्पक्षतोऽपि यः स्यात् सुन्दर इह सुन्दरः स इह"[33]

"कठोराणां मृदुत्वं मृदूनां वा कठोरत्वम्"[34]

"यस्य कस्यापि न भवतीह विलसितं सरलम्

किञ्चिदधिकं हि प्रभवतीह विलसितं सरलम्"[35]

मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

कवि के मुक्तकों में अनेकत्र मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में प्रवाह, गतिमयता व तरलता देखने को मिलती है। कवि ने वर्तमान में कवित्वगान को न सुनने के संदर्भ में 'अरण्य–रोदन करना' मुहावरें का प्रयोग किया है–

"श्रोतृषु विनैव यत्नं त्वदभिमुखो नाम कश्चिदप्यस्ति।
कियदिदमरण्यरुदितं कवित्वगानं नु कर्तासि।।"[36]

इसी प्रकार 'आकाश से गिरा खजूर में अटका' मुहावरें का प्रयोग भी कवि ने बहुत अच्छे से किया है–

"देवालयादुपेतो मधुशालां किन्तु हन्त पश्यामि।
अवलम्बितोऽस्मि नूनं तालाद् विनिपत्य खर्जूरे।।"[37]

लोक में एक मुहावरा प्रचलित है कि 'अपनी गली में तो कुत्ता भी शेर होता है' कवि ने वर्तमान संदर्भों में स्वयं को शेर मानने वाले तथा कुत्ते के स्थान पर 'ग्रामसिंह' का प्रयोग कवि की भाषा पर साधिकारता को प्रकट करता है–

"सिंहा इति मन्यन्ते कतिपय एवेह यत्र ते यान्ति।
सिंहो भवति प्रायः स्वक्षेत्रे ग्रामसिंहोऽपि।।"[38]

सूक्ति–प्रयोग

साहित्य के समालोचको के अनुसार साहित्यकार उसी मात्रा में महान् होता है जिस मात्रा में उसमें अपनी उक्तियों को कहावतों के रूप में प्रचलित कर देने की क्षमता होती है। संस्कृत साहित्य में सूक्तियों का जितना विशाल भण्डार है उतना शायद ही किसी साहित्य में होगा। डॉ. पाठक भी इस कला से अछूते नहीं रहे हैं। यथा–

"वीरभोग्या वसुन्धरा नूनम्"[35]

"विश्वमिदं नीडम्"[40]

"विचारमूढः प्रतिभाति स्व"[41]

"वसुधैव कुटुम्बकम्"[42]

निष्कर्षतः डॉ. पाठक की भाषा विषयानुकूल है। उसमें सार्थक शब्द चयन के साथ–साथ भाषा की मधुरता, चमत्कारमयता, अद्भूतभावाभिव्यञ्जना व उक्ति वैचित्र्य है।

प्रत्येक मुक्तक में कवि हृदय की सरलता, सच्चाई व भावग्राहिता का चित्र पाठक को मंत्रमुग्ध कर देता है। उनके मुक्तकों में शब्द व अर्थ का समुचित समायोजन है।

(2) भाव–सौन्दर्य

कवि पाठक जी के सम्पूर्ण कविता संकलन मुक्तक कविता के संग्रह है तथा कथ्य व शिल्प दोनों की दृष्टियों से उन्होंने कविता को एक नया व अद्भूत स्वरूप प्रदान किया है परन्तु प्राचीन कवियों के मुक्तकों की भाँति यहाँ कविता का उद्देश्य पाठक को मात्र रसाप्लावित करना या चमत्कृत करना नहीं है वरन् उसे जीवन के सत्य से साक्षात्कार करवाना है। डॉ. पाठक का साहित्य वैयक्तिक अनुभूतियों का है। उस पर दर्शन, रहस्यवाद, कल्पना, आडम्बर आदि की दुर्बोधता का आक्रमण नहीं हुआ है। उनके मुक्तकों में अनुभूतियों का अद्भूत चमत्कार दृष्टिगोचर हुआ है। डॉ. पाठक के भाव उनके हृदयस्थल से स्वतः प्रवृत्त हुए हैं। अतः वे हृदय के सच्चे उद्‌गार है। उनके मुक्तकों के वर्ण्य–विषय जहाँ एक ओर प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, अध्यात्म जैसे मौलिक विषय रहे हैं, वहीं दूसरी ओर पदार्थिक जीवन, मानवीय समस्याओं, समसामयिकता को भी अपने मुक्तकों को विषय बनाया है।

प्रेम, करुणा, क्रोध, हर्ष, उत्साह आदि का विभिन्न परिस्थितियों में ममस्पर्शी चित्रण ही भाव–सौन्दर्य है। भाव–सौन्दर्य को ही साहित्य शास्त्रों ने रस कहा है।

रस–योजना

काव्य का मूल गुण है रमणीयताः उसकी चरम सिद्धि है–सहृदय का मनः प्रसादन और उद्दिप्त परिणाम है चेतना का परिष्कार। ये सब भावों के व्यापार है। भाव तत्त्व ही सहृदय के भावों को उद्‌बुद्ध कर उन्हें उत्कृष्ट आनन्दमयी चेतना में परिणत करता है।

काव्य में रस का महत्त्व तो स्वतः ही स्पष्ट है, क्योंकि काव्यशास्त्रियों ने रस को काव्य का सर्वस्व मानते हुए इसको काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है।[43] और रस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। श्रुति भी कहती है 'रसो वै सः' 'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'।[44] आचार्य भरत मुनि ने काव्य में नवरस स्वीकारे हैं–

"शृंगार हास्य–करुण–रौद्र–वीर–भयानकाः
वीभत्साद्भुतशान्तश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः"[45]

आचार्य भरत मुनि ने रस और रस की निष्पत्ति के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा हैं– रस के बिना कोई अर्थ प्रवृत्त नहीं होता है। विभाव–अनुभाव–व्यभिचारी भाव के संयोग से रस–निष्पत्ति होती है, यथा–

"नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।
तत्र विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद रस निष्पत्ति"[46]

जो कवि जीवन की गहराई से जितना अधिक निमग्न होगा उसका अन्तर्संगंत उतना ही संवेदनशील व भाव प्रवण होगा। अतः कवि जीवन रस के उद्वेलन में ही लेखनी की सफलता मानते हैं–

रस इति कः पदार्थः? उच्यते आस्वाद्यमानात्। कथमास्वाद्यते रसः? यथा हि नानाव्यञ्जनसंस्कृतन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षदींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्वोपेतान् स्थायिभावान् आस्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षका हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति।[48]

रस को ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रमाणित करते हुए अभिराज राजेन्द्र मिश्र कहते हैं कि जैसे लोक में जीवात्मा से श्रेष्ठ होता है मोक्ष, उसी प्रकार काव्य में काव्यात्मभूत व्यंग्यार्थ से श्रेष्ठ है रस, क्योंकि वह व्यंग्यार्थ का लक्ष्य है। प्रतीयमानार्थ के लक्ष्य के रूप में वह रस ध्वनि के रूप में प्रतिष्ठित है, ऐसा आनन्दवर्धन का मानना है– "वस्तुतः यथा लोके जीवात्मनोऽपि परतरो भवति मोक्षरसतल्लक्ष्यभूतत्वात् तथैव काव्येऽपि रसः काव्यात्मभूताद् व्यंग्यार्थलक्ष्यभूत एवासौ रसध्वनिरिति ध्वनिकारः।"[49]

डॉ. पाठक ने रस परिपाक में निपुणता दिखायी है। इन्होंने काव्य में मुख्य रूप से शृंगार, करुण, वीर तथा शान्त रस का ही समावेश किया है।

शृंगार–रस

इस रस की उत्पत्ति काम के उद्वेग से मानी गयी है। डॉ. पाठक के मुक्तकों शृंगार रस शास्त्रीय नियमों के आधार पर परिभाषित न किया जा सके किन्तु शृंगारिक स्पर्श है जो पाठक को चमत्कृत कर देता है। यथा–

"मधुपानगृहस्य योषितां पृथगेव व्यवतिष्ठतेक्रमः
मधुतं परिपाययन्ति यो नयनानामपि वेद भाषितम्।"[50]

इसी प्रकार नायिका के पैरों का यावक रस कवि को अनुराग के समान प्रतीत होता है–

"यावकरसार्द्रयोस्त्वं पदयोर्निजयोर्भृशं दृशं धेहि।
रक्तस्य त्वयि कस्यचिदनुरागोऽत्रावभारसेत्।।"[51]

इसी प्रकार नायिका के नेत्रों के व्यापार के विषय में लिखते हैं–

"मधुरं मधुरं कटाक्षपातात् प्रविधते पियमात्मनः समीपम्।
अथ सोऽपि हरन् कथञ्चिदाप्तान् निजपत्रीमिह दित्सति प्रियायै।।"[52]

कवि कहता है कि प्रेम में मरने से भयभीत नहीं होना चाहिए, क्योंकि प्रेम तो शाश्वत जीवन का नाम है, वह मरने से कम नहीं होता–

"मरणं यदि चेदिहास्ति यूनां न च तस्मादपि भीतिरूहनीया।
मरणं घटते न यत्र किञ्चित् प्रणयः शाश्वत जीवनं हि नाम।।"[53]

इसी प्रकार कवि नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहता है–

"अधरे नवपल्लवानुरागो नयने कज्जलमुज्ज्वलं दुकूलम्।
त्रयमेव विभूषणं तवास्ते यदितोऽन्यानि तु सन्ति दूषणनि।।"[54]

कवि ने वियोग श्रृंगार का भी समावेश अपने मुक्तकों में किया है। वे कहते हैं कि उन्होंने प्रिया–विरह में कितने ही दिन व्यतीत किये। उसके बिना तो श्वास लेना भी मुश्किल है–

"विरहे तव यापिता मया
न कियन्तो दिवसास्तथाप्यहो।
पुनरेष पुनर्भणाम्यहं
न विना त्वां श्वसितुं हि शक्यते।।"[55]

इसी प्रकार कवि कहता है कि प्रिय विरह में उसके लिए सब ऋतु भी समान है–

"किं वसन्त आगता किं कुहरवो भविता।
प्रियजने विदूरस्थे ते हि नो गता दिवसाः।।"[56]

वीर–रस

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। कार्य करने में स्थिर उद्योग का नाम उत्साह है। डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य में कुछ स्थलों पर अव्यक्त तथा कतिपय स्थानों पर व्यक्त रूप में वीर रस मिलता है। वर्तमान में विषमताओं से लड़ने व उन्हें उखाड़ फैंकने के आह्वान में अनेकत्र वीर रस का स्पर्श मिलता है। भारतदेश पर हो रहे विदेशी आक्रमणों से कवि मन क्षुब्ध है तथा वह सम्पूर्ण देशवासियों को जगा रहा है कि आज सोने का समय नहीं है, हिमालय के शिखर की तरफ से रण की शंखध्वनि सुनाई दे रही है–

"रुद्रा जाग्रत जाग्रत क्षणमिदं युष्मान् समुत्प्रेक्षते
सैष प्रज्वलनस्य काल इह रे सुप्ता बृहद्भानवः।
शम्पा सम्प्रति नृत्याद्य सकलाश्चण्ड्यो रणः कल्प्यतां
दूरात् कोऽपि हिमाद्रितुङ्गशिखरादायाति शङ्खध्वनि।।"[57]

कवि कहता है कि अब मनोविनोद का समय नहीं है क्योंकि शत्रु हमारे सिर पर खड़ा है–

"नावसरोऽयं श्रोतुं वीणानादस्य रागमधुरस्य।
दूरे शत्रुभिरुच्चैरभिहन्यत उद्धतैर्दक्का।।"[58]

करुण–रस

आदि कवि वाल्मीकि द्वारा क्रौञ्च वध को देखकर अनायास मुख से निकला प्रथम श्लोक करुण रस का प्रतिष्ठापक है। इष्ट वस्तु के नाश या अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति पर उत्पन्न शोक स्थायी भाव की पुष्टि ही करुण रस है। करुणा के विभिन्न चित्र डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य में देखने को मिलते हैं। यथा–

"खर्जूराणां मध्ये सहकारः कश्चिदेक उत्पन्नः।
दुःखाकरोति मां खलु तस्य तदस्थानपतितत्वम्।।"[59]

यथा वा

"रुदितं हृदयस्य मामकी कवितेत्येव विमृश्य सद्बुधैः।
न च वाग्व्यवहार मात्रमित्यवधार्य श्रवणं विधीयताम्।"[60]

इसी प्रकार वर्तमान स्थिति को देख डॉ. पाठक का चित्त करुणार्द्र है—

"ग्राव्णा क्वचिदिह रुदितं हृदयस्य वज्रस्य च क्वचिद् दलितम्।
सत्यं मयेह रुदितं सत्यं हृदयञ्च मे दलितम्।।"[61]

अद्भुत—रस

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। विलक्षण वस्तुओं के दर्शन श्रवण आदि से होने वाला चित्त का विकास ही विस्मय कहलाता है। डॉ. पाठक के मुक्तकों में कतिपय स्थलों पर अद्भुत रस दृष्टिगोचर होता है। यथा—

केयं गाङ्गतटोपलब्धवसतेरप्युद्गतेयं तृषा
कोऽयं स्निग्धवटावनीरुहतलेऽप्यस्त्येव तापो महान्।
संसारेऽपि जिजीविषोदय इयान् कोऽयं वृथाऽऽडम्बरः
श्रान्तोऽहं ननु सूत्रधार! नटनान्निर्वर्तनं कामये।।[62]

इसी प्रकार विधाता की सर्वोत्तम कृति नारी को लेकर भी कवि मन विस्मित है—

"अद्भुतमतिशयमद्भुतमतिमुग्धं धातुरस्ति निर्माणम्
जगतीह यत् सुधिभिः प्रायो व्यपदिश्यते स्त्रीति।।"[63]

शान्त—रस

मम्मट के अनुसार शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है। नित्यानित्य वस्तुओं के विवेक से उत्पन्न विरक्ति नामक चित्तवृत्ति ही निर्वेद है। जीवन की वास्तविकता को दर्शाते डॉ. पाठक के अनेक मुक्तकों में दर्शन का स्पर्श, जीवन मृत्यु की शाश्वतता का जहाँ वर्णन है, वहाँ शान्त रस का ही स्पर्श है। यथा—

जीवनमिति मन्यन्ते श्वासानां रे गतागतं बहवः।
जीवन्ति श्वासानां विरतेऽपि गतागते कतिचिद्।।[64]

इसी प्रकार पिपासा नामक कृति में तो अनेकत्र शान्त रस का स्पर्श है, यथा—

यथा— **"विना त्वद्दृष्टिपातं रे जगत्यां कः शमं लभते,**
सुजाते त्वद्दृशो पाते जगत्यांकः शमं लभते।
समुद्यन्मेघकल्पं केशजालं तच्छिरसि यावत्
वशीभूतो नु तावदये जगत्यां कः शमं लभते।

पठन गीतां पुराणान्येव नक्तं वासरं शृण्वन्
निबद्धस्तत्प्रणयनाशे जगत्यां कः शमं लभते।"[65]

निष्कर्षतः डॉ. जगन्नाथ पाठक के मुक्तक–साहित्य में विविध रसों की अनुभूति होती है। जहाँ मृद्वीका शृङ्गार रस का उदाहरण है तो पिपासा में दार्शनिक विवेचन के कारण शान्त रस अंगी है। आर्यासहस्त्रारामम्, कापिशानी, विच्छितिवातायनी में सभी रसों का स्पर्श है।

अलङ्कार–योजना

मानव अनादिकाल से अलंकार प्रेमी रहा है। इसी कारण वह प्रत्येक वस्तु में सुन्दरता देखने को उत्सुक रहता है। मनुष्य सुन्दर भावों को व्यक्त करना और दूसरों के विचारों को सुनना चाहता है। अतः सुन्दर और चमत्कारपूर्ण शैली में भावाभिव्यञ्जना ही अलंकार का परिचायक है। इसी उपयोगिता के कारण काव्यशास्त्र को अलंकारशास्त्र भी माना जाता है।

अलंकार शब्द भूषणार्थक 'अलम्' पूर्वक 'कृ' धातु से करण या भाव में 'घञ्' प्रत्यय करने से बनता है।

अलंकार शब्द का तात्पर्य

(अ) 'अलङ्क्रियते अनेन इति अलंकारः' अर्थात् जिसके द्वारा (शब्द या अर्थ का) अलंकार किया जावे वहीं अलंकार है। प्रस्तुत व्याख्या में 'अकर्तरिच कारके संज्ञायाम्' नियम से करणार्थ में घञ् प्रत्यय हुआ है।

(ब) 'अलंकरणम् अलंकार : अथवा अलङ्कृति अलंकार' अर्थात् अलंकरण ही अलंकार है। यहाँ पाणिनीय सूत्र 'भावे' (3:3.18) से भावार्थ में घञ् प्रत्यय हुआ है।

अलंकार लक्षण सम्बन्धी मुख्य व्याख्याऐं

(अ) मम्मटाचार्य का मत : आचार्य मम्मट का काव्यप्रकाश काव्यशास्त्र का सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है। उन्होंने अलंकार को काव्य के बाह्यशोभाकारक धर्म माना है। उनका कहना है

कि जो शब्द व अर्थ शोभा बढ़ाते हुए प्रधान रस का उपकार करते हैं वही अलंकार है–

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्
हारादिवदलंकारारस्तेऽनुप्रासोपमादयः।"[66]

(ब) प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का मत : आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' में अलंकार के विराट् सौन्दर्य का साक्षात्कार कराया गया है। उनके अनुसार अलंकार ही काव्य जीवन है–

"अलंकार : काव्यजीवनम्"[67]

प्रो. त्रिपाठी ने अलंकारों के दो भेद स्वीकार किये हैं–आभ्यन्तर तथा बाह्य। जिन अलंकारों के होने पर काव्य संभव होता है वह बाह्य अलंकार कहलाते हैं तथा जिनके न होने पर काव्य असम्भावित हो जाता है वे अलंकार आभ्यन्तर अलंकार कहलाते हैं। उन्होंने 11 आभ्यन्तर अलंकार माने हैं– प्रेमा, आह्लाद, विषादन, विभीषिका, व्यंग्य, कौतुक, जिजीविषा, अहङ्कार, स्मृति, साक्ष्य और उदात्त।

आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के मुक्तक साहित्य में अलंकार डॉ. पाठक के मुक्तकों में गुण व अलंकारों का विरोध करते हैं तथा जीवन के शाश्वत् सत्यों का साक्षात्कार कराने वाली रचना को कविता मानते हैं। उनके मुक्तकों में आभ्यन्तर व बाह्य दोनों प्रकार के अलंकारों के उदाहरण देखने को मिलते हैं। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी डॉ. जगन्नाथ पाठक की कविता के विषय में लिखते हैं कि "जाति, उदात्त, साक्ष्य और अङ्कार ये तीन अलङ्कार कवि जगन्नाथ पाठक की रचनाओं में विशेष रूप से गुँथकर आये हैं।"[68]

जाति अलंकार – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने जाति का लक्षण करते हुए लिखा है–

"यथादृष्टस्य चित्रोपमनिरूपणं जातिः"[69]

अर्थात् जहाँ केवल वस्तु के स्वरूप का निरूपण होता है वहाँ जाति अलंकार होता है। यथा–

"साध्यं न किञ्चिदन्यदिह प्रीतिमन्तरा,
स्वं जीवनं न हि किञ्चिदिह प्रीतिमन्तरा।

महतोधनस्य लाभः इतः किं विमृश्यताम्,

शून्यं भवेदिदं हि जगत् प्रीतिमन्तरा।।"[70]

यहाँ डॉ. पाठक ने अपने द्वारा अनुभव किये गये सत्य को उजागर किया है, अतः जाति अलंकार है।

उदात्त–अलंकार

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी उदात्त का निरूपण करते हुए लिखते हैं–

'जीवनस्य भव्यताया गरिम्ण उल्लास उदात्तम्।'[71]

अर्थात् जीवन की भव्यता की गरिमा की अभिव्यक्ति ही उदात्त है।

यथा–

यदि जीवनमस्ति नीरसं सरसं कः खलु तद् विधित्सति

सरसीकृतवत्सु कोऽप्यहं विरतः स्यात् स विलोक्य मद्दशाम्।[72]

यहाँ जीवन के सारे उतार–चढ़ाव को देखते हुए उदात्त भाव निरन्तर अव्याहत रचना में बना हुआ है।

साक्ष्य अलंकार

'जीवनस्य दर्शनं साक्ष्यम्'[73]

अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक लोकों का समान रूप से समुल्लसित रूप जीवन का दर्शन ही साक्ष्य अलंकार है।

यथा–

"म्रियमाणा इह सन्ति क्वचिदपि सन्तीह जन्म ग्रहणन्तः

गतिमत्वं जगतोऽस्य क्वचिदवरुद्धं न भाव्येतत्।"[74]

यहाँ जीवन की गति का साक्षात् दर्शन होने से साक्ष्य अलंकार है।

अहङ्कार–डॉ. त्रिपाठी ने अहङ्कार का निरूपण करते हुए लिखा है–

"आत्मनोऽनुभवस्त्वहङ्कार"[75]

अर्थात् आत्मा का अनुभव ही अहङ्कार है। प्रो. त्रिपाठी ने डॉ. पाठक की कविता में अहङ्कार को लेकर कहा है कि "कवि जगन्नाथ पाठक के समस्त कृतित्व में परोक्ष अहंकार अलंकार हैं, कहीं कहीं प्रत्यक्ष भी हुआ है।"[76] डॉ. पाठक की गर्वोक्तियों में प्रत्यक्ष रूप में अहंकार देखने को मिलता है, यथा–

"दृष्टः स जगन्नाथोमध्ये विदुषां प्रवाहपतितानाम्।
स्यात् स्वयमेव गतोऽपि स्यादथवा केनचिन्नीताः।।"[77]

कहीं पर अन्य पुरुष के प्रयोग के द्वारा अपनी स्वयं की उक्ति कहने पर परोक्ष रूप में अहंकार देखने को मिलता है, यथा–

"न जगन्नाथस्यास्य स्थानमविदुषः कुतिश्चिदिह गोष्ठयाम्।
तेन घुणाक्षुररीत्या लब्धमपि स्यादिता स्थानम्।"[78]

इस प्रकार डॉ. पाठक के मुक्तकों में जाति, उदात्त, साक्ष्य व अहंकार अलंकारों का समन्वय देखने को मिलता है।

विषादन अलंकार

डॉ. त्रिपाठी ने विषादन अलंकार के विषय में लिखा है कि–

"इष्यमाणार्थानामसिद्धौ विरुद्धानां च सम्प्राप्तौ विषादनम्"[79]

अर्थात् चाहे गये अर्थों की अप्राप्ति तथा विरुद्ध अर्थों की प्राप्ति होने पर विषादन अलंकार होता है। विषादन अलंकार के बहुत उदाहरण डॉ. पाठक के मुक्तकों में देखने को मिलते हैं, यथा–

"तव हृदि विश्वासोऽयं तव निर्माणं क्वचिज्जनः पठिता।
त्वामस्मि वच्मि कष्टं कथमिव सहसे सुखं स्वपिहि।।"[80]

विभीषिका अलंकार

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी विभीषिका अलंकार का कथन करते हैं कि–

"जुगुप्सान्वितं तदेव विभीषिका स्यात्"[81]

अर्थात् जुगुप्सा से युक्त विषादन ही विभीषिका अलंकार है। यह दो प्रकार की होती है। प्रथम अपवित्रता को देखकर उत्पन्न होने वाली, यथा–

"सन्त्युद्गिरन्ति नित्यं धूमसमूहं विशालयन्त्राणि।

दुर्दिनमित्यनुभूतिर्मानवजातेर्नु जागर्ति।।"[82]

अपर समाजगत विभीषिका का उदाहरण, यथा–

"विनिवारिता तृषेयं विधिना स्यात् केन वा बुभुक्षेयम्
इति चिन्तैव मनुष्यं विकलीकुरुते दिनेष्वेषु।"[83]

व्यङ्ग्य अलंकार – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने व्यंग्य की परिभाषा देते हुए कहा है–

"विरूपीकरणं व्यङ्ग्यम्। विडम्बना वा"[84]

अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक लोकों में जो जो वैकल्य है, वही व्यङ्ग्य या विडम्बना है। डॉ. पाठक लोक के वैकल्य को देखते हुए कहते हैं कि–

"हंसा पूर्वमतिष्ठन् विगतभया येषु तुङ्गतुङ्गेषु।
देवालयस्य शृङ्गेष्वधुना तेष्वासते काकाः।।"[85]

जिजीविषा अलंकार – "जीवनेच्छा जिजीविषा"[86]

अर्थात् जीवन की इच्छा ही जिजीविषा है। डॉ. पाठक के मुक्तकों में जिजीविषा का उदाहरण यथा,

"स्वीयं नीडं रचनयन् पौन–पुन्येन वात्यया भग्नम्
अतितिक्षुः स्वोद्यानं खग त्वग्रयोऽसि धीराणाम्।"[87]

बार–बार हवा के वेग से भग्न होने पर भी पक्षी द्वारा नीड का निर्माण करना जिजीविषा का ही प्रतीक है।

स्मरण अलंकार – "पूर्वानुभूतस्य पुनरुन्मीलनं स्मृतिः।"[88]

अर्थात् पूर्वानुभूत का पुनः उन्मीलन होना स्मृति अलंकार है। डॉ. पाठक द्वारा रचित मृद्विका में अनेकत्र स्मरण अलंकार के उदाहरण दृष्टिगोचर होते है। यथा–

"नहि यावदुपैति तस्य चे

–च्छवसो गोचरतां निवेदितम्।

मधुमन्ति सुभाषितानि मे

नहितावत् फलवन्ति किञ्चन।।"[89]

उपरोक्त सभी अलंकारों को डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने आभ्यन्तर अलंकार के अन्तर्गत माना है। अब बाह्य अलंकारों की समीक्षा डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य में निम्न प्रकार है–

डॉ. पाठक ने अपने मुक्तकों में सायास अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। वह कवि को सम्बोधित करते हुए कहते है कि कविता की सार्थकता अलंकार व गुणों से नहीं है, अपितु समाज में व्याप्त अंधकार को दूर करने से है, यथा–

"कविना तद् वक्तव्यं येनतमो यातु नाशमिह किञ्चित्

नालङ्कारैर्न गुणैः कवित्वमिह सार्थकं भवति।"[90]

डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य में अलंकार अनायास आकर उनके भाव के उपकारक है। कुछ अलंकारों का वर्णन इस प्रकार है।

अनुप्रास अलंकार

'वर्ण साम्यमनुप्रासः'[91]

अर्थात् वर्णों की समानता ही अनुप्रास है।

यथा – **"मधुर मधु, मादकं मधु, बहिरन्तः स्मृतिमोषकं मधु"**[92]

यहाँ 'म' व 'धु' वर्ण की आवृति के कारण अनुप्रास अलंकार है।

यथा वा – **"भ्रमितव्यं स्खलितव्यं रुदितव्यं कन्द्रितव्यमलमथवा।"**[93]

यमक अलंकार

"अर्थेसत्यर्थ भिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति।"[94]

अर्थात् सार्थक होने पर भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम में पुनः श्रवण यमक अलंकार है।

यथा – **"हृदयं हृदये मनो मनस्यपि सङ्गत्य तदकेतां गतम्।**

अधुना तमुपालभे जनं त्वयि यो मय्यपि भेदमिच्छति।।"[95]

श्लेष अलंकार

"शिलष्टैपदैरने कार्यभिधानेश्लेष इष्यते"[96]

अर्थ भेद के कारण भिन्न–भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए शिलष्ट प्रतीत होते हैं, वह श्लेष अलंकार है। उदाहरणार्थ–

"सम्पूर्ण एव गेहे स्नेहेन प्रज्वलन् पुरा योऽभूत्।

निःस्नेहादिव दीपात् तस्माद् गेहोऽधुना ज्वलति।।"[97]

यहाँ स्नेह शब्द का एक जगह प्रेम तथा दूसरी जगह तेल अर्थ होने से श्लेष अलंकार है।

उपमा–अलंकार– "साधर्म्यमुपमा भेदे"[98]

अर्थात् भेद में साधर्म्य अर्थात् अति स्पष्ट और सुन्दर साम्य को उपमा अलंकार कहते हैं।

यथा – **"हृदये हृदयस्य सङ्गमः प्रणयोनाम कयोश्चिदुचयते।**

वणिजेव न हानिलाभयोरिह काचिद् गणना विधीयते।।"[99]

यहाँ प्रणय से वणिज का साम्य बताने के कारण उपमा अलंकार है।

रूपक अलंकार – "तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो"[100]

अर्थात् उपमान तथा उपमेव में अभेदारोप ही रूपक है।

यथा –**"इह राजनीतिसरसि स्नातुमनेके विशन्तिसोत्साहम्।"**[101]

यहाँ राजनीति में सरसि का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार है।

निष्कर्षतः डॉ. पाठक ने मुक्तक साहित्य में अनेक अलंकारों के प्रयोग दिखायी देते हैं। ये अलंकार काव्य में सायास न होकर स्वतः सहज रूप में मुक्तकों में इनकी

उपस्थापना की गयी है। उनके मुक्तकों में आभ्यन्तर अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। उनके मुक्तक जाति, उदात्त, साक्ष्य तथा अहंकार का समन्वय रूप है। उनके मुक्तक युगीन सत्य को उद्भासित करते हैं।

(3) छन्द

छन्द शास्त्र के व्याख्याता पिंगल मुनि माने जाते हैं। छन्दों से चरण व लय का ज्ञान होता है। छन्दों को वेद पुरुष का पैर कहा गया है— "छन्दः पादौ तु वेदस्य"[102] जिस प्रकार बिना पैर के मनुष्य चल नहीं सकता उसी भाँति वेद भी छन्द ज्ञान विना नहीं चल सकते।

आचार्य भरतमुनि ने कहा है कि **"छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम्"**[103] अर्थात् छंदरहित शब्द नहीं है और शब्दरहित छन्द नहीं है।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने छन्दोयोजना के विषय में लिखा है—

"काव्येरसानुसारेण वर्णनानगणेन च
कुर्वीत सर्ववृत्तनां विनियोगं विभागवित्।।"[104]

अर्थात् कवि को अपने काव्य में रस एवं वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दो—योजना करनी चाहिए।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी छंद के विषय में कहते हैं कि—

"छन्दस्तु सर्वत्राऽनुस्यूतं समेषां मानसे पिनद्धं किमपितत्त्वम्। काव्येऽपि गद्ये वा पद्ये वाऽस्य व्याप्तिः प्रतिशब्दं छन्दसो वर्तमानत्वात्। तद्यथोक्तं मुनिना भरतेन—'छन्देहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम् इति। अत एव समस्तं काव्यं छन्द इत्युच्यते 'काव्यं छन्द' इति यजुर्वेदोक्तेः। अस्य च छन्दसो द्वैविध्यम आभ्यन्तरबाह्यभेदात्। यदस्याऽऽभ्यन्तरं रूपं तत्तु समग्रां सृष्टिमथिव्याप्नोति। विद्यमाने तस्मिन् प्रबन्धेषु आन्तरिकी सङ्गति सम्भवति, तेन तेषु महावाक्यं निष्पद्यते। बाह्यं तु रूपं पिङ्गलादिशास्त्रेण निर्धार्यते। अविद्यमानेऽपि तस्मिन् क्वचिद् भवति छन्दसो निष्पत्ति।"[105]

डॉ. पाठक ने नवीन विषयवस्तु को अपने मुक्तकों का विषय बनाया है और छंदोबद्ध मुक्तक लिखे हैं। उन्होंने अपने सभी मुक्तकों में वियोगिनी तथा आर्या छन्द का प्रयोग किया है। वे स्वयं कहते हैं–

"पहले मैं वियोगिनी छन्द में लिखा करता था, अब आर्या में लिखने लगा हूँ। ऐसी कोई विवशता भी नहीं, फिर भी वियोगिनी तो छूट गई है, अब आर्या लग गई है– 'घुटती नहीं है मुँह से ये काफ़िर लगी हुई।"[106]

डॉ. पाठक के मुक्तकों के आधार पर वियोगिनी तथा आर्या छंद का विश्लेषण निम्न प्रकार है–

वियोगिनी–छंद

"विषमें ससजा गुरु समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।"[107]

जिस छंद में विषम चरणों (प्रथम–तृतीया) में क्रमशः दो सगण, एक जगण तथा एक गुरु वर्ण आये, सम चरणों में क्रमशः सगण, भगण, रगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण आये, उसे वियोगिनी कहते है। यह एक वार्णिक अर्धसमवृत्त छन्द है।

डॉ. पाठक ने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ कापिशायनी व मृद्वीका इसी छन्द में लिखी है।

कापिशायनी में वियोगिनी छंद यथा–

। । ऽ ।। ऽ । ऽ । ऽ

त व वा मम वाऽस्ति जी व ने

। । ऽ ऽ ।। ऽ।ऽ । ऽ

न हि काचित्परमार्थतो भिदा

। । ऽ । । ऽ । ऽ।

अपि रूपिणि! रूपमेव ते

।।ऽ ऽ।। ऽ । ऽ । ऽ

कुरुते दर्शकदृश्यभावनाम्।[108]

यथा वा

। । ऽ ।   । ।ऽ ।   ऽ ।

मिलनाद् वपुषोर्न केवलं

। । ऽ   ऽ । । ऽ । ऽ ।ऽ

मिलनं जायत एव मन्यते

। । ऽ । ।ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ

मधुपानप्रसङ्गसङ्गत

। । ऽ   ऽ । । ऽ ।ऽ । ऽ

मिलन जायत एवमर्थवत्[109]

मृद्वीका में वियोगिनी छंद यथा–

। । ऽ । । ऽ   । ऽ । ऽ

मम तीव्रतरा विपासुता

। ।ऽ ऽ   । । ऽ ।ऽ । ऽ

द्रवतां तद्धृदयं विनेष्यति।

। । ऽ । ।ऽ । ऽ ।ऽ

स्वयमेव ममाधराग्रत

। । ऽ   ऽ । ।   ऽ । ऽ ।ऽ

समुपस्थास्यति तत्करान्मधू।।[110]

आर्या छंद

लक्षण ग्रंथों में आर्या का लक्षण निम्न है–

यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथातृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुथे पञ्चदश साऽऽर्या।।

अर्थात् जिसके प्रथम चरण में 12, द्वितीय चरण में 18, तृतीय चरण में 12 तथा चतुर्थ चरण में 15 मात्राएँ होती है, उसे आर्या छंद कहते हैं। डॉ. जगन्नाथ पाठक का आर्या छंद पर असाधारण अधिकार है। उनके अधिकतर काव्य संग्रह आर्या छंद में ही है। श्रीरंजन सूरिदेव कहते हैं कि "समकालिक संस्कृत–साहित्य को समृद्ध बनानने वाले पाठक

जी का कवित्व आर्याछन्द की रचना में ततोऽधिक प्रौढ़ता से पुरस्सृत हुआ है। इन्होंने समग्र दीवाने ग़ालिब को संस्कृत के आर्या–छन्द में पद्यान्तरित करके अपने को निश्चय ही 'आर्यासम्राट्' की उपाधि का अधिकारी सिद्ध किया है। ज्ञातव्य है, उर्दू–शेर का मुकाबला संस्कृत का आर्याछन्द ही कर सकता है, जिसकी प्रशंसनीय परख पाठक जी में है।"[111]

डॉ. पाठक के आर्या छन्द पर अधिकार को लेकर डॉ. हरिदत्त शर्मा कहते है– "कविता में भी उनकी दो धारायें मुख्य हैं–आर्यानुययिनी धारा एवं गीतामुयायिनी धारा। आर्याछन्द के तो वे द्विहस्त कवि है। वे अपने हृदयरूप नेपथ्य की ओर झांक कर हल्का–सा आह्वान करते हैं–आर्ये! इतस्तावत् और उनकी आर्या क्षण–भर में सहृदय–हृदय पर अपना अधिकार स्थापित कर चली जाती है।"[112]

"कवि का छन्दों पर असाधारण अधिकार है। आर्या उनका प्रिय छन्द है। 'विच्छित्तिवातायनी' लगभग दो हजार आर्याओं का संकलन है। आर्यासहस्रारामम् में भी एक हजार आर्याएँ समाहित है। दीवाने–ग़ालिब के पद्यानुवाद में आर्या–छन्द का प्रयोग हुआ है।"[113]

डॉ. पाठक के मुक्तकों में आर्या छन्द यथा–

ǀǀ ऽ ǀǀऽ ǀǀ ऽ

लसदुज्जवलद्वसनां

ǀǀ ऽऽ ऽǀऽ ǀ ऽ ऽ ऽ

स्मयमानां मत्पुरः शनैर्यान्तीम्

ऽ ǀǀ ǀ ऽ ǀ ऽऽ

कामपि मनो मदीयं

ǀǀ ऽ ǀ ǀ ऽ ǀ ǀǀऽ

विनिवारितमप्यनुव्रजतिः।[114]

यथा वा

ǀ ǀǀǀ ऽ ऽ ऽ ǀǀ

"श्रुतिपथमायाता इव

|| | |SS |S | S ||S

मम नु सुदूरात् कुतोऽपि झङ्कृतयः

|| S| S| S S

अपि नाम नूपुराणा

|| S||S | S S S

मथ बन्धनशृङ्खलानां वा।"[115]

निष्कर्षतः छन्द शास्त्र में आर्या एक छोटा सा छंद है, परन्तु पाठक जी की आर्याओं में साहित्य की मृदुलता, मृसणता और जीवन के सत्यों का मूर्त रूप देखने को मिलता है। उन्होंने अपनी काव्ययात्रा में अनेक आर्याएँ लिखी है। पर आर्या के अतिरिक्त वियोगिनी पर भी इनका जबरदस्त अधिकार है। रामकरण शर्मा ने पाठक जी की आर्या के विषय में लिखा है–

"भवतामार्या वस्तुत आर्यावाणी न चात्र सन्देहः।

भावा आर्या भावक आर्यः सर्वमार्यमेवात्र।।"[116]

इसी क्रम में रामनारायण मिश्र कहते हैं–

"वैचित्र्यमर्थकलितं न हि केवलशब्दकलितमप्यत्र।

आरामोऽयं कोऽपि प्रतिभात्यार्यासहस्रमया।।"[117]

इस प्रकार भावों की सुमधुर अभिव्यञ्जना में, चित्त के विस्तार में प्रयुक्त मुक्तकों की छन्दोयोजना अभिभूत कर देने वाली है। छन्दों के उपयोग की दृष्टि से शास्त्रीय दृष्टिकोण में नवीन दृष्टिकोण का समावेश है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ–सूची

1. ऋग्वेद 8/100/11
2. भाषाविज्ञान–डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ.सं.–21
3. साहित्यदर्पण 1/3
4. आर्यासहस्रारामम्, पुरोवाक्, पृ.सं. ii-iii
5. आर्यासहस्रारामम् में आधुनिक भाव बोध, डॉ. जगदीश्वर प्रसाद, दृक्–1, पृसं.–13–14
6. डॉ. पाठक का अन्तर्मन, उमेशदत्त पाठक, दृक् 10, पृ.सं.–31
7. आर्यासहस्रारामम् 53/401
8. मृद्वीका, तृतीयशतक 291
9. कापिशायनी–166
10. आर्यासहस्रारामम् आर्या 102
11. वही
12. मृद्वीका, पञ्चमशतक, 467
13. पिपासा 69
14. वही
15. कापिशायनी 163
16. कापिशायनी समस्यापूर्तयः 8
17. आर्यासहस्रारामम् 35/268
18. पिपासा 140
19. कापिशायनी 16
20. पिपासा 53
21. आर्यासहस्रारामम् 0/1612
22. कापिशायनी 37
23. कापिशायनी 46
24. कापिशायनी, कालिदासप्रशस्तयः 12
25. कापिशायनी, भारतशार्दूलविक्रीडितम् 5

26. कापिशायनी, गजलगीतानि, पृ.सं.–78

27. पिपासा 61

28. कापिशायनी, गजलगीतानि, पृ.सं.–79

29. आर्यासहस्रारामम् 82/631

30. कापिशायनी, प्रकीर्णकम् 10

31. पिपासा 52

32. मृद्वीका प्रथमशतकम् 71

33. विच्छित्तिवातायनी 990

34. पिपासा 20

35. वही, 68

36. आर्यासहस्रारामम् 130

37. वही, 312

38. वही, 452

39. वही, 106/816

40. वही

41. वही

42. वही

43. काव्यप्रकाश प्रथम परिच्छेद, काव्य स्वरूप

44. तैत्तिरीयोपनिषद 2/7

45. साहित्यदर्पण 3/209

46. काव्यप्रकाश 2.100

47. आर्यासहस्रारामम् 482

48. आचार्य भरतमुनिनाट्यशास्त्र, अध्याय 6

49. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.सं.–150

50. कापिशायनी 4

51. आर्यासहस्रारामम् 128

52. कापिशायनी, यवनिका 21

53. वही, 27
54. वही, 28
55. मृद्वीका, तृतीयशतकम् 290
56. कापिशायनी, गजलगीतानि, पृ.सं.–79
57. कापिशायनी, भारतशार्दूलविक्रीडितम्, 4
58. आर्यासहस्रारामम् 42
59. विच्छत्तिवातायनी, 410
60. कापिशायनी 48
61. आर्यासहस्त्रारामम् 476
62. कापिशायनी, प्रकीर्णकम् 24
63. विच्छित्तिवातायनी, स्त्रीशतकम्
64. आर्यासहस्रारामम् 455
65. पिपासा 4
66. काव्यप्रकाश 8/67
67. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी 2.1.1
68. दृक् X जाति, उदात्त, साक्ष्य और आत्मानुभव की कविता, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी
69. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, 2.6.4
70. पिपासा 39
71. अभिनवकाव्यालंकार, 2.5.12
72. कापिशायनी 31
73. अभिनवकाव्यालंकार, 2.5.11
74. आर्यासहस्रारामम् 573
75. वही, 2.5.9
76. दृक् X जाति, उदात्त, साक्ष्य और आत्मानुभव की कविता, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी
77. आर्यासहस्रारामम् 543
78. वही 356
79. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र 2.5.4

80. विच्छित्तिवातायनी 634

81. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र 2.5.5

82. आर्यासहस्रारामम् 263

83. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, हेमानवते! 19

84. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र 2.5.6

85. जगन्नाथसुभाषितम् 104/95

86. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र 2.5.8

87. आर्यासहस्रारामम 800

88. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र 2.5.10

89. मृद्वीका, सप्रमशतकम्, 672

90. आर्यासहस्रारामम् 124

91. काव्यप्रकाश 9/79

92. कापिशायनी 5

93. विच्छित्तिवातायनी 28

94. काव्यप्रकाश, नवमउल्लास, सूत्र 116

95. कापिशायनी 17

96. साहित्यदर्पण, 10/11

97. आर्यासहस्रारामम् 12

98. काव्यप्रकाश 10/125

99. कापिशायनी 306

100. काव्यप्रकाश 10/9

101. जगन्नाथसुभाषितम् भाग–2/309

102. पाणिनीयशिक्षा

103. नाट्यशास्त्र 18/46

104. सुकृततिलक, आचार्यक्षेमेन्द्र

105. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 31–32

106. जगन्नाथ पाठक से शिव कुमार मिश्र का संलाप, दृक् X , पृ. 52–53

107. वृत्तरत्नाकर, श्रीमद्नारायण भट्ट, तृतीय अध्याय

108. कापिशायनी 1

109. वही, 354

110. मृद्वीका, प्रथमशतकम्/10

111. आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक श्रीरंजन सूरिदेव, दृक् X 24

112. कविवर जगन्नाथ पाठक की रचना–विच्छित्ति–हरिदत्त शर्मा दृक् X ,पृ.सं.– 19

113. संस्कृत के प्रति समर्पित डॉ. जगन्नाथ पाठक–जगदीश्वर प्रसाद, दृक् 2, पृ.सं.– 25–26

114. विच्छित्तिवातायनी, 73

115. आर्यासहस्रारामम् 1

116. पत्र–पत्रिकाओं में पाठक जी, रामकरण शर्मा, दृक् X, पृ.सं.–37

117. वही, रामनारायण मिश्र, दृक् X, पृ.सं.–45

प×चम अध्याय

डॉ. पाठक का अनुदित साहित्य

पञ्चम अध्याय

डॉ. पाठक का अनुदित साहित्य

(1) अनुवाद की परिभाषा एवं उपयोगिता, भारतीय अनुवाद परम्परा

(क) अनुवाद की परिभाषा एवं उपयोगिता

विषय प्रवेश –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपना जंगलीपन छोड़कर जब वह समाज बनाकर रहने लगा तब उसे सबसे पहले अपने विचारों को अन्य तक पहुँचाने की आवश्यकता महसूस हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने सबसे पहले इंगित–इशारों का सहारा लिया। इन इंगित–इशारों की ही सहायता से वह अपने विचारों को अन्य तक पहुँचाता था। कभी–कभी इन इंगित–इशारों से विचारों का संपूर्ण–संप्रेषण नहीं हो पाता था। इसलिए उसने अपनी आवाज का भी सहारा लेना शुरु किया और ये ही इंगित–इशारे और आवाज विकसित होकर भाषा की इकाई बने और भाषा का जन्म हुआ। मनुष्य का समाज बढ़ने लगा, विस्तृत होने लगा। अलग–अलग क्षेत्रों में मनुष्य बँटने लगा। इस परिस्थिति में क्षेत्रीय भाषाओं का जन्म और फिर विकास होने लगा। दो क्षेत्रों की सीमा पर रहने वाले मनुष्य को दो भाषाओं का ज्ञान होने लगा और यहाँ से अनुवाद का जन्म हुआ।

अनुवाद आज अपने सैद्धांतिक संदर्भ में बहुआयामी और प्रयोजन में बहुमुखी हो गया है, किंतु अनुवाद की सार्थकता और व्यावहारिकता में जो संवर्धन हुआ, उसी अनुपात में उसके सिद्धांतों पर गहराई से चिंतन नहीं हुआ। सफल अनुवाद का संबंध व्यवहार पक्ष से है और इसीलिए अनुवाद के सिद्धांत और व्यवहार पक्ष के संबंधों पर सार्थक विवेचन करने की आवश्यकता है ताकि अनुवाद प्रक्रिया स्पष्ट हो सके।

किसी भी समाज, समुदाय का विश्लेषण कर उसके सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर दृष्टि डालने का कार्य उस समाज की भाषा का साहित्य करता है। जिस प्रकार

साहित्यशास्त्री, भाषाविद् किसी भाषा के साहित्यिक पाठ का निर्माण कर उस भाषायी समाज को विश्व के समक्ष रखता है, परंतु बिना अनुवाद वह पाठ केवल उसी भाषायी समाज तक सीमित रह जाता है। अनुवादक अनुवाद के माध्यम से न केवल एक भाषिक संरचना को दूसरी भाषायी संरचना में परिवर्तित करता है अपितु वह एक भाषा की सामाजिकता तथा संस्कृति को दूसरे भाषायी समुदायों तक पहुँचाता है। विश्व में होने वाली सभी सांस्कृतिक, सामाजिक मान्यताओं तथा परम्पराओं का किया जा रहा तुलनात्मक अध्ययन अनुवाद की ही देन है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में अनुवाद की महत्ता प्रमुख है। आज अनुवाद व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता पर बना हुआ है। इस सिमटते हुए संसार में अनुवाद निश्चित रूप से योगदान प्रदान कर रहा है। आज अनुवाद केवल सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है अपितु विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

अनुवाद शब्द : व्युत्पत्ति और अर्थ

विश्व के प्राचीनतम साहित्य में संस्कृत साहित्य की गणना होती है जिसमें वेद, पुराण, महाभारत, उपनिषद् आदि की रचना हुई है। इस प्राचीन संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

ऋग्वेद में 'अन्वेको वदति यद्दाति'[1] और 'रोनादधि'[2] है। अनु...वदति अर्थात् पीछे से कहा है। रोचनादधि पर सायण कहते हैं– 'अधिः पचम्यर्थानुवादी'। अनुवाद के 'अनु' और 'वद्' का प्रयोग पृथक् रूप में प्राप्त होता है। इसके बाद 'अनु' और 'वद्' का मिलाकर प्रयोग होने लगा।

वद् धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से वाद बनता है। इस वाद शब्द में 'अनु' उपसर्ग लगने से 'अनुवाद' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। 'वद्' धातु का अर्थ है– 'बोलना' या 'कहना' और 'अनु' उपसर्ग का संदर्भ पीछे, बाद में अनुवर्तिता आदि के अर्थ में है। इस प्रकार अनुवाद शब्द का अर्थ है– 'किसी के बाद कहना' या 'फिर से कहना'।

शब्दार्थ चिंतामणी कोश में अनुवाद का अर्थ 'प्राप्तस्य पुनः कथने' या 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादते' अर्थात् 'पहले कहे गए अर्थ को फिर से कहना' दिया गया है।[3]

ब्राह्मण–ग्रंथों में 'दुबारा कहना' या पुनः कथन' के अर्थ में अनुवाद शब्द का प्रयोग कई जगह देखने को मिलता है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में– **"यद्वाचि प्रोदितायाम् अनुब्रूयाद अन्यस्यैवैनम्। उदितानुवादिनम् कुर्यात्।"**[4]

बृहदारण्यक में अनुवदति का प्रयोग दुहराने के अर्थ में आया है– **"तद्एतद् एवैषा देवी वाग् अनुवदति स्तनयित्नुः द द द इति।"**[5]

यास्क के निरुक्त में **'कालानुवाद परीत्य'**[6] कहना या ज्ञात को कहना अनुवाद है। निरुक्त में ही अनुवाद का प्रयोग दुहराने के अर्थ में भी हुआ हैः **"एतद् ब्राह्मणेन रूपसम्पन्न विधीयते इत्युदितानुवादः संभवति।"**[7]

पाणिनी की 'अष्टध्यायी' में भी अनुवाद शब्द का प्रयोग हुआ है : **"अनुवाद चरणानाम्।"**[8] अनुवादे चरणानाम् में प्रयुक्त अनुवाद की व्याख्या भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धस्य उपन्यासे के रूप में की है जिसका अर्थ 'ज्ञात बात को कहना है। भट्टोजि पर वासुदेव दीक्षित की व्याख्या बाल मनोरमा में आता है–अवगतार्थस्य प्रतिपादने इत्यर्थः अर्थात् ज्ञात को कहना ही अनुवाद का अर्थ यहाँ अभिप्रेत है। पाणिनि के सूत्र 'अनुवादे चरणानाम्' पर महाभाष्यकार के कथन की टीका में कय्यट कहते हैंः "यदा प्रतिपता प्रमाणांतरावगतमप्यर्थ काश्चातरार्थ प्रयोक्ता प्रतिपाद्यते तदानुवादी भवति।" अर्थात् किसी ओर प्रमाण से विदित बात की हो, दूसरे कार्य के लिए किसी के द्वारा श्रोता से जब कहा जाता है, तब अनुवाद होता है। काशिका में इसी पर टीका की गई है– **"प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन संकीर्तनमात्रमनुवादः"**[9] अर्थात् अन्य किसी प्रमाण से जानी हुई बात का शब्द के द्वारा कथन करना ही अनुवाद है

अनुवाद शब्द का शास्त्रीय अर्थ है– भाषान्तर, पश्चात् कथन, पूर्व विधि द्वारा निर्दिष्ट विषय का कार्य विशेष के निमित्त पुनरुल्लेख, अर्थानुवाद आदि। मीमांसा में वाक्य के आशय का दूसरे शब्दों में समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन को अनुवाद कहा गया है तथा इसके तीन प्रकार भूतार्थानुवाद, स्तुत्यर्थानुवाद तथा गुणानुवाद माने गए है–

"विरोधो गुणवादः स्याद्नुवादोऽत्र धारिते

भूतार्थवाद स्तद्धानावर्थवाद स्त्रिधा मतः।"

न्यायसूत्र में अनुवाद को वाक्यों का एक प्रकार माना गया है। (विधि, अर्थवाद और अनुवाद)। **"विध्यर्थवादानुदवचनविनियोगात्।"**[10] न्यायसूत्र में कहा गया है– **'विधि विहितस्यानुवचनानुवाद'**।[11]

इस तरह संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द का प्रयोग बाद में कहना, फिर से कहना, दुहराना, ज्ञात को कहना, समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन, आवृत्ति सार्थक आवृत्ति, विधि या विहित का पुनः कथन, पुनरुक्ति आदि अनेक अर्थों में हुआ है।

आज के सन्दर्भ में अनुवाद शब्द की सीमायें भले ही विस्तृत हो तथा उसने अपना दायरा भले ही विस्तृत किया हो लेकिन हजारों साल पहले संस्कृत साहित्य में प्रयोग किए जाने वाले शब्द अनुवाद की अवधारणा वर्तमान युग में भी पुनः कथन के संदर्भ में अनुवाद शब्द पर बिल्कुल ठीक बैठती है। अतः प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनेकों ग्रंथों में अनुवाद के सूत्र बिखरे पड़े है। साथ ही आधुनिक अर्थ में संस्कृत के अनुवाद शब्द में विकास भी हुआ है।

अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है उसे स्रोत भाषा तथा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है उसे लक्ष्य भाषा कहते हैं।

अनुवाद की परिभाषाएँ

अनुवाद विषयक भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ :–

डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव – "एक भाषा (स्रोत भाषा) की पाठ्य सामग्री में अंतनिर्हित तथ्य का समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में संगठनात्मक रूपांतरण अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन ही अनुवाद कहा जाता है।"[12]

डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव की परिभाषा में दो बातें स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पहली बात–समतुल्यता और दूसरी बात है–संगठनात्मक रूपान्तरण।

डॉ. भोलानाथ तिवारी – "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन है, अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के

निकटतम (कथनतः और कथ्यतः) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद निकटतम समतुल्य और सहज प्रतीक है।"[13]

यहाँ प्रतिस्थापन से तात्पर्य है स्रोत भाषा के प्रतीकों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के प्रतीकों को रखना है।

डॉ. गार्गी गुप्त – "अनुवाद प्रक्रिया के दो मुख्य अंग होते हैं, अर्थबोध और व्याकरण सम्मत भाषा में स्पष्ट सम्प्रेषण। इसीलिए अनुवाद की निष्ठा दोमुखी होती है, मूल रचनाकार के प्रति अर्थबोध की दृष्टि से और पाठक के प्रति शुद्ध तथा सुबोध सम्प्रेषण की दृष्टि से।"[14]

इस परिभाषा में अनुवाद प्रक्रिया के दो मुख्य बिन्दुओं को महत्त्वपूर्ण माना गया है, एक अर्थ बोध और दूसरा व्याकरण। अनुवादक जब एक भाषा की पाठ्य–सामग्री को दूसरी भाषा में प्रतिस्थापित करता है, तब अनुवादक को मल पाठ्य सामग्री के अर्थबोध तथा सम्प्रेषण इन दो बातों को ध्यान में रखते हुए अनुवाद करना होता है।

डॉ. रीतारानी पालीवाल – "स्रोत भाषा में व्यक्त प्रतीक–व्यवस्था को लक्ष्य भाषा की सहज प्रतीक–व्यवस्था में रूपांतरित करने का कार्य अनुवाद है।"[15]

डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर – "अनुवाद की प्रविधि एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण करने तक सीमित नहीं है। एक भाषा के रूप के कथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना भी अनुवाद है। छंद में बताई गई बात को गद्य में उतारना भी अनुवाद है। (अनुवाद की प्रविधि के दौरान भाषिक समन्वय हो जाता है। परन्तु यह भाषिक समन्वय मोटे तौर पर स्थापित रूपान्तरण के सिद्धांत एवं रूप इन दोनों धरातलों पर होना चाहिए।)"[16]

श्रीपाद जोशी रघुवंश – "अनुवाद एक भाषा के विचारों का दूसरी भाषा में स्थानांतरित करना मात्र नहीं है एक अच्छा अनुवाद सदैव मूल लेखन के समकक्ष होता है। इसके लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं पर अधिकार ही नहीं वरन् अनुवाद तकनीक में विशेष रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए।"[17]

डॉ. सुरेश कुमार – "एक भाषा के विशिष्ट भाषा भेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस तरह प्रस्तुत करना अनुवाद है कि जिसमें वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य को यथासंभव संरक्षित रखते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो।"[18]

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया – "अनुवाद वह भाषायी प्रक्रिया है जिसके मूल में एक भाषिक संरचना या अभिव्यक्ति का दूसरी भाषिक संरचना या अभिव्यक्ति में रूपान्तरण होता है।..... ....एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों कहना अनुवाद है।"[19]

दक्षा बी. पुरोहित – "Translation means the transference of one language into another. It is a device by which the thoughts and contents of a work are transferred into another language. tranlation is a rewritten of an ortigional text."[20]

डॉ. सतीश कुमार मेहरा – "अनुवाद से तात्पर्य एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना है। अनुवाद एक प्रकार का ऑपरेशन अर्थात् संक्रिया है। इस संक्रिया द्वारा एक भाषा की पाठ सामग्री, दूसरी भाषा में प्रतिस्थापित की जाती है। जिस भाषा की पाठ सामग्री प्रतिस्थापित की जाती है, उसे स्रोत भाषा और जिस भाषा में सामग्री प्रतिस्थापित की जाती है, उसे हेतु या लक्ष्य अथवा संग्राहक भाषा कहा जाता है।"[21]

अनुवाद विषयक पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

नायडा–"Translating consists in producing in the reporter of language the closest natural equivalent to the message of the source language. First in meaning and secondaly in styled."[22]

नायडा के अनुवाद के अन्तर्गत स्रोत भाषा के संदेश को दोनों–अर्थ (भाव) के धरातल और शैली के धरातल पर लक्ष्य–भाषा में स्वाभाविक निकटतम समतुल्यता पर बल दिया है। उनके अनुसार स्रोत भाषा के संदेश को उसके स्वाभाविक निकटतम समतुल्यता में लक्ष्य–भाषा में उत्पन्न कर देना ही अनुवाद है।

कैटफोर्ड–"The replacement of textual material in one language by equiralent textual material in another language."[23]

एक भाषा की पाठ्य सामग्री को दूसरी भाषा की पाठ्य–सामग्री में समतुल्य रूप में स्थानान्तरण ही अनुवाद है।

फॉरस्टन–"Tranlation is transference of the content of a text from one laguage in to another bearing in mind that we can not always dissociate the content from the form."[24]

अनुवाद एक ऐसी विधा है, जिसमें एक भाषा के पाठ्य–विवरण को दूसरी भाषा के पाठ्य–विवरण में रूपान्तरित कर देना है। इस रूपान्तरण में ध्यान देने की बात यह है कि यह विवरण उसके रूपाकार से पृथक् न हो।

जानसन–"The business of the translator is to be like the origional writer and not to exel him. Thus he wants to convey that if the translation tries to be better then the origional, He might lase the trek of the fidelity to the origional."[25]

पी.बी. शैली– "एक कवि की रचनाओं को दूसरी भाषा में ढालना कुछ इसी प्रकार की क्रिया होगी जैसे आप बनपाशे के फूल को सूसा (कुठाली) में डालकर उसके रंग और उसकी सुगन्ध के तत्त्वों को जानने के लिए परीक्षण करे।"[26]

दांते– "किसी भी लेखक की सृजनशील क्षणों की पुष्प पंखुडिया आधी मौलिक रचना में तथा तीन–चौथाई में बिखर जाती है।"[27]

सेपिर – "किसी सभ्यता के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से दो भाषाएँ समान हो सकती है। कारण दो सभ्यताएँ जिन समाज में जीती है, उनके अपने संसार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुवाद में मात्र भाषिक परिवर्तन नहीं होता, प्रत्युत उसमें सभ्यता का रूपांतरण अपेक्षित है। रूपांतरण निकटतम ही संभव है।"[28]

इस प्रकार स्पष्टतया हम कह सकते हैं कि अनुवाद एक पात्र में रखे गये तरल पदार्थ को दूसरे पात्र में पलटने पर प्राप्त निष्कर्ष के समान है। अच्छा कहा जाने वाला अनुवाद एक प्रकार से नवीन सृष्टि के समान होता है। अनुवाद शब्द का प्रयोग आज जिस अर्थ में हो रहा है, वह है एक भाषा में कहीं हुई बात को दूसरी भाषा में व्यक्त करना। जिस भाषा में मूलतः यह बात कही गई थी, उस भाषा को स्रोत भाषा कहा जाता

है और जिस दूसरी भाषा में उसका अनुवाद होता है उसे लक्ष्य भाषा कहते हैं। अतः स्रोत भाषा में कही बात को बिना किसी अर्थ–परिवर्तन के लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त करना अनुवाद है। इसमें यह भी अपेक्षा की जाती है कि स्रोत भाषा में कही गयी बात का प्रभाव लक्ष्य भाषा के पाठक। श्रोता तक उसी तरह से होना चाहिए। हालांकि, लक्ष्य भाषा को अपने भाषिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संदर्भों और परिप्रेक्ष्यों के विभिन्न आयामों से गुजरना होता है, ताकि स्रोत भाषा की सामग्री की लक्ष्य भाषा में पूर्ण रूप से समान अभिव्यक्ति हो सके। इन पूर्ण रूप से समान अभिव्यक्ति का आशय निकटतम अभिव्यक्ति से भी हो सकता है। इसी संदर्भ में समतुल्यता की अवधारणा ने अनुवाद की परिभाषा को कुछ हद तक स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अतः सभी परिभाषाओं के समेकित आधार पर अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है– स्रोत भाषा में व्यक्त पाठ्य सामग्री, निकटतम समतुल्यता के आधार पर, लक्ष्य भाषा की पाठ्य सामग्री में पुनर्सृजन करना अनुवाद है।

अनुवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मूल तथा स्रोत भाषा पाठों के बीच अर्थ या संदेश के बीच अंतरण या स्थानांतरण की प्रक्रिया समतुल्यता के आधार पर घटित होती है और यह समतुल्यता सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ, संरचना, शैली आदि सभी स्तरों पर स्थापित करने का प्रयास अनुवाद का रहता है। वास्तव में अनुवाद भाषा के इन्द्र धनुषी रूप की पहचान का समर्थतम मार्ग है।

अनुवाद–प्रक्रिया

भाषा का मूल उद्देश्य विचार व्यक्त करना है और अनुवाद का उद्देश्य है– "विचारों अथवा तात्पर्य को भिन्न भाषा में अभिव्यक्त करना, विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करना। साहित्यिक अनुवाद में यह संभव है और वांछित भी है कि मूल का शब्दानुवाद न करके उसका भावानुवाद करे और एक हद तक मूल के सौन्दर्य को भी अनुदित कर दे। किन्तु दफ्तरी या सरकारी अनुवाद में विचारों को रूपांतरित करना और वह भी अधिक से अधिक मूल के निकट रहते हुए करना ही अभिप्रत होता है, जिससे अधिक मात्रा में उसे शाब्दिक ही होना होगा।"[29]

अनुवाद की प्रक्रिया के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं–

डॉ. गार्गी गुप्त – "अनुवाद प्रक्रिया के दो मुख्य अंग होते है अर्थबोध और व्याकरण सम्मत भाषा में स्पष्ट सम्प्रेषण। इसीलिए अनुवादक की निष्ठा दो मुखी होती है– मूल रचनाकार के प्रति अर्थ बोध की दृष्टि से और पाठक के प्रति शुद्ध तथा सुबोध सम्प्रेषण की दृष्टि से। मूल रचना की जो संकल्पनाएँ अथवा स्थितियाँ अनुदित रचना के पाठक के लिए अज्ञात, अस्पष्ट एवं दुरुह हो, उनकी व्याख्या, स्पष्टीकरण, अन्तर्सम्बन्धों का विवरण देना आवश्यक है। यदि हम पाठक की मूल रचना की मनोहारी भूमि में संदेश ले जाना चाहते है तो उसका वह मनोहर स्वरूप यथावत् उसके मन में भी प्रतिबिम्बित होना चाहिए।"[30]

श्री आर. रघुनाथ राय – अनुवाद की राह से गुजरते हुए अनुवादक को मुख्यतः तीन भूमिकाओं से गुजरना होता है। हम इसे अनुवाद के तीन स्तर भी कह सकते हैं, वे है–एक अनुवाद से पूर्व रचना का कई बार पारायण, इससे रचना अनुवादक के लिए बोधगम्य हो जाती है, दूसरे अनुवादक को स्रोत भाषा के मूल शब्दों का लक्ष्य भाषा में निकटतम समतुल्य या समीपतुल्य शब्द का अनुसंधान, तीसरे मूल रचना की शैली एवं मुहावरे को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करना। उनके अभिमत को हम इस प्रकार समझ सकते है– "His work being the transference of the thoughts or ideas of a writer from one language in to another in the manner indicated in the origional, the first thing he has to do is, evidently to read the bassage carefully a number of times he teds sure that he was grasped its true and collective meaning..........the second thing is to note the words which express the leading ideas and to hunt up their nearest. If not the exact equivalents in the in which the translation is to be written the third things is nute the general style of passege grave of playful, simple or ornate, descriptive, narrative or conversationa,, as the case may be and to repreduce the same in the translation"[31]

नायडा – नायडा के मतानुसार एक अच्छे अनुवादक को सफल अनुवाद के लिए तीन चरणों से गुजरना पड़ता है– (i) विश्लेषण (ii) अंतरण (iii)पुनर्गठन

सर्वप्रथम विश्लेषण के अन्तर्गत अनुवादक का पहला कार्य मूल पाठ का भली–भाँति विश्लेषण करना अर्थात् उस पाठ को अच्छी तरह से समझना जिसका अनुवाद करना है।

अंतरण के अन्तर्गत जिस भाषा में अनुवादक अनुवाद करने जा रहा है उस भाषा में मूल भाषा के समान या निकटतम शब्द का चयन करना है। पुनर्गठन के अन्तर्गत अनुवाद करने के उपरान्त अनुवादक को अनूदित पाठ तथा मूल पाठ का पुनर्गठन करना है।

नायडा की उक्त मान्यता को आरेख द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है–

स्रोत भाषा (मूल पाठ) → विश्लेषण

लक्ष्य भाषा (अनुदित पाठ) → पुनर्गठन

——→ अन्तरण ——→

डॉ. भोलानाथ तिवारी – "मैं स्वयं अनुवाद की प्रक्रिया के पाँच चरण मानने के पक्ष में हूँ। वस्तुतः अनुवाद करते समय मैंने स्वयं पाया है, कि स्पष्टतः या अस्पष्टतः अनुवादक को इन पाँच चरणों से गुजरना पड़ता है। ये पाँच चरण है–

(i) पाठ–पठन (ii) पाठ–विश्लेषण (iii) भाषान्तरण (iv) समायोजन

(v) मूल से तुलना

भोलानाथ तिवारी अनुवाद की प्रक्रिया को एक सजग प्रक्रिया मानते हैं, जिसमें अनुवादक को पदे–पदे जागरुक और सावधान रहने की आवश्यकता है।"[32]

अनुवाद की उपयोगिता

आज विश्व ग्लोबल विलेज में बदल चुका है। वैश्वीकरण एवं बहुभाषिकता, विभिन्न देशों की संस्कृतियों, भाषाओं एवं भौगोलिक सीमाओं में परस्पर आदान–प्रदान के कारण उत्पन्न एवं समन्वित स्थिति एवं स्वरूप की ही देन है। काफी हद तक यह स्थिति विभिन्न देशों के साहित्य के परस्पर अनुवाद के कारण ही संभव हो पाई है। इसलिए आज के इस साइबर युग में सृजनात्मक ज्ञान–विज्ञान के साथ–साथ साहित्य के अनुवाद का युग कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यह हम सहज रूप से ही समझ सकते हैं कि अगर अनुवाद की कला न होती तो विश्व साहित्य और विश्व–संस्कृति जैसी सभी अवधारणाएँ मात्र काल्पनिक रह जाती।

विश्व संस्कृति के विकास में अनुवाद का योगदान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रहा है। धर्म एवं दर्शन, साहित्य, शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी, वाणिज्य एवं व्यवसाय, राजनीति एवं कूटनीति जैसे संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का अनुवाद से अभिन्न संबंध रहा है। संस्कृति की प्रगति भी अंशतः अनुवाद पर आश्रित है। अतः अनुवाद को हम एक ऐसे उपकरण के रूप में देख सकते हैं जो संस्कृति के भौतिक, भावनापरक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं को गतिशील बनाने में योगदान करती है। विश्व के विभिन्न भौगोलिक खण्डों में संस्कृति का जो विकास हुआ है, वे एक दूसरे के पूरक है। विश्व संस्कृति के प्रचार–प्रसार में विचारों के आदान–प्रदान का बड़ा हाथ रहा हैं और वह आदान–प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाया है। उदाहरण के लिए बाइबिल तथा पाश्चात्य साहित्य का भारतीय भाषाओं में और भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों एवं भारतीय साहित्य का यूरोपीय भाषाओं में जो अनुवाद हुआ, उसने पूर्व एवं पश्चिम की दूरी और पार्थक्य की पुरानी धारणा को तोड़ा वहीं हमें एक–दूसरे की संस्कृति से परिचय करवाया तथा वही परिचय हमारी विकास यात्रा में सहायक सिद्ध हुई। अनुवाद भाषाओं और संस्कृतियों के बीच, बौद्धिक उपलब्धियों के बीच तथा विज्ञान और आध्यात्म के बीच संवाद का सेतु है। अनुवाद का अर्थ ही है 'सेतु बनकर दो अनजान संस्कृतियों और भाषा समुदाय के बीच संवाद स्थापित करना और इसमें अनुवाद सदा ही सफल रही है।

आज अनुवाद की प्रासंगिकता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अनुवादक पुनः सर्जक हो गया है। दोहरे जोखिम के इस कार्य की पूर्ति हेतु उसने तलवार की धार पर दौड़ने की कला सीखनी प्रारंभ कर दी है। वह दो संस्कृतियों, विचारधाराओं चिंतन परम्पराओं, भाषिक संस्कारों, रीति–रिवाजों एवं अवधारणाओं के बीच सेतु निर्माण का कार्य करने लगा है। अनुवाद के फलस्वरूप आज चिकित्सा तकनीकी वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक आदान–प्रदान होने के कारण मानव के जीवन–मूल्यों एवं अंतर्राष्ट्रीय सोच के परस्पर संवाद से अजनबीपन का कोहरा छँटने लगा है। भौगोलिक सीमाओं के आर–पार एक परिचित एवं आत्मीय वातावरण बनने लगा है। एक देश अथवा संस्कृति की भाषा अपनी साहित्यिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को किसी दूसरे देश, भाषा अथवा संस्कृति तक पहुँचने के लिए अनुवाद का ही सहारा लेते हैं।

इतिहास गवाह है कि यदि तत्कालीन ज्ञान–विज्ञान, कला तथा साहित्य की रक्षा अन्य भाषाओं के अनुवादकों ने न की होती हो उनकी गौरव–गाथाओं को कब का भुला दिया गया होता। सभ्यताओं के विनाश के साथ ही तक्षशिला, नालंदा आदि स्थानों पर रचा गया महान साहित्य कब का नष्ट हो गया होता। साहित्य चाहे भारतीय हो अथवा विदेशी, लेखक और अनुवादक के बीच शताब्दी से एक ऐसा अटूट और अंतरंग रिश्ता चला आ रहा है जिसका लाभ हर युग और हर भाषा के पाठकों ने उठाया है।

यदि प्राचीन साहित्य के अनुवाद न किए गए होते तो आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि विदेशों में तो क्या शायद स्वयं अपने देश में भी इतने चिंरजीवी न होते। अनुवाद न होता तो अरस्तु, प्लेटो, सुकरात, दांते, टॉलस्टॉय, ग़ालिब, उमर खैयाम आदि महान् लेखकों की विचार सम्पदा से सारा विश्व कैसे लाभान्वित होता? रवीन्द्रनाथ, बंकिम और शरत्चन्द्र केवल बंगाल तक ही सीमित रह जाते। तुलसी तथा प्रसाद के काव्य का रसास्वादन अन्य भाषाओं के पाठक कैसे कर पाते? चीन, जर्मनी, रूस, कोरिया, जापान आदि के लोक–कथाओं के साथ भारतीय लोककथाएँ भी सामने आ नहीं पाती। पंचतंत्र, जातक कथाएँ एवं हितोपदेश आदि की कथाएँ, जो बच्चों को रोचक ढंग से नैतिक आचरण की शिक्षा देती है, वे विनष्ट हो गई होती।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दो भाषाओं के बीच की दूरी मिटाने में अनुवाद ने ही सर्वाधिक योगदान किया है। सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में बदलती हुई परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई नई संभावनाओं ने इसके अनुवाद की उपादेयता को और अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक समाज को जोड़ने का दायित्व अनुवाद के माध्यम से एक हद तक पूरा हुआ है। आज अनुवाद की वजह से ही हम अपने देश की अन्य संस्कृतियों से परिचित है। अगर अनुवाद न होता तो हम आज तक कई मामलों से अनभिज्ञ बने रहते और समाज का इतना विकास न होता।

बीसवीं, इक्कीसवीं शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति की शताब्दियाँ है और इस कारण इन्हें अनुवाद की शताब्दी कहा जा सकता है। संप्रेषण के इस माध्यम ने वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना को साकार बना दिया है। भारत जैसे बहुभाषाभाषी देश में परस्पर अनुवाद की तो आवश्यकता है ही, लेकिन विश्वभाषाओं से भी अनुवाद की अनिवार्यता है।

अनुवाद के संदर्भ में डॉ. विश्वप्रकाश गुप्त लिखते हैं– "अनुवाद आज सामाजिक, साहित्यिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं में जितना उपयोगी, प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा है, उसका मूलकारण 'ऐक्यभावना' तो है ही, उसका व्यावसायिक पक्ष भी है। राज्यों, संस्कृतियों, देशों, विचारधाराओं तथा साहित्य के परस्पर आदान–प्रदान के साथ ही वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी आदि विषयों एवं क्षेत्रों के विकास तथा संचार का मुद्दा भी अनुवाद से गहरा जुड़ा हुआ है।....हम विश्व साहित्य, संस्कृति एवं प्रगति से अनुवाद द्वारा ही जुड़ सकते हैं। विश्व के सभी देशों में अनुवाद को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारत जैसे बहु–सांस्कृतिक एवं बहु–भाषिक समाज तथा देश में तो अनुवाद यों भी अत्यन्त प्रासंगिक है।"[33]

अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अनुवाद का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों द्वारा संवाद मौखिक अनुवादक की सहायता से ही होता है। जब कई भाषाओं के वक्ता एक सम्मेलन में अपनी–अपनी भाषा में विचार व्यक्त करते हैं तब उनके अनुवाद की व्यवस्था कठिन होती है तथापि अनुवाद की व्यवस्था की जाती है।

साहित्य के क्षेत्र में भी अनुवाद बहुत उपयोगी है। प्राचीन भाषाओं के वाङ्मय को आधुनिक युग के पाठक अनुवाद के सहारे ही समझ पाते हैं। हमारे देश में पहले संस्कृत साहित्य खूब पढ़ा जाता था और बहुत लोग संस्कृत जानते थे। अब आधुनिक भाषाओं पर जोर है और संस्कृत जानने वाले कम इसलिए अनुवाद से ही हम संस्कृत की सरसता ग्रहण करते हैं। एक सीमित क्षेत्र की भाषा में लिखे गये उत्तम साहित्य ग्रंथ संसार के व्यापक क्षेत्रों की भाषाओं की रचनाओं में जब अनुदित होते हैं तब उनका प्रचार व उनके लेखकों का मान बढ़ता है। साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद का कार्य साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन को सुगम बना देता है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर की झलक हमें अनुवाद की व्यापकता बताती है। भारत जैसे बहुभाषाभाषी राष्ट्र में वर्तमान शताब्दी में विभिन्न भारतीय भाषाओं द्वारा अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं से अनुवाद हुआ है। शुद्ध सृजनात्मक साहित्य से बढ़कर समीक्षा, ज्ञान–विज्ञान की अन्य शाखाएँ, संदर्भ–ग्रन्थ आदि के क्षेत्र में अनुवाद का योगदान

महत्त्वपूर्ण है। अनुवाद के जरिये ही भारत देश का संस्कृत वाङ्मय और संस्कृति जगत् के देशों में पहुँची।

अनुवाद वह साधन है जो भाषायी सद्भावना की अवधारणा को न केवल पुष्ट करता है अपितु भारतीय साहित्य को गति भी प्रदान करता है। यह एक ऐसा अभिनन्दनीय कार्य है जो भारतीय साहित्य की अवधारणा से हमें परिचित कराता है तथा हमें सच्चे अर्थों में भारतीय बनाकर क्षेत्रीय संकीर्णताओं एवं परिसीमाओं से ऊपर उठाकर भारतीयता से साक्षात्कार कराता है। देश की साहित्यिक–सांस्कृतिक विरासत के दर्शन अनुवाद से ही संभव है। आज यदि भारतीय भाषाओं के कई यशस्वी लेखकों की रचनाएँ अनुवाद के जरिए हम तक नहीं पहुँचती तो भारतीय साहित्य सम्बन्धी हमारा ज्ञान कितना सीमित कितना क्षुद्र होता इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

अनुवाद कार्य भारत की बहु–आयामी सांस्कृतिक–परम्पराओं और उपलब्धियों के समन्वय का पर्याय कहा जा सकता है। इस सागर में भारतभूमि पर धार्मिक, वैचारिक, साम्प्रदायिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक एकता का संगम हुआ है। समूचे देश की भौगोलिक सीमा में बिखरी सांस्कृतिक विरासतों और जीवन मूल्यों की सामाजिक छवि को अनुवाद–प्रक्रिया ने सही दिशा दी। अनुवाद देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करने वाला एक महत्तर भाषिक साधन है। विशेष रूप से यह एक औजार है जो भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विभेदों को स्थानीय तथा वैश्विक स्तर पर दूर करके परस्पर सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। विश्व की अनगिनत भाषाएँ आज अपनी–अपनी संस्कृतियों और जीवन की विधियों को संचालित कर रही है। इन विविधताओं में समन्वय स्थापित करने का एकमात्र साधन अनुवाद है।

अनुवाद ने अध्ययन और अध्यापन को व्यापकता दी है। अनुवाद ने भारतीय साहित्य के अध्येताओं को एक–दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया है। अनुवाद ने न केवल पाठकीय रूचि को अंतर्राष्ट्रीय आस्वाद प्रदान किया है बल्कि अध्ययन और अनुसंधान को नई दिशाएँ भी दी है। अंतर्राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन ने अतीत और वर्तमान के विश्व से परिचित कराया है। सारे संसार की विभिन्न भाषाओं में विविध विधाओं में रचे जा रहे साहित्य के अध्ययन में संलग्न अध्येताओं के शिक्षण में भी अनुवाद की

अनवरत भूमिका लक्षित होती है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विभाजन के इस दौर में एकता की कड़ियों को जोड़ने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो सका है। अनुवाद वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा राष्ट्र की एक सूत्रता को सही दिशा मिली है। अनुवाद ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के बंधन में बाँध रखा है और राष्ट्रीयता के सूत्रों को विश्रृंखलित होने से रोका है।

विश्व समाज भिन्न–भिन्न राष्ट्रों, धर्मों, वर्णों और जातियों में विभक्त है। हर राष्ट्र और समाज की अपनी भाषिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान होती है। राष्ट्र की पहचान उसकी अपनी राष्ट्रभाषा से होती है। इस विभाजित मानव समुदाय को भावात्मक और भावनात्मक धरातल पर जोड़कर उनके मध्य बनी हुई विषमता की खाई को पाटना ही अनुवाद का प्रधान लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुवाद एक सेतु बन गया है। इस विभाजक अंतराल को समाप्त कर विभिन्न संस्कृतियों में भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए अनुवाद एक सशक्त साधन के रूप में उपलब्ध है। राष्ट्रीय, भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और जातीय अलगाव को खत्म कर भावात्मक एकीकरण के लिए अनुवाद की उपयोगिता आज विश्व स्तर पर सिद्ध हो चुकी है। भाषिक विभिन्नता की दरार भी अनुवाद ने ही मिटायी है। अनुवाद के द्वारा परस्पर एक–दूसरे की सांस्कृतिक विरासत को साहित्य के माध्यम से समझकर सहिष्णुता का संवर्धन किया जा सकता है।

राष्ट्रीय एकात्मकता आज की अनिवार्य आवश्यकता है। भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए अनुवाद अत्यन्त प्रभावी और उपयोगी माध्यम है जिससे कि देश में व्याप्त भाषिक विभेद को दूर करके जन सामान्य में परस्पर एक–दूसरे की भाषा और संस्कृति के प्रति सदभावना जाग्रत हो सके। अनुवाद जैसे सशक्त और कारगर माध्यम की आवश्यकता सबसे अधिक भारत को ही है। भारतीय संदर्भ में प्रादेशिक और क्षेत्रीय भाषाओं को परस्पर एक–दूसरे के निकट लाने का सबसे व्यावहारिक माध्यम ही अनुवाद है। राष्ट्रीय एकात्मकता के लिए भारतीय भाषाओं में उपलब्ध साहित्य का अनुवाद संस्कृत तथा संस्कृत साहित्य का इतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद राष्ट्रीय हित में आवश्यक है। स्वैच्छिक रूप से भाषा–प्रेमी विद्वान् अपनी अभिरूचि के अनुकूल साहित्यिक अनुवाद के कार्य में संलग्न है लेकिन अनुवाद के क्षेत्र को सुसंगठित होने की आवश्यकता है।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक अनुवाद ने कई मंजिले तय की हैं। यह सच है कि आधुनिककाल में अनुवाद को जो गति मिली है, वह अभूतपूर्व है। मगर यह भी उतना ही सत्य है कि अनुवाद की आवश्यकता हर युग में हर काल में तथा हर स्थान पर अनुभव की जाती रही है। विश्व में द्रुतगति से हो रहे विज्ञान और तकनीकी तथा साहित्य धर्म–दर्शन–अर्थशास्त्र आदि ज्ञान–विज्ञान में विकास ने अनुवाद की आवश्यकता को बहुत अधिक बढ़ावा दिया है।

सभ्यता के मौजूदा दौर में अनुवाद की अपरिहार्यता का अनुभव इसी कारण तीव्रता से किया जा रहा है कि संसार के किसी भी देश, भाषा और व्यक्ति के लिए, शेष विश्व की तमाम उपलब्धियों से जुड़ने के लिए अनुवाद से बहेतर कोई माध्यम नहीं है। भाषाओं के पारस्परिक आदान–प्रदान से मनुष्य के वैचारिक तथा अभिव्यंजनामूलक स्वरूप में परिवर्तन द्वारा अनुवाद ने अपनी उपयोगिकता प्रमाणित की है। राष्ट्रीय एकता से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय समीपता तक अनेक सामाजिक सूत्रों का नियमन अनुवाद से संभव होता है। ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में संसार की प्रगति और उपलब्धियों की अद्यतन जानकारी के लिए भी मनुष्य अनुवाद पर निर्भर है। नये तकनीकी संसाधनों और अधुनातन अनुसंधानों से परिचित होने के लिए अनुवाद ही सर्वसुलभ माध्यम है। शेष विश्व के सामने अपनी पहचान सुरक्षित रखने और अनवरत विकासमान सभ्यता की दौड़ में पिछड़ने से बचने के लिए अनुवाद का उपयोग करना मनुष्य और समाज के लिए परम आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि में अनुवाद के वर्तमान और भविष्य के बारे में कोई संदेह नहीं होनी चाहिए। अनुवाद की उपादेयता आज की जरुरत है और आने वाले कल का स्वाभाविक विकास उपकरण होगा।

आने वाली शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति की शताब्दी होगी और सम्प्रेषण के नये–नये माध्यमों व आविष्कारों से वैश्वीकरण के नित्य नए क्षितिज उद्घाटित होंगे। इस सारी प्रक्रिया में अनुवाद की महती भूमिका होगी। इससे 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की उपनिषदीय अवधारणा साकार होगी। इस दृष्टि से सम्प्रेषणव्यापार के उन्नायक के रूप में अनुवादक एवं अनुवाद की भूमिका निर्विवाद रूप से अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

(ख) भारतीय अनुवाद परम्परा

प्राचीन भारतीय साहित्य में न तो अनूदित साहित्य मिलता है और न ही अनुवाद विधा ही। अनुदित साहित्य न मिलने का कारण बताते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि– "उस काल में साहित्य तथा ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में भारत सबसे आगे था। भारतीय साहित्यकारों ने जो कुछ बाहर से सीखा–समझा उसे आत्मसात् करके अपने शब्दों में अपने ढंग से व्यक्त किया जिसे अनुवाद नहीं कह सकते। हो सकता है कि कुछ अनुवाद हुए हों लेकिन कालचक्र ने उन्हें ढोना आवश्यक समझा।"[34]

डॉ. रामगोपाल सिंह के अनुसार "प्राचीन भारतीय साहित्य में अनुवाद शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है लेकिन यह पुनः कथन, पश्चात् कथन, दुहराना, कहना, आवृत्ति, गुरु की बात का शिष्य द्वारा दुहराया जाना, सार्थक आवृति, विधि या विहित का पुनः कथन आदि अर्थों में ही देखने को मिलता है।"[35]

डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि "ऋग्वेद के कुछ अंशों की रचना आर्यों के भारत में आने से पूर्व हो चुकी थी। यही बात जेंदावेस्ता के बारे में भी सत्य है। अवेस्ता की अनेक पंक्तियों का ध्वन्यात्मक परिवर्तन करने से वे वैदिक संस्कृति की पंक्तियाँ बन जाती है। अतः ऋग्वेद तथा अवेस्ता दोनों के ही कुछ अंश ऐसे थे जो मूलतः उस मूल भाषा में रचे गए थे, जो इन दोनों की जननी थी और आज जो रूप इन दोनों में उपलब्ध है वे शायद जननीभाषा से उन पुत्री भाषाओं में सहज परिवर्तन के कारण हुए रूपांतर है।"

प्राचीन भारतीय साहित्य में जिस तरह संस्कृत भाषा में अनुवाद की कोई कड़ी नहीं मिलती उसी तरह पालि भाषा में भी अनूदित साहित्य देखने को नहीं मिलता। डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि "अशोक के शिलालेखों पर प्राप्त सामग्री मूलतः शायद परिनिष्ठित पालि में लिखी गई होगी और फिर स्थानीय बोलियों में उनका अनुवाद करके उन्हें शिलांकित किया गया होगा। बरमा की पालि में धम्मपद का मुक्तानुवाद हुआ था। पहली सदीं से तिब्बत तथा चीन में भारतीय ग्रन्थों के अनुवादों की परम्परा चली। प्रायः लोग यह मानते हैं कि उस परम्परा में पालि ग्रन्थों के भी अनुवाद हुए परन्तु अभी तक जो ग्रंथ मिले हैं, सारे के सारे बौद्ध संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद है न कि पालि ग्रन्थों के।"[36]

भारत में उस समय संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाओं से विदेशी भाषाओं में खूब अनुवाद हुए परन्तु विदेशी भाषा से भारतीय भाषाओं में कोई भी अनुवाद नहीं हुआ था। डॉ. रामगोपाल सिंह के अनुसार प्राचीन संस्कृत भाषा में ही नहीं बल्कि पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में भी न तो अनूदित साहित्य ही देखने को मिलता है और न ही अनुवाद विधा। अपभ्रंश साहित्य इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उसमें जो कुछ भी संचित ज्ञान है वह मौलिक है।[37]

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार प्राकृत अपभ्रंश में पूरी–की–पूरी कोई अनूदित रचना तो कदाचित् नहीं मिलती परंतु संस्कृत की 'वाल्मीकि रामायण', 'मेघदूत', 'शाकुंतल' आदि अनेक रचनाओं की कुछ पंक्तियाँ या छन्दों के छायानुवाद **'महावीर–चरिउ', 'पउमचरिउ', 'भविसपत कहा', 'सुदंसण चरिउ'** आदि प्राकृत–अपभ्रंश की कृतियों में मिल जाते हैं।[38]

संस्कृत भाषा में अनुवाद की परम्परा शुरुआत में तो व्यवस्थित रूप से देखने को नहीं मिलती, क्योंकि संस्कृत भाषा सभी भाषाओं की जननी है। सम्पूर्ण ज्ञान की राशि वेद, इतिहास ग्रंथ रामायण, महाभारत, नीति ग्रंथ, आयुर्वेद ग्रंथ, दर्शन ग्रंथ आदि सभी संस्कृत भाषा में ही लिखे गए थे। अतः इतर भाषा के ग्रन्थों का इतर भाषाओं में अनुवाद बहुतायत में देखने को मिलता है।

अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत भाषा में भी अनूदित रचना दो प्रकार से देखने को मिलती है। एक तो रचना का अनुवाद और दूसरा रचना के किसी अंश का अनुवाद। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "अनूदित साहित्य मुख्य रूप से दो रूपों में मिलता है। एक तो व्यवस्थित रूप से किसी कृति के अनुवाद के रूप में और दूसरे विभिन्न लेखकों की रचनाओं में यत्र–तत्र दूसरे के कृति अंशों या छंदों के छायानुवाद या प्रभाव रूप से। साहित्यकार प्रायः बहुपठित या बहुश्रुत होता है अतः उसके अनेक अंश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देश–विदेश की भाषाओं की पूर्व प्रकाशित कृतियों या उनके अंशों से प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव कभी–कभी तो अनुवाद रूप में पड़ा मिलता है तो कभी–कभी मात्र छायारूप में।[39] संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम ने कहा था "यद्यपि भारत में पाँच सौ से अधिक बोलियाँ प्रचलित है परन्तु हिन्दुत्व को मानने वाले सभी व्यक्तियों के

लिए चाहे वे किसी भी जाति, कुल, मर्यादा, सम्प्रदाय या बोलियों की भिन्नताओं के क्यों न हों, सर्व सम्मति से स्वीकृत और समादृत एक ही पवित्र भाषा और साहित्य है और वह भाषा है– संस्कृत और साहित्य है संस्कृत साहित्य।"[40]

अपने समय में संस्कृत भाषा अति समृद्ध थी। ज्ञान, विज्ञान आदि के क्षेत्र में संस्कृत भाषा इतनी समृद्ध थी कि विदेशी अन्य भाषाओं से कुछ भी ग्रहण करने का अवकाश ही नहीं था। सुश्रुत, चरक आदि असंख्य आयुर्वेदाचार्यों ने संस्कृत भाषा को समृद्धि दी है। वैदिक समय से लेकर मुसलमान सत्ता के आने तक संस्कृत भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला हुआ था।

जब देशे छोटे–छोटे राज्यों और प्रांतों में बँटा हुआ था तो संस्कृत को परस्पर कार्य व्यवहार के लिए महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में अपनाया था। इन राज्य इकाईयों को तत्कालीन व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्र का नाम दिया जाता था और लगभग सभी राज्यों में राजभाषा के रूप में संस्कृत का प्रयोग होता था। मुस्लिम सत्ता के आने के कारण राजभाषा के रूप में फारसी–अरबी के प्रचलन से संस्कृत भाषा पर से राजकीय संरक्षण हट गया।[41]

आधुनिक युग में विभिन्न भारतीय तथा वैदेशिक भाषाओं के सुन्दर काव्यों के संस्कृत भाषा में अनुवाद की भी प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हुई। संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास के सप्तम खण्ड में सम्पादक जगन्नाथ पाठक ने अनूदित रचनाओं की सूची दी है, जो निम्नानुसार है–

1. एम.ओ. आवरा के मूल मलयालम काव्य का श्री के.पी. नारायण पिषारोटी कृत 'महात्यागी' नाम से किया गया अनुवाद।
2. उमर खैयाम की रूबाइयों का पं. गिरिधर शर्मा द्वारा 'अमरसूक्तिसुधाकर' नाम से किया गया अनुवाद।
3. वी.सुब्रह्मण्य अय्यर द्वारा 'पद्यपुष्पाञ्जलि' नाम से किया गया अंग्रेजी कविताओं का संस्कृतानुवाद।
4. मराठी कवि मोरो पन्त की कविताओं का डी.टी. सूकतिकर द्वारा 'गीर्वाणकेकावली' नाम से किया गया अनुवाद।

5. टैगोर की बँगला कविताओं का फटिकलाल दास कृत पद्यानुवाद।
6. 'तिरुक्कुरल' तमिल कविता का अप्पा वाजपेयी द्वारा किया गया 'सुनीतिकुसुममाला' नामक काव्यानुवाद।
7. तमिल कवि औव्वई की कविताओं का वाई महालिङ्ग शास्त्री द्वारा 'द्रविडार्यसुभाषितसप्तति' नाम से किया गया अनुवाद।
8. तेलगुभाषा के तेलगुशतक, सुमतिशतक, वेमनशतक, दाशरथिशतक, कृष्णशतक, भास्करशतकों के चितिगुदुरु वरदाचारियर कृत अनुवाद।
9. श्री अरविन्द की कविताओं का टी.वी. कपालि शास्त्री द्वारा 'कविताञ्जलिः' नाम से किया गया अनुवाद।
10. रघुनाथ चौधरी के असमिया भाषा में लिखित काव्य का 'केतकीकाव्यम्' नाम से पं. मनोरञ्जन शास्त्री द्वारा किया गया अनुवाद।
11. मलयालम कवि कुमारन् आशान् के काव्य का एन. गोपाल पिल्लई द्वारा 'सीताविचारलहरी' नाम से किया गया अनुवाद
12. हिन्दी भाषा के कवि बिहारी की सतसई का प्रेम नारायण द्विवेदी कृत 'सौन्दर्यसप्तशती' नामक अनुवाद।
13. अंग्रेजी कवियों की कविता का गोविन्दचन्द्रपाण्डेय द्वारा 'अस्ताचलीयम्' के नाम से किया गया अनुवाद।[42]

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास के पंचम खण्ड में प्रो. जयमंता मिश्र ने संस्कृत में अनुदित कथाओं की सूची दी है—

1. गोविन्द कृष्ण मोडक	—	चोरचत्वारिंशीकथा (अरेबियन नाइट्स की कथाओं का अनुवाद)
2. कृष्ण सोमयाजी	—	कणः लुप्तः गृहं दहति (अ स्पार्क नेगलेक्टेड वर्न्स द हाउस' नामक टाल्स्टाय के अंग्रेजी नाटक का अनुवाद)

3. हरिचरण भट्टाचार्य — कपालकुण्डला (बङ्किचन्द्र के सुप्रसिद्ध बंगला नाटक का अनुवाद)।

4. एस. वेङ्कटरामशास्त्री — कथाशतकम् (भारत की प्रादेशिक भाषाओं की एक सौ कहानियों का अनुवाद)

5. जगन्नाथ — कथामञ्जरी (अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी की श्रीमाता द्वारा फ्रेंच भाषा में लिखित नीति–कथाओं का रूपान्तर)

6. एम. अहमद — दुःखोत्तरं सुखम् (जामे उल्लिकायान नामक फारसी कथा–संग्रह का अनुवाद)

7. श्रीधर — कथाकौतुकम् (युसुफ और जुलेखा नामक फारसी कथा का संस्कृत अनुवाद)

8. एन. गोपाल पिल्लई — सीताविचारलहरी (मलयालम भाषा की कथाकृति का अनुवाद)[43]

इनके अलावा मराठी, कन्नड, ओडिसी, गुजराती आदि भाषाओं के साहित्य का भी संस्कृत भाषा में अनुवाद किया गया है। कुछ महत्त्वपूर्ण अनूदित रचनाएँ निम्नलिखित है–

मराठी से संस्कृत में अनूदित

मराठी साहित्य में रचित भावगीतों, भक्तिगीतों, नाट्यगीतों, चित्रपटगीतों, देशभक्तिपरक गीतों का संस्कृत में अनुवाद किया गया है। प्रो. विमल लेले ने मराठी के प्रसिद्ध गीतों का अनुवाद कर 'अथ स्वागतम्' नाम काव्यग्रन्थ की रचना की। उन्होंने मराठी भाषा के राजा बढ़े कवि द्वारा लिखित भावगीत 'चांदणे शिंपीत जाशी चालता तू चंचले' का 'चन्द्रिकां ननु सिञ्चसि त्वं चरणयोनिः क्षेपणे' नाम से अनुवाद किया।

डॉ. देवी प्रसाद खरवण्डीकर ने ग.दि. माडगूळकर द्वारा रचित मराठी गीतों 'गा बाळानोश्रीरामायण', 'दैवजात दुःखे भरता दोष ना कुणाचा' आदि का संस्कृतानुवाद किया।

कन्नड से संस्कृत में अनूदित

कूवेम्पु कवि द्वारा रचित 'रामायणदर्शन' का प्रो. सी.जी. पुरुषोत्तम ने 'श्रीरामायणदर्शनम्' नाम से अनुवाद किया। श्रीनिवास द्वारा रचित 'सुभान्ना' नामक उपन्यास का एच.एन. वेंकटेश शर्मा ने अनुवाद किया। डॉ. एस.एल. भैरप्पा के उपन्यास 'धर्मश्री' का जनार्दन हेगड़े ने 'धर्मश्रीः' नाम से अनुवाद किया।

ओड़िसी से संस्कृत में अनूदित

पंडित गोपबंधु दास द्वारा विरचित 'बन्दिर स्वदेशचिंता' का पं. प्रबोधकुमार मिश्र ने 'बन्दिनः स्वदेशचिन्ता' नाम से अनुवाद किया।

गुजराती से संस्कृत में अनूदित

गुजराती लोककथाओं ना गुर्जरी, जसमा ओडणम्, महासती तोकलम्, होथल पद्मिनी का घनश्याम त्रिवेदी ने अपनी पुस्तकों नूतननाट्यप्रस्थानम् तथा नूतन नाट्य कौमुदी में अनुवाद किया।

हिन्दी से संस्कृत में अनूदित

हिन्दी साहित्य की सर्वप्रमुख रचना 'रामचरितमानस का अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत में भी अनुवाद हुआ है। डॉ. जनार्दन गंगाधर रटाटेजी ने भुवनवाणी ट्रस्ट के सहयोग 'मानसभारती' नामक संस्कृतानुवाद किया। रामूक द्विवेदी, श्रीमन्नाराचणाचार्यस्वामी, सुधाकर महोदय, नलिनी साधले आदि ने भी रामचरितमानस का संस्कृतानुवाद किया। जयशंकर प्रसाद कृत ध्रुवस्वामिनी नाटक का श्रीराम दवेजी ने गीर्वाणगिरा संस्कृत में अवतारित किया।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, पं. परमानन्द भट्ट और डॉ. प्रेमनारायण द्विवेदी ने 'बिहारी सतसई' का संस्कृतानुवाद किया।

अरबी–फारसी, उर्दू से संस्कृत में अनूदित

संस्कृत से अरबी–फारसी तथा उर्दू भाषा में अनुवाद तो समय–समय पर होते रहे हैं, किन्तु इन भाषाओं के साहित्य का संस्कृत में अनुवाद का कार्य बीसवीं सदी में प्रारम्भ हुआ। हजरत शेख सादी की 'गुल्सिताँ' के दो अनुवाद 'प्रसूनवाटिका' तथा 'पुष्पोद्यान'

हुए। उमर खैय्याम की रुबाईयों का नारायणदास, गिरिधर शर्मा, एम.आर. राजगोपाल अयंगार तथा पी.वी. कृष्णन नायर ने अनुवाद किया। 'अली बाबा और चालीस चोर' तथा 'अलादीन और उसका जादुई चेराग' का अनुवाद भी उर्दू से संस्कृत में हुआ। गढ़वाल के श्री गुंदे लाल हरकरे ने 'कुर्आने शरीफ' के पाँच अध्यायों का अरबी से संस्कृत में अनुवाद किया। उर्दू के प्रसिद्ध शायर ग़ालिब की रचना दीवान–ए–ग़ालिब का जगन्नाथ पाठक ने संस्कृतानुवाद किया। सदाशिव डाँगे ने उमर ख़य्याम की रुबाईयत का 'भावचषक' शीर्षक से संस्कृत में अनुवाद किया। ग़ालिब की फारसी मनस्वी 'चरागे दैर' का अनुवाद 'देवालस्य दीपः' शीर्षक से डॉ. नाहीद आबिदी ने किया।

निष्कर्षतः मानवता की दृष्टि से सभी देशों–प्रदेशों के मनुष्य मूलतः एक है पर भौगोलिक? सांस्कृतिक? सामाजिक? आर्थिक? और भाषिक सीमाएँ उन्हें एक–दूसरे से अलग कर देती है। इनमें भाषा की सीमा सबसे बड़ी सीमा है। विदेशों की बात तो दूर अपने ही देश में विभिन्न प्रदेशों के लोग एक–दूसरे की भाषा न समझने के कारण एक–दूसरे से अजनबी हो जाते हैं। मानव–मन स्वभावतः सीमाओं में बँधकर रुद्ध नहीं होना चाहता, बल्कि वह इन सीमाओं को लाँघकर विश्वभर में व्यापने के लिए तड़पता है। भाषा की सीमाओं को लांघने का सबसे बड़ा माध्यम अनुवाद है। भाषा के आविष्कार के बाद जब मनुष्य समाज का विकास–विस्तार होता चला गया और सम्पर्कों एवं आदान–प्रदान की प्रक्रिया को अधिक फैलाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, तो अनुवाद ने जन्म लिया। इन दिनों अनुवाद सेवाओं की माँग काफी बढ़ रही है। अनुवाद की जरुरत केवल साहित्य तथा अंतः सांस्कृतिक कार्यकलापों के संवर्द्धन के लिए नहीं है, बल्कि यह तकनीक एवं स्थानिकीकरण की प्रक्रिया के अभिन्न अंग बन चुके वैश्वीकरण के परिदृश्य में कदम से कदम मिलाकर चलाने के लिए भी अत्यावश्यक साधन है।

(2) ग़ालिब काव्यम्' का अध्ययन

(क) मूल रचनाकार तथा रचना का परिचय

ग़ालिब उर्दू के अत्यन्त लोकप्रिय है जिन्हें इकबाल ने गेटे के समकक्ष माना है। साहित्य के हजारों साल लम्बे इतिहास में जिन चन्द काव्य–विभूतियों को विश्वव्यापी सम्मान प्राप्त है, ग़ालिब उन्हीं में से एक है। उर्दू के इस महान शायर ने अपनी युगीन

पीड़ाओं को ज्ञान और बुद्धि के स्तर पर ले जाकर जिस खूबसूरती से बयान किया, उससे समूची उर्दू शायरी ने एक नया अन्दाज़ पाया और वही लोगों के दिलो–दिमाग़ पर छा गया। उनकी शायरी में जीवन का हर पहलू और हर पल समाहित है। इसलिए वह जीवन की बहुविध और बहुरंगी दशाओं में हमारा साथ देने की क्षमता रखती हैं।

मिर्जा असद–उल्लाह बेग ख़ा उर्फ ग़ालिब उर्दू तथा फारसी के महान शायर थे इनको उर्दू का सर्वकालिक महान शायर माना जाता है और फ़ारसी कविता के प्रवाह को हिन्दुस्तानी जवान में लोकप्रिय करवाने का भी श्रेय दिया जाता है। ग़ालिब का जन्म आगरा में एक सैनिक पृष्ठभूमि वाले परिवार में हुआ था। ग़ालिब मुग़ल काल के आख़िरी शासक बहादुर शाह ज़फ़र के दरबारी कवि थे।

मिर्ज़ा ग़ालिब का जन्म 27 दिसंबर सन् 1796 को आगरा के काला महल में हुआ था। ग़ालिब ने अपनी जिंदगी का लंबा वक्त आगरा शहर के बाजार सीताराम की गली कासिम जान में हवेली में गुजारा है।

पढ़ने लिखने के शौक़ीन ग़ालिब बड़े स्वाभिमानी हँसने हँसाने वाले, उदार प्रकृति, करुण ह्रदय, अतिथियों का स्वागत सम्मान करने वाले, दोस्तों और मिलने वालों से प्रेम निष्ठा का व्यवहार निभाने वाले प्राणी थे। जीवन संघर्षों ने उन्हें हौसले के साथ जीना सीखा दिया था। उनका शेर है–

"रंज से खूगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज
मुश्किले इतनी पड़ी मुझ पर कि आसाँ हो गयीं।"

ग़ालिब की ग़जलों में इश्क़ और मुहब्बत के साथ–साथ जीवन और समाज की समस्याओं का हर रंग मिलता है। विभिन्नता की विषमता, चिंतन की गहराइयाँ, विचारों की जो स्वछंदता तथा स्वतंत्रता मिलती है, शब्दों की परतों में जितने अर्थ और भाव छिपे होते हैं उसके उदाहरण अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलते हैं।

काव्यशास्त्र की दृष्टि से ग़ालिब ने स्वयं को 'गुस्तारव' कहा है, लेकिन यही उनकी खूबी बनी। उनकी शायरी में जो हल्के विद्रोह का स्वर है, जिसका रिश्ता उनके आहत स्वाभिमान से ज्यादा है, उसमें कहीं शंका, कहीं व्यंग्य और कहीं कल्पना की जैसी ऊँचाइयाँ हैं, वे उनकी उत्कृष्ट काव्य–कला से ही सम्भव हुई है। इसी से उनकी ग़ज़ल प्रेम–वर्णन से बढ़कर जीवन–वर्णन तक पहुँच पाई। अपने विशिष्ट सौन्दर्यबोध से पैदा

अनुभवों को उन्होंने जिस कलात्मकता से शायरी में ढाला, उससे न सिर्फ वर्तमान के तमाम बन्धन टूटे, बल्कि वह अपने अतीत को समेटते हुए भविष्य के विस्तार में भी फैलती चली गई।

ग़ालिब को पढ़कर यह लगता है वह कट्टरपंथ के विरुद्ध उदारवाद, रूढिवाद से परे प्रगतिवाद, इन्स़ानियत और भाईचारे में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे।

दीवान–ए–ग़ालिब में ग़ालिब के उर्दू काव्य का संकलन है। इसमें ग़ालिब के द्वारा लिखी गई लगभग 239 रुबाईयों/ग़ज़लों का संकलन है। इसमें ग़ालिब ने जीवन के विभिन्न पहलुओं के रेखाचित्र खींचे हैं।

ग़ालिब काव्यम् का सामान्य परिचय

डॉ. जगन्नाथ पाठक ने मिर्ज़ा ग़ालिब द्वारा लिखित दीवान–ए–ग़ालिब की लगभग 240 ग़जलों का संस्कृतानुवाद किया जो ग़ालिब–काव्यम् के नाम से प्रसिद्ध है। काव्य की भूमिका में कवि ने 9 श्लोकों के माध्यम से ग़ालिब–काव्य की प्रस्तावना दी है। कवि ने ग़ालिबकाव्यम् की भूमिका में महाकवि कालिदास की भाँति अपनी विनयशीलता का परिचय देते हुए कहा है कि ग़ालिब काव्यं पर अपनी कलम चलाना ठीक वैसे ही है जैसे एक पङ्गु गिरिलङ्घन का प्रयास कर रहा हो–

"काव्यं क्व 'ग़ालिबस्य' क्व च मन्दधीर्हन्त कोऽपि जन्तुरहम्
गिरिलङ्घनप्रवृत्तो ह्युपहसनीयोऽस्मि पङ्गुरिव।"[44]

भूमिका के बाद कवि ने 'दीवाने ग़ालिब की 235 ग़ज़लों का आर्या छन्द में पद्यानुवाद किया है। इसके बाद परिशिष्ट–1 नामक शीर्षक में 40 स्फुट कविताओं का पद्यानुवाद किया है। परिशिष्ट–2 में स्व. डॉ. सर मुहम्मद इक़बाल द्वारा मिर्जा ग़ालिब पर लिखित कविता का अनुवाद 'मिर्जा ग़ालिब' नामक शीर्षक से किया है। परिशिष्ट–3 में कवि ने 'महाकवि ग़ालिबं प्रति' नामक शीर्षक से 26 आर्या छन्दों में महाकवि ग़ालिब के प्रति अपने भाव प्रकट किये हैं।

कवि स्वयं कहता है कि एक भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में करना प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के लिए भी कठिन काम है– "ग़ालिब–काव्यमिदं 'दीवाने ग़ालिब' इत्यस्य

आर्याछन्दसि संस्कृतानुवादः। प्रतिपदं गम्भीरस्य काव्यस्यास्य कस्याञ्चिदप्यन्यस्यां भाषायामनुवादः, सोऽपि पद्यानुवादः कश्चन दुष्करः प्रयासः।"[45] डॉ. बच्चूलाल अवस्थी ने अपने लेख में ग़ालिब–काव्यम् के विषय में लिखा है– "यहाँ उर्दू कवि ग़ालिब ने जो उर्दू–बैखरी में अनुक्त किया, उसे संस्कृत में पुनर्वचन करना दुहरे श्रम की अपेक्षा रखता है। कवि पाठक ने पहले ग़ालिब के काव्य को पढ़ा। बैखरी की उस अभिव्यक्ति को भावना में उतारा/वहाँ से वे अपनी मेघा में ले गये कि वागर्थ की प्रतिपत्ति के समीप पहुँच सके और प्रतिभा के उन्मेष के साथ जो तन्मयता मिली, वह सहृदय रसिक की तन्मयता है, जो उसे कविता के मूल में पहुँचा देती है और वह तल्लीन होकर जो अद्वैत संवेदना प्राप्त करता है, वहाँ वह कवि के साथ अभेद प्राप्त करता है। यही चमत्कार है।"[46]

(ख) ग़ालिब–काव्यम् की महत्त्वपूर्ण ग़जलों का अध्ययन

1. मूल ग़ज़ल

नक़्श फ़रियादी है किसकी शोख़ि–ए–तहरीर का
काग़जी है पैरहन हर पैकरे तस्वीर का
कावे–कावे सख़्त जानी हा–ए–तन्हाई न पूछ
सुब्ह करना शाम का, लाना है जू–ए–शीर का
जज्ब़ः–ए–बेइख़्तियारे शौक़ देखा चाहिए
सीनः–ए–शमशीर से बाहर है, दम शमशीर का
आगही, दामे शुनीदन जिस क़दर चाहे, बिछाए
मुद्द आ अन्क़ा है, अपने आलमे तक़रीर का
बसकि हूँ ग़ालिब, असीरी में भी आतश ज़ेरे पा
मू–ए–आतश दीदः, है हल्क़ः मेरी ज़ंजीर का[47]

अनुवाद

कार्यार्थि कस्य तावद् रचना सौन्दर्य चिह्नमेतदहो।
कार्गदपरिधानधरा सर्वा चित्राकृतिर्भाति।।
मा पृच्छ कष्टमस्मानेकान्ते यापनस्य कठिनस्य।
सन्ध्याप्रभातकरणं दुग्धस्रोतः समानयनम्।।

प्रबलतमस्याकलनं ह्रदयावेगस्य कार्यमेतर्हि।
खड्गस्य वक्षसो ननु बहिर्गता खड्गधारा हि।।
प्रतिभानं श्रवणाख्यं विधिना केनापि जालमातनुयात्।
तात्पर्यं काल्पनिको रचनाजगतः खगः स्वस्य।।
कारागतस्य वह्निर्ज्वलति ममाङ्घ्रिद्वयस्य तलदेशे।
'ग़ालिब' केशो ज्वलितो मम बन्धनशृङ्खला तावत्।।[48]

विशेष

पाठक जी ने कठिन शब्दों का संस्कृत अर्थ पाद–टिप्पणी में दे रखा है, जिससे उर्दू न जानने वाला पाठक भी ग़ज़लों का आनन्द ले सके। उपर्युक्त अनुवाद में पाठक जी ने ग़ालिब के भाव को हू–ब–हू संस्कृत में उतारा है। ग़ालिब की पीड़ा, उनकी सहनशीलता, उनका समर्पण स्वयं की नियंत्रण शक्ति, जो कि इस ग़जल में नज़र आती है, को पाठक जी ने उसी सरसता के साथ संस्कृत में पाठक तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

2. मूल–ग़ज़ल

सताइशगर है ज़ाहिद इस क़दर जिस बाग़े रिज़्बाँ का
वह इक गुलदस्तः है हम बेखुदों के ताक़े निसियाँ का
बयाँ क्या कीजिये बेदादे काविशहा–ए–मिशगां का
कि हर इक़ क़तर–ए–खूँ दानः है तस्बीहे मरजां का
न आई सतवते क़ातिल भी माने अ मेरे नालों को
लिया दाँतों में जो तिनका, हुआ रेशः नयस्ता का
दिखाऊँगा तमाशा, दी अगर फ़ुर्सत ज़माने ने
मेरा हर दाग़े दिल, इक तुख्स है सर्वे चराग़ाँ का
किया आईनः ख़ाने का वह नक़्शः तेरे जल्वे ने
करे, जो परतवे ख़ुरशीद, आलम शबनमिस्तां का
मेरी तामीर में मुज़्मर है इक सूरत ख़राबी की
हयूला बर्के ख़रमन का है, खूँने गर्म देहकां का[49]

अनुवाद –

धार्मिक एवमितोऽस्ति स्वर्गोद्यानस्य शस्तिपरः।
तत् स्वात्मारामाणां गवाक्षगत पुष्पपात्रं न।।
दृक्पक्ष्मचापलानामन्यायो हन्त किं मयाऽऽख्येयः।
प्रत्येक मम लोहित पृषत् प्रवालस्रजो मणिका।।
बधकस्य न प्रभावो मदार्तनादान् क्षमो वशीकर्तुम्।
यद् दशनेषु गृहीतं तत् तृणमपि वेणुतामभजत्।।
दीयेतावसरो में यदि जगता कौतुकं प्रदर्श्येत।
प्रत्येकं ह्रदयाङ्को मम दीपस्त्रक्तरोर्बीजम्।।
त्वत्सौन्दर्येण कृता दर्पणभवनस्य सा दशा तावत्।
यां कुरुते रविरश्मिस्तुषारभरित–प्रदेशस्य।
मम निर्माणे लीनं किमपि रहस्यं पर विनाशस्य।
कृषकस्य तप्तरुधिरे तत्त्वं खलधान्यव्रजस्य।।[50]

विशेष – सुबह की सूर्य की किरण तुषारपूर्ण प्रदेश में पड़ने पर जैसे हर शिशिर–बिन्दु में सूर्य के प्रकाश दिखने के कारण वह प्रदेश जगमाग उठता है, वैसी ही दशा नायिका के सौन्दर्य से प्रतिफलित शीशमहल की हुई–इस भावयुक्त ग़जल के अनुवाद में भावप्रवणता एवं रामात्मकता है।

3. **मूल ग़ज़ल**

जब बतक़रीबे सफ़र यार ने महफिल बाँधा
तपिशे शौक़ ने हर ज़र्रे पर इक दिल बाँधा
अहले वीनश ने बहैरत कदः–ए–शोख़ि–ए–नाज़
जौहरे आइनः को तूति–ए–बिस्मिल बाँधा
न बँधे तश्नगि–ए–ज़ौक के मजमूँ ग़ालिब
गरचेः दिल खोल के दरिया को भी साहिल बाँधा[51]

अनुवाद

यात्रा प्रसङ्गतः खलु यदा प्रियेणोष्ट्काष्ठिका बद्धा।
प्रतिकणमेकं बद्धं हृदयं काङ्क्षोष्मणा नु तदा।।
सौन्दर्यचञ्चलत्वजविस्मयतो दृग्वता नु दृष्टं यत्।
दर्पणहरितिम्नीव क्षुद्रः शुक आहतो बद्धः।।
आशानैराशाभ्यां युद्धस्थलमेकमर्थितं तावत्।
प्रणयपिपासाविषयान् 'ग़ालिब' न प्राभवं निबन्धुमहम्।
यद्यप्युन्मुक्तहृदा तटेन बद्धो मयाऽब्धिरपि।।[52]

विशेष

प्रिया के बिछड़ कर जब प्रियतम विदेश जाने की तैयारी करता है तब प्रिया पर क्या गुजरती है, इस बात का हृदय संवेद्य चित्रण इस काव्य में देखने को मिलता है। उसको ऐसा अनुभव होता है कि जैसे वह उष्ट्रकाष्ठिका के हर कण पर एक हृदय बाँध कर चलने का प्रयास कर रह हो।

4. मूल ग़ज़ल

अर्जे नियाजे इश्क के क़ाबिल नहीं रहा
जिस दिल पर नाज़ था मुझे, वह दिल नहीं रहा
जाता हूँ दाग़े हसरते हस्ती लिए हुए
हू शम–ए–कुश्तः दरख़ुरे महफ़िल नहीं रहा
मरने की, अय दिल! और ही तदबीर कर, कि मैं
शायाने दस्त–ओ–बाजु–ए–क़ातिल नहीं रहा
बर–रु–ए–शश जिहत दरे आईनः बाज़ है
याँ इम्तियाज़े नाक़िस ओ कामिल नहीं रहा
वा कर दिये है शौक ने, बन्दे निक़ाबे हुस्न
ग़ैर अज़ निगाह अब कोई हाइल नहीं रहा
गो मैं रहा रहीने सितमहा–ए–रोज़गार
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा

दिल से हवा–ए–किश्ते वफ़ा मिट गई, कि वाँ
हासिल, सिवाय हसरते हासिल नहीं रहा
बेदादे अिश्क से नहीं डरता मगर 'असद'
जिस दिल पर नाज़ था मुझे, वह दिल नहीं रहा[53]

अनुवाद

पात्रं प्रेमाकाङ्क्षाभिव्यक्तेर्हन्त मे न हृदयमभूत्।
यस्मिन् गर्वमकरवं मम सम्प्रति नास्ति तद् हृदयम्।।
अस्तित्वाकाङ्क्षामयकलङ्कमादाय हन्त याम्येषः।
निर्वाणोऽहं दीपो गोष्ठीषु स्थापनानर्हः।।
आश्रयणीयो भर्तुं कश्चिदुपायस्त्वया हृदय! तावत्।
नाहं यतो वधार्हो हस्ताभ्यां धातुकस्यास्मि।।
द्यावा–भूम्योः पुरतोऽनावृतमादर्शमुखमिवास्तीदम्।
पूर्णस्यापूर्णस्य च भेदो नास्त्यत्र कश्चिदपि।।
सौन्दर्यावृतिबन्धनमभिलाषेणापनीतमेतर्हि।
मन्येऽतिरिच्य दृष्टिं न हि कश्चिद् बाधकोऽस्त्यत्र।।
यद्यप्यासं जगतोऽत्याचरितानां निरन्तरं विषयः।
न तथापि त्वद्विषयकचिन्तनतोऽनवहितोऽभूवम्।।
प्रेम्णो निर्वाहस्याकाङ्क्षा हृद्देशतो विलीनेव।
लाभस्ततोऽथ लाभाकाङ्क्षामतिरिच्य नैवास्ति।।
अत्याचारात् प्रेम्णो न बिभेम्यहमेष किञ्चि 'दसद'! परम्।
यस्मिन् गर्वमकरवं मम सम्प्रति नास्ति तद् हृदयम्।।[54]

विशेष

हृदय और प्रेम का सम्बन्ध गहरा होता है। टूटे हुए दिल में प्रेम की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इस भाव को व्यक्त करने हेतु ग़ालिब कहते हैं कि यह हृदय अब प्रेमाकाङ्क्षा की अभिव्यक्ति के योग्य नहीं रहा, क्योंकि जिस हृदय के लिए मैं कभी गर्व करता था, वह हृदय अभी मुझमें है ही नहीं पाठक जी की आर्या में उपर्युक्त भाव खिल उठता है।

5. मूल ग़ज़ल

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता, तो खुदा होता
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता
हुआ जब ग़म से यूँ बेहिस, तो ग़म क्या सर के कटने का
न होता गर जुदा तन से, तो ज़ानू पर धरा होता
हुई मुद्दत, कि ग़ालिब मर गया, पर याद आता है
वह हर इक बात पर कहना कि यूँ होता, तो क्या होता[55]

अनुवाद

किञ्चिन्नासीदासीदीशः स्यादसति सोऽथ कस्मिंश्चित्।
क्षपितोऽस्तित्वेनाहं न स्यां यदि किन्ततश्छिन्नम्।।
अभवं स्तब्धः शोकादेवं शोकः कुतः शिरश्छेदात्।
पृथगभविष्यन्न ततो जानुन्यभविष्यदथ निहितम्।।
कालो यातो 'ग़ालिब' इतो मृतः स्मृतिपंथ तु समुपैति।
प्रतिभणितं तद्भणितं स्यादेवञ्चेत् किमेव स्यात्।।[56]

विशेष

जब संसार की सृष्टि नहीं हुई थी तो भी ईश्वर का अस्तित्व मौजूद था और यदि कुछ न होता तो भी ईश्वर का अस्तित्व रहने वाली चीज़ है वह अवश्य होता। मेरे अस्तित्व ने मुझे कहीं का न रक्खा यदि मैं संसार में न आया होता तो क्या होता। मैं इतना दुःख उठा चुका हूँ कि अब ग़म से डर नहीं लगता। अभाव ही मनुष्य को ईश्वर तक पहुँचाता है, यह अनुभव का विषय है और हमारी परम्परा में प्रसिद्ध भी। ग़ालिब को इस संसार और जीवन की व्यवस्था में त्रुटियाँ दिखाई पड़ती थी, इसी भाव को ग़ालिब अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं और पाठक जी ने उसे संस्कृत–आर्या में कैद कर अमरत्व प्रदान कर दिया है।

6. मूल ग़ज़ल

रहा गर कोई ता क़यामत, सलामत
फिर इक रोज मरना है, हज़रत सलामत

जिगर को मेरे 'अिश्क़े खूँनाबः मशरब
लिखे है खुदाबन्दे ने मत सलामत
अलर्रग़मे दुश्मन शहीदे वफ़ा हूँ
मुबारक मुबारक सलामत सलामत
नहीं गर सर–ओ–बर्गे इदारके मा नी
तमाशः ए–नैरंगे सूरत, सलामत[57]

अनुवाद

यद्यप्याप्रलयादिह तिष्ठेत् कश्चित् कश्चित् सुरक्षितो जगति।
दिन एकस्मिन् भविता तथापि तस्य ध्रुवो मृत्युः।।
यत्प्रेम रक्तपानप्रवृत्ति सम्बोधयत्यदो यदये।
द्विषदाशाप्रतिकूलो निर्वाहेऽहं हुतात्मतां प्राप्तः।
वर्धापनाऽस्ति मह्यं यदेष जातोऽहममरोऽस्मि।।
सृष्टिरहस्यावगतेरास्तां कामं न हन्त सामर्थ्यम्।
लीलामयस्य ताः खलु सुरुपलीला जयन्तीह।।[58]

विशेष

यदि कोई प्रलय के दिन तक भी जिंदा रहे तो भी क्या एक दिन तो मरना निश्चित है। मेरा इश्क खून पीने वाला है और जब वह ज़िगर के नाम से पुकारा जाता है और वह ईश्वर भी अन्नदाता है। हम जान के डर से मुहब्बत से भागने वाले नहीं, हम तो ताउम्र मुहब्बत निभाने वाले है। डॉ. पाठक ने ग़ालिब के भाव, कि यदि किसी में इतनी योग्यता नहीं है कि वह गहराई तक जाकर किसी चीज़ की जानकारी ह़ासिल करे तो फिर इसमें भी कोई हर्ज नहीं कि बाहर से ही हर वस्तु का अवलोकन कर खुद को संतुष्ट कर ले, को सह़जता के साथ संस्कृत में निबद्ध किया है।

7. मूल ग़ज़ल

काबे में जा रहा, तो न दो ता नः क्या कहीं
भूला हूँ हक़्के सोहबते अह्ले कुनिश्त को
ता' अत में ता, रहे न मै–ओ–अंगबी की लाग

दोज़ख़ में डाल दो कोई लेकर बिहिश्त को
हूँ मुन्हरिफ न क्यों, रह–ओ–रस्मे सवाब से
टेढ़ा लगा है क़त क़लमे सरनबिश्त को
ग़ालिब कुछ अपनी स' अि से लहना नहीं मुझे
ख़िरमन जले, अगर न मलख़ खाये किश्त को[59]

अनुवाद

काबां यामि ततो मां मा परिहस सम्प्रतीह सोत्प्रासम्।
अग्न्यर्चकसङ्गत्यधि–कारं क्वचिदस्मि विस्मृतवान्।।
येन न पूजायां स्यान्मदिरया माक्षिकस्य वा मोहः।
आदाय स्वर्लोकं कश्चन विनिपातयेन्नरके।।
कथमेष न विमुखः स्यामिह लोके हन्त पुण्यपथरीत्योः।
वक्रं क्षतं हि लग्नं मम किञ्चिद् भाग्यरेखायाम्।।
ग़ालिब निजप्रयासात् कश्चन लाभो मया नहि प्राप्तः।
प्रदहेत् खलधान्यं यदि न भक्षयेयुः कृषिं शलभाः।।[60]

विशेष

काबा में आकर बैठ जाने से मैं अपने ग़ैर मुस्लिम दोस्तों को नहीं भूला हूँ, मेरे अन्दर सद्भावना के विचार खत्म नहीं हुए है। कहते हैं लोग खुदा की इबादत शहद व अच्छी शराब के लिए करते है जो कि स्वर्ग में मिलती है, ऐसे लोगों को नरक में डाल देना चाहिए। मैं पुण्य कमाने की विविध रीतियों से विमुख हो गया हूँ क्योंकि मेरी भाग्यरेखा अपूर्ण है। मैं कितना भी प्रयास कर लूँ उसका फल भोगना मेरी किस्मत में नहीं है। अगर मेरा खेत टिडिकयों से बच भी जाएगा तो खलियान पर बिजली गिर जायेगी। उपर्युक्त भाव अनुवाद पाठक जी ने बहुत ही सहस शब्दावली द्वारा संस्कृत भाषा के मायम से व्यञ्जित किया है। डॉ. पाठक ने पाद टिप्पणी में 'बिहिश्त' शब्द को समझाते हुए लिखा है 'स्वर्गः' सूफी कवितायां प्राय एतदसकृदुक्तं यत् पूजा (वन्दना वा) नरकाद् भयेन स्वर्गस्य च लोभेन न विधेयेति। राबिया, एका सूफी–साधिका एकस्मिन् हस्ते जलपात्र मन्यस्मिंश्च हसन्ती (अग्निपात्रं) सततमधारयत्, अकथयमच्च जलेन नरकाग्निं प्रशमं नेष्यामि,

अग्निना च स्वर्गं भस्मासात् करिष्यामि। येन जनाः केवलेन प्रेम्णा ईश्वरस्याराधनायां प्रवृताः स्युरिति।[61] इस प्रकार पाठक जी ने उर्दू के क्लिष्ट शब्दों को संस्कृत में बड़ी ही सरलता के साथ समझाया है।

8. मूल–ग़ज़ल

लरज़ता मेरा दिल ज़ह्मते मेह्रे दरख्शाँ पर
मैं हूँ वह क़तरः–ए–शबनम कि हो ख़ारे बयाबाँ पर
न छोड़ी हज़रते यूसुफ़ ने याँ भी ख़ानः आराई
सफ़ेदी दीदः–ए–या क़ूब की, फिरती है जिन्दाँ पर
फ़ना ताली मे दर्से ब़ेखुदी हूँ, उस ज़माने से
कि मजनूँ लाम आलि़फ लिखता था दीवारे दबिस्ताँ पर
फ़राग़त किस क़दर रहती मुझे, तशबीशे मरहम से,
बहम बर सुल्ह् करते पारः हा ए–दिल नमकदॉ पर[62]

अनुवाद

कम्पत इह मम हृदयं प्रकाशमानस्य भास्चतः कष्यत्।
वनकण्टकाग्रवर्ती यः खलु सोऽहं तुषारकणः।।
अत्रापि यूसुफ़ेन त्यक्ता न महाशयेन गृहसज्जा।
सितिमा याकूब–दृशोः कारागारे परिभ्रमति।।
अभ्यस्यन्नस्मि ततः पाठादहमात्मविस्मृतेर्मृत्युम्।
मजनू रधिविद्यालयमारभताद्याक्षरं नु यतः।।
अभविष्यन्मम मुक्तिः सम्प्रति कियतीह लेपचिन्तायाः।
हृत्खण्डा अभविष्यन् सममतयो लवणपात्रे चेत्।।[63]

विशेष

सूर्य जैसा महाशक्तिशाली तेज–पुंज भी ग़ालिब जैसे मामूली अस्तित्व वाले व्यक्ति को मिटाने का प्रयास करता है। ग़ालिब कहते हैं कि उस ज़माने से अपने वजूद के भ्रम को समझ चुका था और जब मजनूँ अपनी पाठशाला की दीवार पर लैला लिखना भी न जानता था, तब भी अल्लाह का वजूद था। इसलिए मेरी भी एकदिन मुक्ति निश्चित है।

यह भाव पाठक जी की आर्या में नवीन रूप से उद्भासित हुआ है। पाद टिप्पणी में डॉ. पाठक याकूब शब्द का आशय बताते हुए कहते हैं– "यूसुफ़स्य पिता 'या' कूबोऽप्येक ईश्वरसन्देशहर आसीत् यूसफ़े मिस्रदेशस्य कारागरे बद्धे सति पित्रा तथा रुदितं यथा तस्य नेत्रज्योतिः समाप्तम्, तदेव ज्योतिः कारागृहं प्राप्तमिवेति भावः।"[64]

इस प्रकार डॉ. पाठक ने उर्दू के शब्दों को संस्कृत द्वारा जिस प्रकार समझाया है, उससे स्पष्ट होता है कि उनका दोनों भाषाओं पर समाधिकार प्राप्त है, अन्यथा इतनी सरलता के साथ दूसरी भाषा के शब्दों को अपनी भाषा में उतारना तथा भाव में परिवर्तन न होना असम्भव है। अनुवाद देखकर लगता ही नहीं है कि अनुवाद्य–अनुवाद के लेखक अलग–अलग है।

विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में गालिब–काव्यम्

गालिबकाव्यम् के विषय में विद्वानों ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। संस्कृत साहित्य–जगत् के मूर्धन्य विद्वान बच्चूलाल अवस्थी ने गालिबकाव्यम् के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है– "कवि पाठक ने पहले गालिब के काव्य को पढ़ा। बैखरी की उस अभिव्यक्ति की भावना में उतारा। वहाँ से वे उसे अपनी मेधा में ले गये कि वागर्थ की प्रतिपति के समीप पहुँच सके और प्रतिभा के उन्मेष के साथ जो तन्मयता मिली, वह सहृदय रसिक की तन्मयता है, जो उसे कविता के मूल में पहुँचा देती है और वह तल्लीन होकर जो अद्वैत संवेदना प्राप्त करता है, वहाँ वह कवि के साथ अभेद प्राप्त करता है। यही चमत्कार है। यही संविद्विश्रान्ति है।"[65]

"उसे संस्कृत में वाणी कैसे दी जाए कि कविता वही रहे। वाक् बदल जाए, फिर भी वागर्थप्रतिपत्ति वही बनी रहे। लङ्–लकार का प्रयोग करके पाठक जी ने एक चुभती हुई सम्भावना को वाणी दी है। इसका अनुवचन इसलिए भी दुष्कर कहा जाएगा कि फ़ारसी–अरबी से आए हुए शब्दों का अर्थ इस प्रकार संस्कृत–शब्दावली में प्राप्त किया जाए कि प्रतिपत्ति ज्यों की त्यों बनी रहे, जैसे एक ही उत्स से दो स्रोत निकले हों–एक गरम पानी देता हो तो दूसरे से शीतल प्रवाह स्फुरित होता हो। दोनों का सौन्दर्य और प्रभाव होते हुए भी द्वैरुप्य रखता हो। जिस प्रकार के छन्दोविन्यास में ग़ालिब ने बात कही

है। उस वृत्तविन्यास से पृथक् पाठक जी ने अपने निसर्गसिद्ध आर्यावृत्त में एक नया सौन्दर्य उरेहा है–

प्रस्तरधमनीभ्यस्तद् रुधिरं स्यन्देत नावरुद्धं स्यात्

यद् वेत्सि दुःखमिति तद् दहनस्य स्यात् स्फुलिङ्ग इति।।"[66]

"ग़ालिब के काव्य के अन्तस्तल में प्रतिभानावस्था तक पहुँच कर फिर ऊपर आने पर पाठक जी ने बुद्धि से श्रम किया है और तब वे संस्कृत में वाणी दे सके हैं। प्रत्येक ग़जल के नीचे संस्कृत के शब्द दिये गये हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि मध्यमा वाणी के धरातल पर श्रम करते हुए कवि ने संस्कृत के शब्दों का चयन किया है और साथ ही सतर्क रहा है कि आर्या में वैसे शब्द ग्रथित हो सके। मध्यमा के स्तर पर इस प्रकार का विमर्शन पाठक जी के लिए स्वभावसिद्ध हो गया है।"[67]

डॉ. बनमाली विश्वाल ने लिखा है– "दीवाने ग़ालिब का संस्कृत पद्यानुवाद समकालिक संस्कृत–साहित्य–रचना क्षेत्र में प्रथम एवं अनूठा प्रयास है। मूल उर्दू–कविताओं के साथ छपने से पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। उर्दू–कविताओं में आये कठिन शब्दों का संस्कृत अर्थ कवि ने पाद टिप्पणी में दे रखा है जिससे उर्दू न जानने वाले पाठकों को मूल उर्दू–कविता का आनन्द लेने में असुविधा नहीं होती। पाठक जी के इस अनुवाद को अनुवाद न कहकर अनुसर्जन (Trans-Creation) कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इस संग्रह के हर ग़ज़ल के अनुवाद से एक मौलिकता अपने आप झलकती है।"[68]

ओम प्रकाश मालव कहते हैं–"It has given me immense delight to go through 'Ghaliba Kavyam' from Urdu in to Sanskrit. We have translations gallow from Sanskrit in to English but a translation of Urdu classic in Sanskrit is an astainding literary venture for which Pt. Jagannath Pathak deserves the highest admiration and warmest gratitude of those who have a love for poetry in general and a love for Sanskrit and Urdu poetry in particular. The translation of a vernacular classic into classical Sanskrit is an achievement which has imported a vave dignity to the Urdu language and a great honour to Ghalib."65

"By adopting the 'Arya' pt Jagannath Pathak has succeeded in following the classical tradition and giving a new direction to it. He has wisely chosen

not to play to the gallery by adopting ‘Ghazal’ from as some of contemnporay poets of Sanskrit have done. The temtation before Pt. Pathak wass really pressing but he wisely resisted and thus enabled his to show the potentiality of a classical language for the expression of Pt. Pathak’s translation is that it is marked by a vave lucidity. It has been said aboot Shakespeare that he has hostyle. Apparently this may be a pejorative expressing but at bottom it is the highest admiration which means that Shakespeare has no particular style and there fore, it has infinite varicty. The same can be said about Ghalib who has used the simplest possible words and the most difficult and highly involved expressions. Whotever be the nature of Ghalib’s couplets, whotever simple or difficult, Pt. Pathak’s rendering is surprisingly simple.”[70]

मारुतिनन्दन पाठक कहते हैं– ”ग़ज़ल भी अरबी, फारसी और उर्दू की विधा है और बहुत नाजुक विधा है। उर्दू में यह परवान चढ़ी। हिन्दी में भी यह आई और इसका एक अच्छा दौर रहा। डॉ. पाठक ने इसे भी संस्कृत में उसी नाजुकपन के साथ उतारा।........... इतना तो प्रमाणित कर ही दिया कि संस्कृत में ग़ज़ल लिखी जा सकती है और उसमें सफल भी हुआ जा सकता है। पूरे ‘दीवान–ए–ग़ालिब’ का उन्होंने संस्कृत में अनुवाद भी कर दिया है। गहरी पैठ के बिना यह संभव न था। विधा जरुर उतारी गई, किन्तु उन्होंने अपनी मौलिकता नहीं खोई, संस्कृत कविता का अपना स्तर भी नहीं गिरने दिया, इसलिए यह संस्कृत की ज़मीन पर खिला हुआ नया फूल–जैसा है।”[71]

श्री रंजन सूरिदेव ने लिखा है– ”समकालिक संस्कृत–साहित्य को समृद्ध बनाने वाले पाठक जी का कवित्व आर्याछन्द की रचना में ततोऽधिक प्रौढता से पुरस्सृत हुआ है। इन्होंने समग्र दीवाने ग़ालिब को संस्कृत के आर्या–छन्द में पद्यान्तरित करके अपने को निश्चय ही ‘आर्यासम्राट्’ की उपाधि का अधिकारी सिद्ध किया है। ज्ञातव्य है, उर्दू–शेर का मुकाबला संस्कृत का आर्याछन्द ही कर सकता है, जिसकी प्रशंसनीय परख पाठक जी में है।”[72]

अजय कुमार मिश्र ने लिखा है– ”उन्होंने मिर्जा असदुल्लाह खाँ ग़ालिब की कृति ‘दीवाने ग़ालिब’ का ‘ग़ालिब–काव्यम्’ के नाम से जो संस्कृत पद्यानुवाद किया है, वह वस्तुतः भारतीय भाषाओं की साझी संस्कृति तथा आपसी सूझ–बूझ का भी प्रतिफल माना

जा सकता है। इस महान कृति के मूल में इहलौकिक–मनुष्य / समाज / राजनीति / आपसी दावपेंच / व्यवस्थाओं के नाना विकृत आयामों के प्रति आक्रोश / चिंता / अफसोस अन्योक्ति शैली में जताया गया है।"[73]

एन.पी. उण्णी लिखते हैं–

"गुरुवर! भवता लिखितं 'ग़ालिबकाव्यं मयाऽद्यसंद्ष्टम्
संस्कृतभाषाशैली नितरां मनोरमं जातम्।।
यद्यप्यनुवादोऽयं, उर्दू भाषां समाश्रित्य।
संस्कृतशेवधिरधुना सम्पुष्टोऽनेन रत्नहारेण।।
ग़ालिबकविरप्यधुना गैर्वाणीदासतां प्राप्तः।
भवतामुद्योगोऽयं तस्यापि बहुमतो भवति।।
आधुनिकैर्यैः कश्चित् कविभिरिदानीं समाश्रितोमार्गः।
लघु तद्–विषयास्पदतामावहतीति प्रसिद्धमेव हि तत्।।
जीयाच्चिराय भुवने राष्ट्रपतेर्मानननार्हतां प्राप्तः।
जगदीश्वरस्य कृपया भविता दीघायुरेव जगन्नाथः।।"[74]

देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने लिखा है– **"ग़ालिबकवेर्वैदग्ध्यभंगीभणितिर्नूनं हृदयावर्जिकेति सर्वेऽनुभवत्ति। कतिघा तस्योक्तिषु व्यंग्यगर्भितस्तादृशो निगूढश्चमत्कारो भवति यतस्य साध्वबोधोऽपिदुष्करः, किं पुनरनुवादः। डॉ. पाठकेन काठिन्यमिदमविगणतया सारल्येन तस्य भावोऽवतारित इति दृष्ट्या प्रसीदेयुः पाठकाः।"[75]**

निष्कर्षतः संस्कृत वाङ्मय में 'गज़ल' एक आयातित मासूम काव्य–विधा के रूप में मानित है। डॉ. जगन्नाथ पाठक ने यह सिद्ध किया है कि गज़ल महज किसी भाषा–विशेष की वस्तु नहीं, बल्कि यह एक शिल्प है, जो भावात्मक संवेदना की अभिव्यक्ति का सफल सन्धान करता है। आप ग़ज़ल परम्परा के महत्त्वपूर्ण कवि है जिन्होंने ग़ज़ल की संवेदना को जीवन के यथार्थ का संग और रंग दिया है। आपकी अनुदित कृति 'ग़ालिब–काव्यम्' सचमुच की रसवती वारुणीधारा है जो पाठक के चित्त को मादक रसानुभूति से परिपूर्ण कर ऐसे नवीन लोक के आलोक में ले जाती है जहाँ अभाव से भाव पैदा होते हैं, जहाँ वेदना में संवेदना जिन्दा रहती है। 'ग़ालिबकाव्यम्' की ग़ज़ले कवि के संघर्षशील व्यक्तित्व की विच्छिति है। कृति अनुदित होते हुए भी पाठक पढ़ने के उपरान्त यही कहता है कि ये ग़ज़ले रचनात्मकनैपुणी का नितनूतन सन्निवेश और रसपेशल सन्धान नितान्त ग्राह्य और

हृद्य है। संरचना के स्तर पर विन्यास और संयोजन की कुशलता और जागरुकता के द्वारा, तो वस्तु के स्तर पर संघर्षशील उदात्त कवि मानस की साधना से वह सम्भव है। 'ग़ालिब–काव्यम्' में यह साधना परिलक्षित होती है, यह इस कवि के उत्कृष्ट अनुवाद का स्वारस्य है।

अनुवाद की भाषा सरला और सर्वजनग्राह्य है। प्रायः सर्व पद मूल को अनुसरते हैं। न केवल भाषा का सारल्य अपितु अनुवाद में वृत्तानुवृत्त का पालन, अनुदित ग़ज़लों का संचय अनुवादक कवि के अनुशीलन एवं काव्य–प्रतिभा के परिचायक है। ग़ज़लों की रचना जिन छन्दों में की जाती है उन्हें बहर कहते हैं। उसी बहर में उसी भाव को बिना किसी कठिनाई से अनुदित करने की अद्भूत क्षमता अनुवादक में है। इससे अनुवादक की असाधारण संस्कृतज्ञता का परिचय मिलता है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक की सर्वत्र सरल, सहज, प्रसादगुणयुक्त शैली आधुनिक कवियों एवं नवोदितों को काव्य रचना के लिए अनुकरणीयता एवं अनुसरणीयता प्रदान करने वाली है।

ग़ालिबकाव्यम् में रसधारा प्रवाहित होती है। इसमें अनुवादक के पाण्डित्य, भाषा–प्रभुत्व एवं सामर्थ्य सम्यक्तया प्रकट हुआ है। संस्कृत–साहित्य में आधुनिक साहित्य की बहुत कमी है, यह कमी डॉ. पाठक ने पूरी करने का यत्न किया है। संस्कृत भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार दांतों तले उँगली दबाने को बाध्य करता है।

यह अपूर्व अनुवाद न केवल संस्कृतज्ञों के लिए अपितु उर्दू–हिन्दी भाषाविदों के लिए भी सुपठनीय, संग्रहणीय है। सम्प्रति जबकि संस्कृत भाषा क्षीण, दुर्बल एवं लुप्त प्रायः होने के कगार पर है, ऐसे में डॉ. जगन्नाथ पाठक का यह अभिनव प्रयास प्राणवायु का काम कर रहा है। आपने ग़ालिब की ग़ज़लों को उसी समान संस्कृत छन्दों में अनुवाद करके काव्य की कुछ नव्यता एवं भव्यता को उजागर किया है। उर्दू छन्दों का संस्कृत के समान छन्दों में समुपनिबद्ध कोई काव्य ग्रन्थ प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। कविवर्य ने इस काव्य में ऐसा कुछ अभिनव युगानुरूप हृद्य एवं भव्य आविष्कार किया है जो सर्वथा स्तुत्य है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ–सूची

1. ऋग्वेद 2.13.3
2. वही 8.1.18
3. अनुवाद विज्ञानः डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 9
4. ऐतरेय ब्राह्मण 2.15
5. बृहदारण्यकोपनिषद् 52.3
6. निरुक्त 12.13
7. वही 1.16
8. अष्टाध्यायी 2.3.4
9. काशिका 2.3.4
10. न्यायसूत्र 2.3.4
11. न्यायसूत्र 2.1.65
12. अनुवाद विज्ञान और अनुप्रयोगः डॉ. नगेन्द्र, पृ. 48
13. अनुवाद प्रक्रिया और स्वरूपः कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.12
14. अनुवाद के विविध आयामः, डॉ. पूरनचन्द्र टण्डन, हरीश कुमार सेठी, पृ. 29
15. अनुवाद विज्ञानः डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, पृ. 11
16. अनुवाद कला सिद्धांत और प्रयोगः डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ. 4
17. अनुवाद का पारिभाषिक परिप्रेक्ष्यः अनुवाद भारती अंक 6–7, डॉ. रामगोपाल सिंह
18. अनुवाद कला सिद्धांत और प्रयोग : डॉ. कैलाश चन्द भाटिया, पृ. 13
19. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ : डॉ. रामगोपाल सिंह, पृ. 20
20. SANSKRIT TRANSLATION OF DHARMASRIH : DAXA B. PUROHIT, SINGHIFICANTSFACETS OF MODERN SANSKRIT LITERATURE, PG. 62
21. अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त एवं अनुप्रयोग : संपादक डॉ. नगेन्द्र, पृ. 50
22. अनुवाद विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 16
23. वही
24. वही
25. अनुवाद पत्रिका–नवम्बर 1965, पृ. 57

26. अनुवाद सिद्धान्त और स्वरूप, डॉ. आरिफ नज़ीर, पृ. 144
27. वही
28. अनुवाद विज्ञान : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 49
29. वेद प्रकाश 'अनुवाद कलाः कुछ विचार' : संपा. आनंद प्रकाश खेमाणी, पृ.181
30. अनुवाद विज्ञान : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 49
31. द आर्ट ऑफ ट्रांसलेशन : रघुनाथ राय, पृ. 12, 14, 15
32. अनुवाद विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 103–104
33. तुलनात्मक साहित्य और निर्मला : मायाप्रकाश पाण्डेय, SINGIFICANT FACETS
34. अनुवाद विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 203
35. वही : स्वरूप और समस्याएँ : डॉ. रामगोपाल सिंह, पृ. 244
36. वही : डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 205
37. वही : स्वरूप और समस्याएँ : डॉ. रामगोपाल सिंह, पृ. 245
38. अनुवाद विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 205
39. अनुवाद विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 206
40. अनुवाद बोध : संपा. डॉ. गार्गी गुप्त, नारायण दत्त पालीवाल, पृ. 180
41. वही
42. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास vii, आधुनिक संस्कृत साहित्य, संपा.–जगन्नाथ पाठक
43. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास v, आधुनिक संस्कृत साहित्य, संपा.–जगन्नाथ पाठक
44. ग़ालिबकाव्यम् : डॉ. जगन्नाथ पाठक 1/2
45. वही : डॉ. जगन्नाथ पाठक, आमुख
46. ग़ालिबकाव्यम्–एक विमर्शः बच्चूलाल अवस्थी, दृक्
47. ग़ालिबकाव्यम् : डॉ. जगन्नाथ पाठक, 1/2
48. वही, 1/3
49. वही, 10/20
50. वही, 10/21
51. वही, 30/80
52. वही, 30/81
53. वही, 42/108
54. वही, 42/109

55. वही, 33/86

56. वही, 33/87

57. वही, 132/52

58. वही, 133/52

59. वही, 312/119

60. वही, 313/119

61. वही, 312/119

62. वही, 160/62

63. वही, 161/62

64. वही, 160/62

65. ग़ालिबकाव्यम् : एक विमर्श : बच्चूलाल अवस्थी, दृक् 8, पृ 9–10

66. वही, पृ. 10–11

67. वही, पृ. 11

68. गालिबकाव्यम् : बनमाली विश्वाल, दृक् 9, पृ. 107

69. Ghalibkavyam : Areview : Om Prakasha Malav, दृक्–10, पृ. 13

70. वही, पृ. 14

71. डॉ. जगन्नाथ पाठक की कविता : मारुतिनन्दन पाठक, दृक्–10, पृ. 21

72. आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक : श्रीरंजन सूरिदेव, दृक्–10, पृ. 24

73. आचार्य पाठक की काव्ययात्रा : अजय कुमार मिश्र, दृक्–10, पृ. 28

74. पत्र–पत्रिकाओं में पाठक जी : एन.पी. उण्णी, दृक्–10, पृ. 39

75. पत्र–पत्रिकाओं में पाठक जी : देवर्षि कलानाथ शास्त्री, दृक्–10, पृ. 42

षष्ठ अध्याय

डॉ. पाठक कृत सुभाषित साहित्य में जीवन के शाश्वत मूल्यों का चिन्तन

षष्ठ अध्याय

डॉ. पाठक कृत सुभाषित साहित्य में जीवन के शाश्वत मूल्यों का चिन्तन

(1) सुभाषित सूक्ति की परिभाषा व महत्त्व

इस लोक में **'सुख[1]मेव मे स्यात् दुःखं[2] मनागपि मा भूत्'** इस प्रकार की कामना सभी करते है। नर हमेशा सुख के लिए प्रयत्न करता हुआ भी दुःख का अनुभव करता है। पूर्वजन्म में कृत कर्मों के कारण ऐसा होता है। भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा हैं–**"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"[3]**

सकलकष्टनिवारणार्थ सर्वविधसुख प्राप्ति के लिए समीचीन ज्ञान आवश्यक है। ज्ञान प्राप्ति के अनेक साधन है। उनमें से भाषा परिचय भी एक है। उन सभी भाषाओं में संस्कृत के समान मनोरम, उत्तम तथा हृद्या भाषा ओर कोई नहीं है। साहित्य से हमारे जीवन का अविनाभाव सम्बन्ध है। साहित्याध्ययन सभी के लिए आवश्यक है। क्योंकि साहित्यादि ज्ञान शून्य पुरुष साक्षात् पशु समान है–

"साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः
तृणं न स्यादन्नपि जीवमान–
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।"[4]

साहित्य में ज्ञान प्राप्ति काव्य–नाटक–वेद–शास्त्र–पुराणादि अनेक साधन है। उनमें से सुभाषित साहित्य अन्यतम है। सुभाषित में उक्त विचारों को अपने जीवन में धारण करके यदि हम जीयेंगे तो निश्चित रूप से सुखी हो जायेंगे। मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। उत्कृष्ट जन्म प्राप्त करने पर भी प्रारब्ध के कारण अज्ञान रूपी अन्धकार से युक्त जीव निकृष्ट लोक की प्राप्त करता है। इस प्रकार की निकृष्टता को सुभाषित द्वारा उत्कृष्टता को प्राप्त कर सकता है।

मानव बाल्यकाल–यौवन तथा–वार्धक्य इन तीन अवस्थाओं को अनुभूत करके मरणोपरान्त कहाँ जाता है? क्या करता है? कैसे पुनरागमन होता है? कैसे जीता है? यह कोई नहीं जानता है। किन्तु वेद–इतिहास–धर्म तथा शास्त्रादि में उक्त सुभाषितों (सूक्तियों) के परिशीलन से जब तक जीना है समाज का निर्माण करना है, इस प्रकार का आचरण करना है, ऐसा आचरण नहीं करना है इत्यादि विषयों का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार का ज्ञान हो जाने से उसका इहलोक तथा परलोक तुष्टिकर तथा पुष्टिकर हो जाता है। सङ्घजीवी मानव एकाकी जीवन नहीं जी सकता।

प्रतिदिन नवीन संस्कार अन्तःकरण में संग्रह करता है। जिससे उसकी आत्मा परिशुद्ध होती है। जन्मान्तर में भी उन संस्कारों को प्राप्त कर वह अपने जीवन का उद्धार करता है। इस प्रकार संस्कृति संस्कार के विषय में ये सुभाषितरत्न अतीव सहायक होते हैं।

संस्कृत वाङ्मय में सुभाषित सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। सुभाषित का ही दूसरा नाम सूक्ति है। वर्ग–चतुष्ट्य–रीति–नीति, धर्म–समाज को सम्पादित करते हुए उन पर मार्मिक सूक्तियों की रचना करना संस्कृत वाङ्मय की विलक्षण विशेषता है। संस्कृत वाङ्मय में सर्वत्र ये सुभाषित ज्योतिर्मय है। सुभाषित मानव जीवन के सम्पूर्ण पहलुओं को उजागर करती हुई, मानव का प्रत्येक पद पर मार्ग प्रशस्त करने का काम करती है। ये सुभाषित सामान्य जन से विशिष्ट व्यक्तियों तक दृष्टान्तपूर्ण मनोरञ्जक विधा द्वारा धार्मिक, नैतिक, शैक्षिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक शिक्षा को प्रदान कर मानव को कान्तासम्मित नर्म उपदेश के रूप में सत्पथ दिखाते हैं।

किसी भी कवि की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उसके काव्य में रचित सुभाषित होते हैं। सुभाषित शाश्वत सत्यों तथा जीवन मूल्यों से परिपूर्ण होते हैं। आचार्य राजशेखर ने सूक्ति को कामधेनु सरस्वती कहा है, जो कवि रूपी दोग्धा के द्वारा दुही जाने पर भी नवीन प्रतीत होती है–

"या दुग्धाऽपिन दुग्धेवकविदोग्धृभिरन्वहम्
हृदिः न सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती।"[5]

चाणक्य ने सुभाषित के विषय में लिखा है–

> **"पृथिव्या त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्**
> **मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।"[6]**

(पृथ्वी पर तीन रत्न है–जल, अन्न तथा सुभाषित। लेकिन मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहते हैं।)

चाणक्य ने आगे भी कहा है–

> **"संसार विष वृक्षस्य द्वे फलेऽमृतोपमे**
> **सुभाषित च सुस्वादु सङ्गतिः सज्जने जने।"**

(संसार रूपी कटु–वृक्ष पर केवल दो फल ही अमृत के समान है, पहला सुभाषित का रसास्वाद और दूसरा अच्छे लोगों की सङ्गति)।

सुभाषित (सूक्ति) की परिभाषा, स्वरूप तथा महत्त्व

सकल भाषाओं में श्रेष्ठ संस्कृत भाषा का हृदय–स्वरूप सुभाषित है। क्या है सुभाषित? वे शब्द जो दूसरों को मानसिक क्लेश पहुँचाने के उद्देश्य से न बोले गये हो, जिन्हें सुनने पर एक प्रकार की सुखानुभूति होती है, जो असत्य पर आधारित न हो, जिनमें दूसरों के प्रति निरादर भाव झलकता हो और जिनमें नैतिकता, बुद्धिमता तथा विवेकशीलता निहित हो आदि। कहना तो सरल है, किन्तु दूसरों के समक्ष प्रिय तथा गंभीर वचन बोलना आत्मसंयम पर निर्भर करता है। सामान्यतः मनुष्य अहंभाव से ग्रस्त रहता है और जब वह बहुत कुछ अपने अहं के प्रतिकूल होते देखता है तो असहिष्णु हो उठता है। तब संयमित वचन बोल पाने की सामर्थ्य खो बैठता है। संयमित शब्द संग्रह ही सुभाषित है।

सु उपसर्गपूर्वक भाष् (वच्) धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने पर सुभाषित शब्द निष्पन्न होता है। 'शोभना वाक् यस्मिन् वर्ण्यते तत् सुभाषितम्' इस प्रकार सुभाषित का विग्रह है।

सुभाषित इस शब्द से ही स्पष्ट है कि जो सुन्दर भाषा में कहा गया है ऐसा कथन। सु अर्थात् सुंदर भाषित अर्थात् भाषा में रचित। ऐसे शब्द समूह जिनमें कोई बात

सुन्दर ढंग से या बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से कही गयी हो। हर्षचरित में सुभाषित को परिभाषित करते हुए बाणभट्ट ने कहा है–

"पुराणोष्वितिहासेषु तथा रामायणादिषु
वचनं सारभूतं यत् तत् सुभाषितमुच्यते।"[7]

(पुराणोतिहास–रामायणादि ग्रन्थों में जो भी साररूप वचन कहे गये है, वे ही सुभाषित है)।

'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका' में सूक्ति को इस तरह से परिभाषित किया गया है–

" Literally a distintion or a definition of a term is used to describe a principal expressed truly in a few fellings words or any general truth conveyed in a short and pithy sentence in such a way that when once heard it is unlikely to pass from the memory."[8]

हरिहर सूक्ति मुक्तावली में सुभाषित की परिभाषा देते हुए हरिहर ने कहा है– "सूक्ति, सदुक्ति, सुभाषित सभी का शाब्दिक अर्थ सुन्दरकथन है, परन्तु संस्कृत साहित्य में वह विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। सुभाषितों से अभिप्राय एक ऐसे पूर्वापर निरपेक्ष वर्णनात्मक अथवा उपदेशात्मक पद्य से है जो भक्तिमय, नैतिक अथवा श्रृंगारिक किसी एक भाव को व्यंग्य अथवा विनोदपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है तथा अपने आप में पूर्ण होता है।"[9]

सन्तोषजनकत्व होने के साथ सुज्ञानजनकवाक्यत्व सुभाषित का लक्षण होता है, यथोक्तं–

"खिन्नं चापि सुभाषितेन रमते स्वीयं मनः सर्वदा
श्रुत्वान्यस्य सुभाषितं खलु मनः श्रोतुं पुनर्वाञ्छति
अज्ञान ज्ञानवतोऽप्यनेन हि वशीकर्त्तुं समर्थोभवेत्
कर्त्तव्यो हि सुभाषितस्य मनुजैरावश्यकः संग्रहः।"[10]

इस प्रकार मानव में विद्यमान पशुत्व को दूरकर जीवनावश्यक सद्गुणों को जो वचन–समूह उत्पन्न करे, वही सुभाषित है।

द ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सल डिक्शनरी में सूक्ति को परिभाषित करते हुए कहा है– "A proposition lepic aphoristic or sententious form expressing some general truth of science or of experience."[11]

लुड्विक स्टर्नबक ने सुभाषित को इस तरह से परिभाषित किया है–

"These epigrams, aphorisms, wise dayings, maxims, adages, however, quaintly, expressed contain the essence of some moral truths or practical lessons. They are drawn from real life and give the fruit of phiosophy grafted on the stem of experience, they furnish an index tothe spirit of a nation and are the result of its civilization."[12]

सुभाषित उस संक्षिप्त वचन को कहते हैं जिसमें जीवनोपयोगी अथवा अनुभवाधारित ज्ञान भरा हो।

वस्तुतः इस लोक में द्राक्षाफल, कदलीफल और आम्रादि फलों का रस अलग प्रकार का होता है। सुभाषित रस केवल मन से आस्वाद्य होता है, जबकि अन्य रसों का आस्वादन जिह्वा से किया जाता है। सुभाषित के विषय में कहा गया है–

"कान् पृच्छामः सुराः स्वर्गे निवसामो वयं भुवि
किं वा सुधारसस्वादुः किं वा काव्य रसः पुनः।।"[13]

सुधारस एवं काव्यरस की तारतम्यता की परीक्षा करने पर सुभाषित ही सुधारस की अपेक्षा स्वादुतर लगते हैं। सुभाषित रस सर्वथा, सर्वदा विकृति से अनापन्न, वैररहित, अक्षीण, आलस्यनाशक, तृप्तिकर होता है। सुभाषित रस की विलक्षणता व चारुता का निर्वचन करते हुए किसी कवि ने कहा है–

"नायं प्रयाति विकृतिं विरसो न यः स्यात्
न क्षीयते बहुजनैर्नितरां निपीतः
जाड्यं निहन्ति रुचिमेति करोति तृप्तिं
नूनं सुभाषितरसोऽन्यरसातिशायी।"[14]

मन हमेशा एक प्रकार का नहीं होता है, सदुक्तियों के श्रवण से मन में नूतन संस्कार उत्पन्न होते हैं। सङ्गीतश्रवण से भी मन नवीन होता है। तरुणियों के नाना प्रकार के हाव–भावों से, अङ्गसंचालन से, वचनों से भी प्रायः मन नूतनता अनुभव करता है। महर्षि विश्वामित्र ने अनेक वर्षों तक तप किया, किन्तु मेनका के आगमन से उनका मन चञ्चल हुआ, जिसके फलस्वरूप उत्पन्न शकुन्तला ही इस वर्ष का भारतवर्ष नाम पड़ने का कारण बनी। इस प्रकार इन तीनों हेतुओं से जिसका मन भिद्य ना हो, वह समाधिरत योगी अथवा आहारनिद्राभयमैथुनपरायण पशु ही हो सकता है, यथोक्तं–

"सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया

मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः।"[15]

लोके में अतिमधुर द्राक्षा म्लानमुखी के समान लगते है क्योंकि द्राक्षा दुःख से उद्विग्न युवति के मुख के समान दिखाई देते हैं। शर्करा अत्यन्त मीठी होती हुई भी शिलास्वरूप को प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार द्राक्षा तथा शर्करा सुभाषित रस से तुलना करने में समर्थ नहीं है। सुभाषित रस सभी को अपने वश में कर लेता है। सुधा पहले भूलोक पर ही था, किन्तु सुभाषित रस के कारण मेरा भू लोक पर कोई प्रयोजन नहीं रहा। कोई मेरा आदर नहीं करता इस प्रकार विचार कर सुधा सुधा–पान करने वाले देवों के लिए ही पान योग्या रह गई, इस लोक में लोगों की दृष्टि–विषयता प्राप्त करने की इच्छा नहीं रही, इस प्रकार की निम्न श्लोक ने अत्युत्तम प्रशंसा की है–

"द्राक्षा म्लानमुखी जाता शर्करा चाश्मतां गता

सुभाषितरसस्याग्रे सुधा भीता दिवं गता।"[16]

इस संसार में अनेक भाषाएं विद्यमान है। परन्तु इन सभी भाषाओं में गीर्वाण अन्यतम है। वह मधुरा, दिव्या तथा विलक्षणा है। गीर्वाण भाषा का भी प्रकार विशेष अर्थात् काव्य ही उत्तम है, तथा काव्य में भी सुभाषित का तो कहना ही क्या–

"भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती

तस्माद्धि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्।"[17]

सुभाषित कथन रूपी संवदा का जो संग्रह नहीं करता वह प्रसंगविशेष की चर्चा के यज्ञ में भला क्या दक्षिणा देगा? समुचित वार्तालाप में भाग लेना एक यज्ञ है और उस यज्ञ में हम दूसरों के प्रति सुभाषित शब्दों की आहुति दे सकते हैं। ऐसे अवसरों पर व्यक्ति से मीठे बोलों की अपेक्षा की जाती है, किंतु जिसने सुभाषण की संपदा न अर्जित की हो यानी अपना स्वभाव तदनुरूप न ढाला हो वह ऐसे अवसरों पर औरों को क्या दे सकता है–

"सुभाषितमयैर्द्रव्यैः सङ्ग्रहं न करोतियः

सोऽपि प्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम्।।"[18]

सुभाषितों के अध्ययन से न केवल लौकिक फल अपितु पारत्रिक फल भी प्राप्त होता है। चमत्कार विशिष्ट से उत्कृष्ट सूक्तियों की संग्रहण पद्धति प्राचीन काल से चली आ रही है। देवता–ऋतु–प्रणय–संस्कृति–समाज–विद्या–धर्म–हास्य–वैराग्य–भक्ति–नीति–विवेकादि सम्बन्धी बहुत से सुभाषित देखने को मिलते हैं। अतः ये सुभाषित असंख्य तथा बहुत प्रकार के होते हैं। जो कोई भी विषय में उक्त सभी मनोज्ञ उक्तियाँ सुभाषित ही है।

व्यक्तित्व–विकास में भी सुभाषित बहुत उपयोगी है। आत्मस्थैर्य–आस्तिकबुद्धि–नैतिकधुरंधरत्व–धर्म बुद्धि इत्यादि गुण रूपी रत्न सुभाषिताध्ययन से ही प्राप्त किये जा सकते है। सहृदय इन सुभाषितों का अभिनन्दन करके, इनके प्रतिभाचातुर्यादि को देखकर प्रलोभित हो जाते हैं। एतादृश सुभाषितों के सौन्दर्य तथा प्रौढ़ता को देखकर न केवल हमारे देश के विद्वान् अपितु पाश्चात्य विद्वान भी इनकी उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। जिस प्रकार मुक्तामणि सुवर्णाभरण की शोभा का वर्धन करती है उसी प्रकार सुभाषित हमारी जीवन शोभा को बढ़ाते है तथा धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति का उपयुक्त साधन है। इनके निरन्तर अध्ययन से मानसिक–बौद्धिक–आध्यात्मिक भावनाओं का विकास होता है। गुरुवृद्धादि के सामने कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस प्रकार के व्यवहार का ज्ञान भी बोध होता है।

कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक व्याधि होने पर औषधि का सेवन आवश्यक है। परन्तु यदि एक सुहृत् हमारे पास है तो औषधि से क्या प्रयोजना औषधि की अपेक्षा सुहृद ही हमारे रोग–निवृत्ति कर सकता है अर्थात् सुहृद् वचनों के प्रभाव से हम अभय हो जाते

है। मानस रोग में तो सुभाषित रामबाण का कार्य करते हैं। धन के द्वारा हम भौतिक सुख के साधन ग्रहण तो कर सकते है, किन्तु धन होने पर भी विद्याभाव है तो हमारे जीवन में दुर्जनों के द्वारा हरण कर लिया जाता है। अतः हमें सुभाषित संग्रह रूप विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

जातक माला में सुभाषित का स्वरूप इस प्रकार बताया है–

"विनीतदीप्तप्रतिभोज्ज्वलस्य प्रसह्य कीर्ति प्रतिबोधनाय
वाक्यसौष्ठवस्यापि विशेषहेतुर्योगात्प्रसन्नार्थगतिः श्रुतश्रीः।"[19]

"सुभाषित विनम्र दीपक की चमक के समान उज्ज्वल होता है और अर्थ प्रवाह से परिपूर्ण सुन्दर शास्त्र सुभाषित में गौरव लाता है। इसके विपरीत सूक्ति सत्य व जीवन के कटु–अनुभवों का ज्ञान कराती हुई मनुष्य को निर्देश देती है। रस–निस्यन्दता के साथ सूक्तियाँ अपनी वक्रिम गति ता विदग्धतापूर्ण भङ्गिमा के लिए प्रसिद्ध है।"[20]

आर्यशूर ने सुभाषितों की तुलना रत्नों से करते हुए कहा है– "ये अमूल्य है। सुभाषितों को सुनते ही मन प्रसन्न हो जाता है तथा कल्याणप्राप्ति की इच्छा स्थिर होती है, ज्ञान विकसित होकर निर्मल होता है। अतः शरीर मांस देकर भी सुभाषितों को खरीदना चाहिये। सुना गया सुभाषित दीपक तुल्य है जो अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर देता है तथा ऐसा परमधन है जिसे चोर चुरा नहीं सकते। यह मोहरूपी शत्रु को नष्ट करने वाला तथा नीति का उपदेश देने वाला मन्त्री है। यह विपत्ति में घिरे मनुष्य का मित्र तथा शोकरूपी रोग की पीड़ारहित चिकित्सा है। यह दोषों की सेना को पराजित करने वाला महाबल तथा यश और धन का निधान है। सत्सङ्ग में यह श्रेष्ठ उपहार तथा सभाओं में विद्वानों को आनन्द देने वाला है। विवादों में प्रदीप्त सूर्य है तथा ईष्यालु मनुष्य के यश व गर्व को चूर करने वाला है।"[21]

इस ब्रह्माण्ड में अन्य सभी सामग्रियों की अपेक्षा सुभाषित रूपी सामग्री ही उन्नत पदवी को प्राप्त है इस प्रकार का उनका अद्भूत सामर्थ्य है। अतः आनन्द साधनों में सुभाषित अन्यतम है।

सुभाषित संग्रहों का उद्भव एवं विकास

1. सुभाषितरत्नकोष

1130 ई. में रचित सुभाषितरत्न कोष संस्कृत सुभाषित संग्रहों में प्रथम सुभाषित–संग्रह ग्रंथ है। इसके रचयिता विद्याकर है। कुछ विद्वान् डॉ. थामस् महोदय द्वारा रचित 'कवीन्द्रवचनसमुच्चय' को प्रथम सुभाषित संग्रह मानते हैं। विद्याधर एक बौद्ध विद्वान तथा वङ्गदेशीय कवि थे। यह कोष 50 व्रज्याओं–सुगत व्रज्या, सूर्यव्रज्या, वसन्तव्रज्या, ग्रीष्म व्रज्या, प्रवृड् व्रज्या, शरद् व्रज्या, हेमन्त व्रज्या, शिशिर व्रज्या, मदनव्रज्या, समाप्तिनिधुवनचिन्ह व्रज्या, मानिनी व्रज्या, विरहिणी व्रज्या, विरहि व्रज्या, असती व्रज्या, दूतीकोपालम्भव्रज्या, प्रदीप व्रज्या, अपराह्व व्रज्या, यशोव्रज्या, अन्यापदेश व्रज्या, वातव्रज्या, जातिव्रज्या, माहात्म्य व्रज्या, सद्व्रज्या, असद्व्रज्या, दीन व्रज्या, अर्थान्तरन्यास व्रज्या, चाटुप्रज्या, निर्वेद व्रज्या, वार्द्धक्य व्रज्या, श्मशान व्रज्या, वीरव्रज्या, प्रशस्तिव्रज्या, पर्वत व्रज्या, शान्ति व्रज्या, संकीर्ण व्रज्या तथा कविस्तुति व्रज्या। इनमें कुल 1738 सुभाषित सङ्कलित है। इस ग्रंथ में अश्वघोष, वसुकल्प, राजशेखर, भोजदेव, बाण, मयूर, भवभूति, वाक्पतिराज, विशाखादत्त जैसे उद्भट विद्वानों के सुभाषित संग्रहित है। प्रथम छः व्रज्याएँ विभिन्न देवताओं को समर्पित है। सातवीं में सूर्य–स्तुति, 8–13 में षड्ऋतु वर्णन, 14–26 में प्रणय सम्बन्धी, 27–31 में दिनमान सम्बन्धी तथा शेष में विविध विषयों से सम्बन्धित सुभाषित सङ्कलित है।

इस ग्रंथ के प्रमुख स्रोत नगोर मठ तिब्बत में उपलब्ध ताड़पत्र, डॉ. थामस कृत कवीन्द्रवचन समुच्चय तथा कठमाण्डु नेपाल में उपलब्ध राजगुरु पाण्डुलिपि।[22]

2. सदुक्तिकर्णामृतम्

श्रीधरदास ने 1205 ई. में सदुक्तिकर्णामृतम् नामक सुभाषित संग्रह का संकलन किया। वह प्रसिद्ध बङ्गदेशीय राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष बटुदास के पुत्र थे। यह ग्रन्थ 5 प्रवाहों में विभक्त है देव–शृङ्गार–चाटु–अपदेश–उच्चावच प्रवाह। देवप्रवाह 95 वीचियों में विभक्त है जिनमें 475 सुभाषित संकलित है। शृङ्गार प्रवाह 179 वीचियों में विभक्त है जिनमें 895 पद्य संकलित है। चाटु प्रवाह में 54 वीचियों में 270 पद्य है। अपदेश प्रवाह के

अन्तर्गत 72 वीचियों में 360 पद्य तथा उच्चावच प्रवाह में 76 वीवियों में 380 पद्य संग्रहित है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल 476 वीचियाँ है, जिनमें 2380 पद्य है। स्वयं ग्रन्थकार ने अन्त में लिखा है–

"श्रीधरदासविनिर्मितसदुक्तिकर्णामृते प्रवाहाणाम्।
पञ्चकमिह षट्सप्तत्यधिकशतचतुष्टयी वीचिः।।
श्लोकानां च शतत्रयमशीत्युपेतं सहस्रपञ्चयतम्।।
शाकेऽत्र सप्तविंशत्यधिकशतोपदशशते शरदाम्।
श्रीमल्लक्ष्मणसेनक्षितिपस्य रसकविंशेऽब्दे।।
सविर्तुगत्या फाल्गुनविंशेष परार्थहेतवे कुतुकात।
श्रीधरदासेनेदं सदुक्तिकर्णामृतं चक्रे।।"[23]

3. सूक्तिमुक्तावली

सोमपाल विलास नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेता जल्हण ने 1258 ई. में सूक्ति मुक्तावली नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। जल्हण संस्कृत के एक प्रख्यात कश्मीरी कवि थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मी देव था। ये राजपुरी के कृष्ण नामक राजा के मंत्री थे जिसने सन् 1147 ई. में राज्य प्राप्त किया था। यह ग्रन्थ 133 पद्धतियों में विभक्त है जिसमें लगभग 240 कवियों से सम्बन्धित 2790 सुभाषित संग्रहित है। यह लघु तथा बृहद् के भेद से दो संस्करणों में विभक्त है। प्रथम संस्करण में कवि तथा कविता से सम्बन्धित सुभाषित तथा दूसरे संस्करण में प्रसन्नता, प्रेम, राजसेवा, भाग्य, बुद्धि, अलगाव आदि से सम्बन्धित सुभाषित संकलित है।

4. शार्ङ्गधर पद्धति

शार्ङ्गधर ने 1363 ई. में शर्ङ्गाधर पद्धति नामक सूक्ति संकलन की रचना की। इस ग्रन्थ के प्रशस्ति पद्यों से पता चलता है कि शार्ङ्गधर शाकम्बरी के चह्वाण राजा हम्मीर के गुरु राघवदे व के पौत्र तथा दामोदर के पुत्र थे–

"पुरा शाकम्बरीदेशे श्रीमान्हम्मीरभूपतिः।
चाहुबाणान्वये जातः ख्यातः शौर्य इवार्जुनः।।

तस्याऽभवत्सभ्यजनेषु मुख्यः परोपकारण्यसनैकनिष्ठः।

पुरन्दरस्येव गुरुर्गरीयान् द्विजाग्रणी राघवदेवनामा।।

गोपाल–दामोदर देवदास संज्ञा बभूवस्तनयास्दीयाः।

नेत्रावताराः इव चन्द्रमौलेरपाकृतध्वान्तगणास्त्रयोऽपि।।

तेषां मध्ये यस्तु दामोदरोऽमूदुत्पाथ त्रीनात्मजान्वीतरागः।

भागीरथ्यां शुद्धदेहं विधाय ज्ञानदात्मन्येव निष्ठाां जगाम।।

ज्येष्ठः शार्ङ्गधरस्तेषां लघुलक्ष्मीधरस्ततः।

कृष्णोऽनुजस्ततस्तेषां त्रयस्त्रेताऽग्नितेजसः।।"[24]

इस ग्रन्थ में 163 पद्धतियाँ है, जिनमें 4689 सुभाषित संकलित है। इसी का बृहत् रूप बृहत् शार्ङ्गधर पद्धति है, जिसमें 588 प्रकरणों में 7586 पद्य संकलित है।

5. सूक्तिरत्नहार

14वीं शती में सूर्य पंडित कलिङ्गराय (सूर्यकलिङ्गराय) द्वारा संकलित सूक्तिरत्नहार चार पर्वों में विभक्त है, जिनमें 2327 पद्य संकलित है। प्रत्येक पर्व में पुरुषार्थचतुष्ट्य में से एक–एक पुरुषार्थ को लेकर सुभाषित संग्रहित है। इसमें 81 ग्रन्थों के 57 ग्रन्थकारों के पद्य उद्धृत है।

"सूक्तिरत्नहार ही एकमात्र ऐसा संग्रह है जिसमें व्यासशतक तथा व्यास के 18 पद्यों को उद्धृत किया गया है।"[25]

6. सुभाषित सुधानिधि

14वीं शती में संकलित इस ग्रन्थ के संकलनकर्त्ता सायण है। इसमें नीतिवाक्यों का सरस संकलन है। लुड्विक् स्टर्नबाख का मत है कि– "सुभाषित सुधानिधि तथा सूक्तिरत्नहार मूलतः एक ही संकलन है और सूक्तिरत्नहार ही मौलिक है।"[26] यह भी सूक्तिरत्नहार की तरह चार पर्वों में विभक्त है तथा पुरुषार्थ–चतुष्ट्य से सम्बन्धित सूक्तियाँ संकलित है।

7. सुभाषितावली

इस बृहत् सुभाषित संग्रह के संकलनकर्ता वल्लभ देव है। इनका स्थितिकाल 14वीं शती है। इसमें 101 पद्धतियों में 360 कवियों के 3527 पद्य संकलित है। इसमें देवता–ऋतु–नीति–आचार से सम्बन्धित पद्य है। शार्ङ्गधर पद्धति के समान ही यह ग्रन्थ सुभाषित संग्रहों में सर्वाधिक लोकप्रिय है।

8. सुभाषितनीवी

14वीं शती में वेंकट माधव कृत यह एक नीतिपरक सूक्ति संग्रह है। यह 12 पद्धतियों में विभक्त है, जिनमें प्रत्येक में 12 ही पद्य है। इस ग्रन्थ में अनिपुण, दृप्त, खल, दुर्वृत्त, असेव्य, महापुरुष, समुचित, सदाश्रुत, नीतिवदान्य, सत्कवि और परीक्षक नामक पद्धतियों में अन्योक्तिपरक शैली में रचित सुभाषित संकलित है।

9. व्यास सुभाषित संग्रह

इसे व्यासशतक के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 100 पद्य है, मूलपाठ में 98 तथा टिप्पणी में 12 पद्य है। अनुष्टुप छन्द में रचित सुभाषितों का इसमें संकलन है।

10. प्रस्तावरत्नाकर

14वीं शती में हरिदास ने प्रस्ताव रत्नाकर नामक सुभाषित ग्रंथ का प्रणयन किया। इसमें 21 परिच्छेद है तथा चतुर्थ परिच्छेद अपनी अन्योक्तियों के लिए प्रसिद्ध है।

11. पुराणार्थ संग्रह

पुराण, धर्मशास्त्रादि से सुभाषितों का संकलन कर वेंकटराय ने इस ग्रन्थ की रचना की। यह संवादात्मक पद्धति पर आधारित है। यह 30 अध्यायों में विभक्त है, जिनमें 136 पद्य है। इसमें नीति तथा राजनीति से सम्बन्धी सुभाषित अधिक है।

12. प्रसन्नसाहित्यरत्नाकर

इस सूक्ति ग्रन्थ के रचयिता नन्दन पण्डित है। सुभाषितरत्नकोष का अनुकरण करते हुए 15वीं शती के उत्तरार्द्ध में यह ग्रन्थ रचा गया। इसमें कुल 1428 पद्य है, जिनमें 480 पद्य सुभाषितरत्नकोष तथा 245 पद्य सदुक्तिकर्णामृत से उद्धृत है। इसमें मुख्य रूप से कलिङ्ग देश का वर्णन है। इसमें कपिलेश्वर गजपति के 36, त्रिविक्रम गजपति के 64 तथा पुरुषोत्तम गजपति के 96 पद्य है।

13. पद्यावली

इस ग्रन्थ के रचयिता रूपगोस्वामी है। इस ग्रन्थ में 129 कवियों से सम्बन्धित 386 पद्य है। रूपगोस्वामी ने यह संग्रह कदम्बक कौतुक के लिए रचा है–

"पद्यावली विरचिता रसिकैर्मुकुन्द
सम्बन्धबन्धुरपदा प्रमोदोर्मिसिन्धुः
रम्या समस्ततमसां दमनी क्रमेण
संगृह्यते कृतिकदम्बककौतुकाय।।"[27]

चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप गोस्वामी ने इस संकलन में गौड़ीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित सुभाषितों का संग्रहण किया है। इसमें श्रीकृष्ण की महिमा, भजनमाहात्म्य, नाममाहात्म्य, नामकीर्तन, श्रीकृष्णध्यान, भक्तवात्सल्य, भक्तो का माहात्म्य, भक्तानां दैन्योक्ति, मोक्षानादर, श्रीभगवद्धर्मतत्त्व, वासक सज्जा आदि विषयों पर सुभाषित संकलित है। अमरुक–भवभूति–क्षेमेन्द्र जैसे कवियों के सुभाषितों का संकलन है।

14. सूक्तिमुक्तावली

हरिहर द्वारा रचित इस ग्रन्थ में 12 प्रकरण है–मंगल, बालविनय, सुहृदुपदेश, प्रवास, राजप्रशस्ति, राजोपासन, राजनीति, समय वर्णन, शृङ्गारवर्णन, नायक–नायिका भेद, प्रकीर्णक तथा परमार्थ। यह हरिहर द्वारा रचित एक स्वतंत्र मुक्तक संग्रह है। इसमें हरिहर ने स्वयं के द्वारा रचित 655 सुभाषितों का संकलन किया है।

15. सुभाषित हारावली

हरिकवि ने 17वीं शती के उत्तरार्द्ध में सुभाषित हारावली नामक सुभाषित–संग्रह का संकलन किया। ये संभाजी के दरबारी कवि थे। इनको 'अकबरिया कालिदास' के नाम से जाना जाता था। इस ग्रन्थ में 180 कवियों द्वारा रचित 2048 सुभाषित संग्रहित है, जिनमें 44 सुभाषित स्वयं हरिहर द्वारा रचित है।

16. शृंगारालापसुभाषित मुक्तावली

याज्ञिक ने शृंगारालाप सुभाषितमुक्तावली नामक ग्रन्थ की रचना की। यह केवल शृंगारपरक पद्यों का संकलन है। इसमें 11 प्रकरणों में 1145 वर्णनात्मक पद्य संकलित है। इस संग्रह में अन्य सुभाषित संग्रहों की भाँति पद्यों के साथ कवियों का नाम नहीं दिया गया है तथा मेघदूत, कुमारसंभव, शृंगारतिलक आदि मुक्तककाव्यों से तो स्फुट पद्यों के स्थान पर प्रकरण के प्रकरण उद्धृत है। "इनके कुछ पद्य डी.डी. कोशाम्बी द्वारा प्रकाशित भर्तहरि के शतक–त्रय तथा सुभाषितरत्न कोष में प्राप्त होते है। संकलनकर्त्ता का मानना है कि शृंगार ही जीवन को सरस बनाता है, उसी से जीवन में आनन्द की प्राप्ति होती है। उसके बिना जीवन नीरस है।"[28]

17. श्लोकसंग्रह

17वीं शती में मणिराम अथवा मणिराम दीक्षित ने श्लोक संग्रह नामधेय उत्कृष्टसूक्ति संग्रह ग्रन्थ की रचना की। इसमें 101 कवियों द्वारा रचित 1606 पद्य संग्रहित है। इसमें टोडरमल के भी 5 पद्य स्तुति रूप में उद्धृत है। यह संकलन अप्रकाशित है तथा इसकी पांडुलिपि भंडारकर शोध संस्थान में सुरक्षित है।

18. बुद्धभूषण

महाराज संभाजी बुद्धभूषण के संकलनकर्त्ता है। छत्रपति संभाजी राजे भोसले मराठा सम्राट् और शिवाजी के उत्तराधिकारी थे। यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है, जिनमें 882 सुभाषित संग्रहित है। प्रथम खण्ड में कवियों से सम्बन्धित 194 पद्य, द्वितीय खण्ड में अर्थशास्त्र सम्बन्धी 630 पद्य है, जिसका मुख्य स्रोत कामन्दकीय नीतिसार, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा महाभारत है, अंतिम खण्ड में राजनीति तथा राजचर्या से सम्बन्धित 85 सुभाषित है।

19. पद्यरचना

17वीं शती में लक्ष्मणभट्ट अंकोलकरा ने पद्य रचना सुभाषितसंग्रह की रचना की। यह ग्रन्थ व्यापारों में विभक्त है। इसमें 15 व्यापारों में कुल 769 सुभाषित संकलित है। संकलित कवियों में अनेक परवर्ती कवि है। स्वयं कवि के भी 150 सुभाषित संग्रहित है।

20. रसिक जीवन

गदाधर भट्ट ने रसिक जीवन की रचना की। आप दक्षिण भारतीय ब्राह्मण तथा गौरीपति भट्ट के आत्मज थे। रघुनाथ भट्ट आपके गुरु थे। इस ग्रन्थ में 139 ज्ञात कवियों तथा 535 अज्ञात कवियों के 1478 सुभाषित संकलित है। यह ग्रन्थ 10 प्रबन्धों में विभाजित है। चतुर्थ प्रबन्ध से नवम प्रबन्ध तक रस सम्बन्धी सुभाषित है। इसमें पलांडु, शण, बिल्व जैसे विषयों से सम्बन्धी अन्योक्तियाँ बहुत रोचक लगती है।

21. सभ्यलङ्करण

17वीं शती में रसिक जीवन की पंक्तियों के आधार पर गोविन्दजीत ने इस सुभाषित–संग्रह की रचना की। यह ग्रन्थ मरीचियों में विभक्त है। इसमें 101 कवियों द्वारा रचित 853 सुभाषित संकलित है।

22. पद्यवेणी

वेणीदत्त द्वारा 17वीं शती में रचित यह सुभाषित संकलन 6 तरंगों में विभक्त है, जिनमें 14 ज्ञात तथा कुछ अज्ञात कवियों के 889 सुभाषित संकलित है। वेणीदत्त द्वारा रचित 230 पद्य भी इसमें है।

23. पद्यामृततरङ्गिणी

17वीं शती में संकलित इस ग्रन्थ में 45 कवि तथा 11 प्रबन्धों से 301 पद्य संकलित है। यह पाँच तरंगों में विभक्त है। इसके रचयिता हरिभास्कर थे।

24. सूक्तिसुन्दर

सुन्दरदेव कृत यह एक लघुसुभाषित संग्रह है। इसका संकलन काल 17वीं शती है। अकबर तथा शाहजहाँ जैसे मुगल बादशाहों की स्तुति में रचे पद्य भी इसमें संकलित

है। इसमें 2 कवियों वेणीदत्त तथा हरिभास्कर को नामतः उद्धृत किया है तथा 32 कवियों का उल्लेख मिलता है। इसमें राजवर्णन, कीर्ति वर्णन, खड्ग वर्णन आदि विषयों पर 174 सुभाषित संकलित है।

25. अन्योक्तिमुक्तावली

हंसविजयगणि कृत इस ग्रन्थ में जैन सम्प्रदाय सम्बन्धी लगभग 1/99 सुभाषित संकलित है जो 8 परिच्छेदों में विभक्त है। यह जैन सम्प्रदाय सम्बन्धी सुभाषितों का सबसे बृहत् संकलन है।

26. श्री सूक्तावली

यह भी अन्योक्तियों का सुन्दर संग्रह है। इसके संकलनकर्त्ता तथा समय अज्ञात है। यह 12 पद्धतियों में विभक्त है, जिसमें विविध विषय सम्बन्धी 192 पद्य संकलित है।

27. पद्यतरङ्गिणी (पद्यामृततरङ्गिणी)

व्रजनाथ ने इस सुभाषित संकलन की रचना की। व्रजनाथ राजा जयसिंह के पुत्र माधव सिंह के दरबार में थे। उनका यह सुभाषित–संग्रह दो भाषान्तरों में मिलता है, बृहत् संस्करण 12 तरंगों में तथा लघु संस्करण 10 तरंगों में विभक्त है। लघु संस्करण में 489 पद्य संकलित है।

28. विद्याधर सहस्रक

18वीं शती में विद्याधर ने इस संग्रह की रचना की। इसमें ज्ञात–अज्ञात कवियों से सम्बन्धी 999 पद्य संकलित है।

29. सुभाषित रत्न भाण्डागार

नारायण राम आचार्य द्वारा संकलित यह संस्कृत साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न स्त्रोतें से छन्दों के रूप में प्राप्त सुभाषितों का संकलिन है। इस ग्रन्थ में विविध–विषयों यथा–देवी–देवताओं की स्तुति, ज्ञान के विधाओं की महत्ता, साहित्य–संगीत कला की प्रशंसा, मित्रता–शत्रुता–चाटुकारिता जैसे लौकिक व्यवहार पर टिप्पणियाँ, कवि कल्पना की बातें, पेड़–पौधों–औषधियों की उपयोगिता आदि पर सुभाषित संकलित है। यह 7 प्रकरणों में विभक्त है, जिनमें लगभग 10000 सुभाषित संकलित है।

30. सूक्तिमलिका

नारोजी कृत सूक्तिमलिका 8 पद्धतियों में विभक्त है, जिनमें लगभग एक सहस्त्र पद्य संग्रहित है।

31. सुभाषित–प्रबन्ध

इस ग्रन्थ के रचयिता के सम्बन्ध में दो मत प्राप्त है। प्रथम मत के अनुसार आफ्रेट, विश्वेश्वरनाथ रेऊ, श्रीनिवासन जैसे विद्वानों ने इसे राजा भोज की कृति माना है जबकि आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 18वीं शती के शृंगवेरपुर के राजा राम को इस संकलन का कर्त्ता माना है। इसमें 255 पद्य संकलित है जिनमें 13 पद्यों में भोज के प्रताप तथा कीर्ति का वर्णन है।

32. संस्कृत सूक्ति रत्नाकर

रामजी उपाध्याय कृत इस सुभाषित संकलन में सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय से 1262 सुभाषितों का संकलन है। यह 45 भागों में विभक्त है। इसमें ऋग्वेद से लेकर लौकिक साहित्य तक की सूक्तियाँ तथा अन्तिम भाग में कवियों की प्रशस्ति के सुभाषित संकलित है।

33. संस्कृत सूक्ति सागर

नारायण स्वामी कृत यह ग्रन्थ देव तथा रस नामक दो भागों में विभक्त है। देव भाग में विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित स्तुतिपरक पद्य है तथा रस भाग में नायक–नायिका शृंगार आदि से सम्बन्धित सूक्तियाँ संकलित है।

34. महा–सुभाषित संग्रह

संस्कृत सुभाषितों से सम्बन्धित सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है महासुभाषित संग्रह। इसका संकलन स्टर्नबक ने पुरातन पाण्डुलिपियों के आधार पर किया है। यह 20 भागों में प्रकाशित होना है, किन्तु अभी तक 5 ही भाग प्रकाशित हुए है। यह अकारादि के क्रम से संयोजित ग्रन्थ है जिसमें संस्कृत वाङ्मय की अधिकाधिक सुभाषित आंग्नानुवाद सहित संग्रहित है।

35. गांधीसूक्तिमुक्तावली

चिन्तामणि द्वारकानाथ कृत यह ग्रन्थ 1957 में गांधी स्मारक निधि, राजघाट, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें गांधीजी द्वारा कही गयी उक्तियों को संस्कृत भाषा में निबद्ध आंग्लानुवाद सहित किया है।

36. सुभाषित प्रदीप

श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय कृत सुभाषित प्रदीप 1981 में राजस्थान पत्रिका, जयपुर की ओर से प्रकाशित किया गया। इसमें नीति, सदाचार, विज्ञान, राजनीति आदि विषयों पर कही गयी सूक्तियों का संग्रह है।

37. परमानन्दसूक्तिशतकम्

श्री परमानन्द शास्त्री ने इस शतक की रचना की श्रीपरमानन्द शास्त्री का जन्म उ.प्र. के बुलन्द शहर के पास अनवरपुर में हुआ। इसमें इनकी स्वरचित सूक्तियों का संकलन है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन 1987 ई. में अलिगढ़ से हुआ। इन्होंने सूक्तियों का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है।[29]

38. सुवर्णमाला

प्रो. रामप्रतापशास्त्री कृत सुवर्णमाला का प्रकाशन 1999 में प्रो. रहसबिहारी जोशी ने किया। इसमें 1131 श्लोकों का संग्रह है। इसमें सभी सुभाषित स्वर तथा व्यञ्जन के क्रम में संग्रहित है। यह अंग्रेजी तथा हिन्दी में अनुदित है।

39. बौद्ध–सुभाषित

2003 में प्रकाशित इस संकलन में बौद्ध धर्म सम्बन्धी सूक्तियों का संग्रह है।

40. जगन्नाथ सुभाषितम्

डॉ. जगन्नाथ पाठक कृत जगन्नाथ सुभाषितम् का प्रकाशन सन् 2011 में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली से हुआ। इसका संपादन बनमाला बिश्वाल ने किया है। यह ग्रन्थ 3 भागों में विभक्त है। इसमें डॉ. जगन्नाथ कृत विविध विषयों से सम्बन्धित सुभाषितों

का संकलन है। प्रथम भाग में 632, द्वितीय में 2132 तथा अंतिम में 710 पद्य संकलित है। यह ग्रन्थ मेरे प्रस्तुत अध्याय का विषय होने के कारण इसके विषय में आगे चर्चा करुंगा।

41. सुभाषितावली

डॉ. सुदेश आहूजा कृत 'सुभाषितावली' का प्रकाशन 2015 में चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली से हुआ है। इस सूक्ति संकलन का आधार 48 महाकाव्य है। इसमें सर्वप्रथम सुभाषित की परिभाषा; उद्‌भव तथा विकास पर चर्चा की गयी हैं उसके बाद सज्जन–दुर्जन, सुख–दुःख, गुण–दोष, लोकव्यवहार, राजनीति, नारीस्वभाव, परोपकार, विद्या आदि विषयों पर लगभग 3000 सुभाषित संकलित है। ये सभी सुभाषित व सूक्तियाँ संस्कृत के प्रमुख 50 महाकाव्यों से संकलित है। इस संकलन में रामायण महाभारत जैसे उपजीव्य, महाकाव्यों से लेकर वर्तमान वृण्यडमरणम् तक के महाकाव्यों से सूक्तियाँ संग्रहित की गयी है तथा साथ में उनका हिन्दी अनुवाद व सूक्ति साहित्य पर विस्तृत भूमिका सहित यह पुस्तक 21वीं शती के संकलन ग्रन्थों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

इनके अलावा भी संस्कृत वाङ्मय में अनेक सुभाषित संग्रह मिलते हैं, यथा बहु दर्शन नामक सुभाषित संग्रह, दम्पत्ति शिक्षा, गौरमोस संकलित कवितामृत कूप, हनुमान् संकलित दशावतार, लौकिक न्याय श्लोक आदि।

निष्कर्षतः काव्य में सुभाषितों की अहम् भूमिका होती है। सर्वोत्तम सुभाषित वह है जो श्रोता या पाठक को सामान्य रूप से सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे। समाज में प्रचलित उत्कर्ष एवं अपकर्षकारी विभिन्न क्रिया–कलापों का समुचित निरूपण करने में सुभाषित सहायक होते हैं। सभी कवियों ने अपनी प्रतिभानुसार सुभाषितों का यथावसर प्रयोग किया है। महाकवि कालिदास के सुभाषित लोगों के जिह्वाग्र पर नर्तन करते है। माघ, भारवि तथा हर्ष ने भी अपने काव्यों में सुभाषितों का प्रयोग किया है।

सुभाषितों से कुछ सीमा तक लोकोक्ति तथा मुहावरों से भी तुलना की जा सकती है। सुभाषितों की महत्ता सूचित करने वाले ग्रन्थ भी विद्यमान है यथा सूक्ति मुक्तावली, सुभाषितरत्नभाण्डागार, सुभाषितावली आदि।

इन ग्रन्थरत्नों में पूर्वकालीन महाकवियों के काव्य ग्रन्थों से सूक्तिरत्न सङ्कहित कर रखे गये हैं। इनमें समाज के हर प्रकार के विद्याओं तथा व्यक्तियों के गुण–दोष का रम्य निरूपण प्राप्त होता है। काव्यों में सुभाषितों का प्रयोग सज्जनों की प्रशंसा, दुर्जनों की निन्दा, विधि की विडम्बना, भवितव्यता, उत्तमराजा की प्रशंसा तथा कुनृपति की निन्दा, लक्ष्मी की निन्दा व प्रशंसा, सामाजिक विडम्बना, मानवता को संदेश, राजनीति, भ्रष्टाचार, दलित प्रसङ्ग आदि अतिशय प्रभावशाली ढंग से निरूपित किया गया है।

(2) जगन्नाथसुभाषितम् में जीवन के शाश्वत मूल्यों का चिंतन

जीवन मूल्य की परिभाषा एवं स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है और समाज में रहने के लिये समाज के कुछ सिद्धांत होते हैं जिनके आधार पर वह अपना जीवन यापन करता है और तभी वह मनुष्य सामाजिक प्राणी कहलाता है।

"येषां न विद्या तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म;
ते मर्त्यलोके भूवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।"[30]

अर्थात् जिनके पास न विद्या है, न तपस्या है, न दान है, न गुण है, न धर्म है, न शील है, और न यश है, वे मनुष्य रूप में तो है, लेकिन वे पशु के समान धरती पर केवल विचरण कर रहे है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन मूल्य रहित होना ठीक उसी प्रकार होगा जैसे मकान तो बहुत सुन्दर बनाया लेकिन उसमें दरवाजा नहीं है तो वह किस काम का है।

अतः हमें अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए उपरोक्त श्लोक में जो सिद्धान्त बताये गये हैं इनमें से हम यदि किसी एक को भी अपने जीवन में धारण करते हैं तो हमारा जीवन एक सफल जीवन बन सकता है।

जीवन मूल्य का अर्थ व परिभाषा

संस्कृत में मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति 'मूल' धातु में यत् प्रत्यय करने पर नपुंसकलिङ्ग में, संज्ञा शब्द 'मूल्य' शब्द निष्पन्न हुआ है। यत् प्रत्यय करने का अर्थ है 'सम'। इस प्रकार मूल्य शब्द का अर्थ मूल के समान।[31]

इस एक शब्द को हम अनेकों अर्थ में देख सकते हैं। या कई अर्थ कर सकते हैं। जैसे–उखाड़ देने योग्य, मोल लेने योग्य, कीमत, मोल, लागत, मजदूरी, किराया या भाड़ा, वेतन, लाभ–पूंजी, मूलधन आदि तुलनात्मक दृष्टि से मूल्या शब्द अंग्रेजी भाषा के वैल्यू (Value) शब्द का समानार्थक है।[32]

1. मूलेन अनाम्यं मूल्यम् 2. मूलेन समो मूल्यः 3. मूल महर्ति इति मूल्यम् उपर्युक्त व्युत्पत्तियाँ प्रायः सभी धर्मपरक रूप या अर्थ का बोध कराती है। जो जीवन के लिए मूल्यवान हो वह जीवन मूल्य है।

संसार के जीवधारी प्राणियों के लिये कतिपय मूल्य सदैव शाश्वत् रहने वाले तथा कभी नष्ट न होने वाले हैं जो जीवित रहने के लिये प्रत्येक मानव के लिये मूल्यवान है। शाश्वत् जीवन मूल्य नवजीवन की आवश्यकताएँ ही नहीं, अपितु सारगर्भित जीवन मूल्य महामानवता के परिचायक है।

भव्य और नव्य जीवन के लिये जो आवश्यक हो, उपयोगी हो, महत्त्वपूर्ण हो, कीमती हो, मूल्यवान हो, बहुमूल्य हो, आदर्श हो, महनीय शोभनीय गुणों से युक्त हो, महनीयता की जननी हो, प्रतिष्ठित जीवन की स्थायित्वता हो जो सदैव शाश्वत, समुज्ज्वल, स्थायी तथा मूल्यवान् तत्त्वों से निर्मित हो आदि समस्त उत्कृष्ट सर्वोत्तम वस्तुएँ मूल्य है।

संक्षिप्त रूप से हम कह सकते है कि पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एवं सत्यं, शिवं सुन्दरम् जीवन के शाश्वत मूल्य है। जिन पर विराट् महामानव के सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट व्यवहार स्वतः संचालित होते हैं। इन समस्त उत्कृष्ट मूल्यों का विवेचन आर्या सम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक द्वारा उनके सुभाषित संग्रह 'जगन्नाथसुभाषितम्' में स्पष्ट रूप से किया गया है।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने मूल्य की परिभाषा अपने–अपने दृष्टिकोण के अनुरूप व्यक्त की है। जो निम्नांकित है–

श्री रोहित मेहरा के अनुसार – मूल्य न तो, किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही यह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून, मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अंतर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है जो हमारे समाज में देखने को मिलता है।[33]

डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित के शब्दों में – 'मूल्य' वह है, जिसके पीछे हमें चलना चाहिए। जिसे हम उपलब्धि के योग्य समझे, जिसे हम जीवन में महत्त्व दे सके, मूल्यों की धारणा लेखक की दृष्टि में किसी वस्तु के तत्त्व और सत्य की तात्विक धारणा है। ऐसे तत्त्व का सार तत्त्व ही है। जिससे वस्तु मूल्यवान बनती है।[34] दुर्खीम ने सामाजिक मूल्यों को आदर्श माना है। इनके अनुसार मूल्यों की विवेचना एक सामाजिक तथ्य के रूप में ही करनी चाहिए।[35]

वस्तुतः मूल्य अन्तः पुरुष की चेतना का विकासमान गुण है। मूल्य और आचार एक–दूसरे के पूरक है, किन्तु इन दोनों के अभाव में जीवन असंभव है।

मानवीय मूल्य विराट् मानव–जीवन की अगणित शिराओं में संचरित होता रहता है। जहाँ भी यह रक्त प्रवाह रुका वही अंग पक्षाघात से आहत होकर सूख जाता है, बेकाम हो जाता है। हमारी मानव–संस्कृति में आज पूरे देश, पूरी जातियाँ, पूरे सम्प्रदाय, पूरी चिन्तन धारायें और पूरे साहित्यिक निकाय मूल्यहीनता से इस पक्षाघात से आशक्त होकर प्रगति और विकास की दिशाओं से भटक गये है। हमारे सामने मानवीय मूल्य को पूरी संस्कृति के प्राणों में प्रतिष्ठित करने का जटिलतम् दायित्व है।[36]

महामानव मूल्यों के आदर्शमय, मर्यादित, नियमित क्रमबद्ध सुदृढ़ सोपानों के सहारे ही मानव अपने आदर्शों, सिद्धांतों, नियमों, कामनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, योग्यताओं, रूचियों, अभिलाषाओं का संचय करता है। मानव निर्मित समाज शाश्वत मूल्यों का नियामक एवं श्रेष्ठतम बिन्दु है।

जीवन मूल्यों को वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि के भेदों से विभाजित किया जा सकता है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक कृत 'जगन्नाथ सुभाषितम्' में जीवन के शाश्वत् मूल्यों का चिंतन निम्न प्रकार है–

वैयक्तिक जीवन मूल्य

विषय–प्रवेश–वैयक्तिक जीवन मूल्य व्यक्ति के महान व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानव व्यक्तित्व की सुन्दरता और प्रभावपूर्ण वैयक्तिक जीवन मूल्य पर आधारित होती है। विनय, औदार्य, करुणा, सहिष्णुता, सौहार्द, प्रेम, सहिष्णुता, विवेक, धैर्य आदि ऐसे वैयक्तिक जीवन मूल्य हैं जिनसे व्यक्ति का का आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व सूर्य की तरह प्रकाशमान होने लगता है।

जगन्नाथसुसभाषितम् में वैयक्तिक जीवन मूल्यों का यथेष्ठ क्रमिक विवेचन प्रस्तुत है–

विनय – वैयक्तिक जीवन के मानवीय सद्गुणों को सम्पन्न एवं उद्भाषित करने में विनय का जीवन में उच्च एवं श्रेष्ठ स्थान है। विनयशील व्यक्ति जीवन में अत्यन्त उच्चता को प्राप्त करता है। डॉ. पाठक स्वयं विनय को सभी मानवीय गुणों में श्रेष्ठ मानते हैं तथा स्वीकारते हैं कि विनय द्वारा सभी का हृदय जीता जा सकता है–

"विनयः सर्वगुणानां मन्य श्रेष्ठोऽस्ति मानवस्य गुणः।
जितमिह सदैव हृदयं सता विनीतेन सर्वस्य।।"[37]

डॉ. पाठक स्वयं विनय सम्पन्न है। वह स्वभाव से विनीत है। इस संसार में हर कोई अपनी मूर्ध्ना को उठाकर अर्थात् घमण्डपूर्वक चलता है, किन्तु कवि अपनी मूर्ध्ना को नमन करके चलता है–

"यत्र चलन्ति कतिपये स्वमुन्नमय्य स्मयेन मूर्धानम्
तत्र जगन्नाथ! त्वं नतेन मूर्ध्ना कथं चलसि।।"[38]

यथा वा –

"कोऽप्यागच्छेदेनं मिलितुं गच्छेद् विना स सङ्कोचम्

क्रियतां स जगन्नाथे विनतो न तु दम्भसम्पन्न।।"[39]

इस श्लोक में भी विनशीलता का मूल्य दिखाया गया है। जीवन जीने के लिये और समाज में अपना स्थान बनाऐ रखने के लिये इस मूल्य को जीवन में उतारना परम आवश्यक है।

औदार्य – जीवन में परिपक्व बनने के लिए औदार्यता का गुण होना चाहिए। औदार्य सम्पन्न व्यक्ति में ही सदाचार, सहिष्णुता जैसे उत्तम गुण निवास कर सकते है। भारतीय संस्कृति एवं इतिहास अपनी उदारता के लिए ही सकल विश्व में प्रसिद्ध रहा है–

"भारतवास्त्व्यानामितिहासो यत् प्रसिद्धमौदार्यम्

परिलक्ष्यते कुतश्चित् प्रवर्तमाने न तत् काले।।"[40]

पुरातन भारतीय संस्कृति का ध्येय वाक्य था 'उदारचरितानां वसुधैव कुटुम्बकम्' किन्तु कवि कहता है कि आज मनुष्य में तादृश उदारता का अभाव होता जा रहा है। आज हमारे देश में सर्वत्र लघु चेत वाले लोग व्याप्त है, उदारचरित वाले लोग तो खोजने पर भी नहीं मिल रहे है–

"लघुचेतोभिर्भारतमस्माकं सर्वतो जनैर्व्याप्तम्

क्वचिदप्युदारचरिता गवेष्यमाणा न लभ्यन्ते।।"[41]

करुणा – वैयक्तिक जीवन मूल्यों में करुणा का अति उच्च स्थान है। बिना करुणा के धर्म का कोई महत्त्व नहीं है। वह करुणा ही थी जिसके फलस्वरूप आदि कवि वाल्मीकि के मुख से संस्कृत वाङ्मय की प्रथम छन्दोबद्ध रचना का उद्भव हुआ। हम जो कुछ भी देखते हैं, उसके प्रति हमारे मन में एक भावना जागती है, एक जज्बात मन में पैदा होता है, वही करुणा है। करुणा के कारण ही व्यक्ति उच्च स्थान को प्राप्त करता है। उसी के आधार पर मानव बोधिसत्त्व अथवा चिश्ती कहलाता है–

"स्यादथ स बोधिसत्त्वः स्यादजमेरस्थितः स चिश्ती वा

मानवमात्रं प्रति यः समजनि करुणार्द्रचित्त इह।।"[42]

कवि इसी करुणा को अत्र–तत्र–सर्वत्र तलाश कर रहा है, किन्तु आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य स्वयं के लिए जी रहा है। कवि इससे बहुत व्यथित है। उसे आज कोई करुणार्द्रचित्त व्यक्ति नहीं मिल पा रहा है जिसके साथ वह अपनी बात साझा कर सके–

"कस्मै निवेदयेयं कथामिमामात्मनोऽद्य करुणार्द्राम्
न मिलन्त्येषु दिनेषु श्रोतारो हन्त करुणार्द्रा।।"[43]

करुणा आनन्द का निमित्त है। आज हर धन–सम्पत्ति पाने में लगा हुआ है, उसे अपने सिवा किसी ओर से मतलब नहीं है। इससे मानव सुविधाएँ तो उपलब्ध कर सकता है, किन्तु आनन्द का वास्तविक स्रोत तो करुणा ही है, जो मानव को एक–दूसरे के साथ जीना सिखाती है, उसमें सहानुभूति उत्पन्न करती है। तादृश करुणार्द्रचित्त वाला व्यक्ति आज कवि को ढूंढने पर भी नहीं मिल रहा है। आज सभी मानव झूठ का मुखौटा पहने हुए है। आज केवल रंगमंच पर ही करुणार्द्रचित्त देखने को मिलते हैं, किन्तु वास्तविक करुणार्द्रचित्त व्यक्ति मिलना बहुत मुश्किल है–

"अभिनेतारो लोके बहवो दृश्यन्त एव करुणार्द्राः
कस्यचिदेव हि चित्तं यथार्थतो भवति करुणार्द्रम्।।"[44]

ईश्वर करुणानिधान है। उसे सिर्फ करुणा व भक्ति के द्वारा ही पाया जा सकता है किन्तु आज का व्यक्ति ढोंग में फंसा हुआ है। वह स्तुति गानादि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने में लगा है। जबकि देवता तो करुणार्द्रभाव से प्रसन्न होते हैं–

"आरार्तिक्यैर्नैव स्तुतिगानैर्नैव किमपि देवानाम्
सिध्यति किञ्चित् किन्तु प्राणिषु करुणार्द्रभावेन।"[45]

जिस करुणा के बल पर भारत को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। जो समस्त जीवन का आधार थी। आज वही करुणा मानव मात्र में लेश मात्र भी नहीं है। आज दूसरे की पीड़ा देखकर किसी के भी हृदय में दुःख की टीस नहीं उठती है, ना ही दूसरे के अश्रुओं को देखकर किसी के नेत्र क्लिन्त होते हैं–

"कस्य न हृदयं भग्नं नेत्रे कस्याश्रुभिर्न क्लिन्ने
कारुणिक! पश्यतस्ते क्व गतं करुणार्द्रचित्तत्वम्।।"[46]

प्रेम – प्रेम एक–दूसरे के लिये चाह नहीं है बल्कि एक शक्तिशाली भाव है। प्यार अनेक भावनाओं का, रवैयों का मिश्रण है जो पारस्परिक स्नेह से लेकर खुशी की ओर विस्तारित है। ये किसी की दया, भावना और स्नेह प्रस्तुत करने का तरीका माना जाता सकता है। प्रेम सृष्टि की मूल प्रेरणा है और जगत् की प्रथम संचालिका शक्ति है। चर–अचर सभी प्रेम के कारण युग–युगान्तर तक अजर–अमर रहते हैं। प्रेम तो एक बहुमूल्य वस्तु है–

"इह जगति प्रतिभाति प्रेमैकं किमपि वस्तु बहुमूल्यम्
मृन्मयमिदमस्तित्वं हिरण्यमयं भवति तेनैव।।"[47]

प्रेम नारी पुरुष को परस्पर बाँधने वाली भावना है। यह भावना प्रीति की तृप्ति देने वाला आनन्द है। प्रेम ही जीवन की चरम उपलब्धि है। प्रेम मानव हृदय की शाश्वत् अनुभूति है। प्रेम से अलग होने का अर्थ जीवन को रसहीन और भावशून्य बनाना है। अमर कोष में प्रेम की परिभाषा इस प्रकार दी है–

"प्रेमा न प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहोऽथ दोहदम्
इच्छाङ्काक्षा स्नेह तृङ्वाञ्छा लिप्सा मनोरथः।"[48]

किन्तु आज के इस भौतिकतावादी युग में मानव प्रेम का अर्थ भूल गया है। वह सिर्फ स्वयं के लिए जीने लगा है जबकि प्रेम तो दूसरों के लिए जीना सिखाता है। आज प्रेम स्नेहादि का स्थान ईर्ष्याद्वेषादि ने ले लिया है। समाज में सर्वत्र ईर्ष्या का भाव देखने को मिलता है।

आज हम इक्कीसवीं सदी के प्रेम की बात करें तो आज के इस आधुनिक समय में किसी कि पास किसी के लिये समय ही कहा है। आज के स्मार्ट युग में प्रेम भी स्मार्ट हो गया है। वह मोबाईल प्रेम से शुरु होकर वासनात्मक प्रेम पर ही समाप्त हो जाता है। प्रेम स्वार्थरूपी हो चुका है एक–दूसरे से अपेक्षाएँ जुड़ी है शारीरिक वासना की अपेक्षा प्रथम दृष्टिगोचर हो जाती है। वास्तविक प्रेम तो मन की एक उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है या फिर एक सुखद एहसास है, इसमें जब ईर्ष्याद्वेष का समावेश हो जाता है तो प्रेम का स्थान ही नहीं रह जाता–

"प्रेमस्नेहादीनामर्थः परिवर्तितो दिनेष्वेषु
स्थानं गृहीतमेषा भीर्ष्याद्वेषादिभिर्जगति।"[49]

प्रेम त्याग तथा समर्पण का दूसरा नाम है; प्रेम से व्यक्ति विनम्र बनता है। प्रेम के दम पर इंसान नामुमकिन को भी मुमकीन बना सकता है। आज प्रेम का तात्पर्य आकर्षण मात्र हो गया है। जिस प्रेम के द्वारा भागवान को पाया जा सकता है, वह प्रेम आज वासनापूर्ति का साधन मात्र बन गया है–

"यत्प्रेम वासनायाः पूर्तेरिह साधनं मतं जगति
प्राप्यत इह तेनैव प्रेम्णा भगवान् मुकुन्दोऽपि।"[50]

कवि चाहता है कि आज के इस युग में जहाँ प्रेम का अर्थ ही व्यक्ति भूल गया है, जहाँ पूर्व में राम तथा कृष्ण ने सम्पूर्ण मानवता को प्रेम का संदेश देया था जो कि आज हम लोग भूल चूके है, उस प्रेम का वास्तविक अर्थ पुनः मानव समझे।

इस ईर्ष्या–द्वेषादि से सम्पन्न समाज में एक नगर ऐसा भी होना चाहिए जो प्रेम की भावना से ओत–प्रोत हो, जिसमें घृणादि मानव विकारों के लिए लेश मात्र भी स्थान न हो–

"केनचिदिह भवितव्यं प्रेमेत्याख्येन तेन नगरेण
कुत्सितया घृणया बत यतः प्रवेशो न लभ्यते।।"[51]

सहिष्णुता – सहिष्णुता का अर्थ है सहन करना। सहिष्णुता एक अच्छे व्यक्ति का गुण माना जाता है और ये एक अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण के लिए बहुत आवश्यक है। असहिष्णुता व्यक्ति अथवा समाज को भयंकर विनाश की ओर ले जाती है। आज के व्यक्ति में सहिष्णुता का अभाव होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप पारिवारिक विघटन, आपराधिक गतिविधियाँ बढ़ती जा रही है। आज लोग एक साधारण सी चीज जैसे कोई प्रभावी व्यक्ति की नजरों में अपने करीबी के महत्त्व को सहन नहीं कर सकते। कवि समाज में बढ़ती असहिष्णुता से बहुत खिन्न है। वे वृक्ष के माध्यम से व्यक्ति को हर परिस्थिति में सहिष्णु बनने को कहते हैं। जिस प्रकार वृक्ष वायु से आन्दोलित किया जाता है, तुषारपात् से बार–बार पीड़ित होता है, हर प्रकार के कष्ट सहता हुआ भी अपने गुण सहिष्णुता को नहीं त्यागता है, उसी प्रकार आज के मानव को हो जाना चाहिए। कवि ने यह भाव व्यंजित किया है कि यदि मानव भी वृक्ष की भाँति सब कुछ सहता हुआ निरन्तर

नम्र बनता हुआ सात्त्विक पथ पर चलता रहेगा। तो वह उत्कृष्टता को प्राप्त करता हुआ उन्नत् समाज का निर्माण कर सकेगा–

"वाताऽऽन्दोलयति त्वां तुषारपातोऽसकृच्च्य पीडयति
सहनक्षमत्वमेतद् वृक्ष! कथय शिक्षितं कस्मात्।"[52]

आज व्यक्ति में सहिष्णुता की जगह असहिष्णुता बढ़ती जा रही है। असहिष्णुता आमतौर पर वो शर्त है जिसमें अपने धर्म व प्रथाओं से अलग किसी अन्य धर्म, जाति या संस्कृति की प्रथाओं और मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते हैं। इस असहिष्णुता को आज लोगों ने धार्मिक कट्टरता का स्वरूप दे दिया है। भारतदेश 'विविधता में एकता' का विश्व में सर्वोत्कृष्ट उदाहरण रहा है। ये वो देश है जहाँ अलग–अलग जाति, पंथ, धर्म, रिवाज, संस्कृति, परम्परा और प्रथा को मानने वाले लोग वर्षों से बिना किसी भेदभाव के रहे हैं किन्तु आज धर्म के नाम पर हो रही अहिष्णुता समाज में रहने वाले लोगों को अलग करती है। राम साक्षात् सहिष्णुता की मूर्ति थे। वे सम्पूर्ण समाज को साथ लेकर चलते थे, उनके समय में धार्मिक विद्वेष नहीं था। आज उसी राम नाम का सहारा लेकर लोग देश में असहिष्णुता फैला रहे है। स्वयं को राम का अनुयायी कहने वाले लोगों में वस्तुतः रामत्व है ही नहीं–

"रामे यादृशमासीत् सीमातीतं महत् सहिष्णुत्वम्
तादृशमेषु दिनेषु प्रतिभाति न रामभक्तेषु।"[53]

परोपकार – वैयक्तिक जीवन मूल्य के अन्तर्गत 'परोपकार' का अमिट एवं अतुल्य स्थान है। परोपकार का अर्थ है दूसरों की भलाई करना। मन, वचन और कर्म से परोपकार की भावना कार्य करने वाले व्यक्ति संत की श्रेणी में आते हैं। ऐसे सत्पुरुष जो बिना किसी स्वार्थ के दूसरों पर उपकार करते हैं वे देवकोटि के अंतर्गत कहे जा सकते हैं। परोपकार के कारण ही गांधीजी को महात्मा कहा जाता है। गांधीजी ने अपना सर्वस्व जीवन देश को समर्पित कर दिया। अपनी परोपकार की भावना के कारण ही कवि ने उन्हें महापुरुष से अभिहित किया है–

"हृदि सन्निधाय रामं स्वमनस्याधाय सर्वलोकहितम्
दाण्डी–यात्रायां प्रवृत्त आसीन्महापुरुषः।।"[54]

परोपकार के समान कोई धर्म नहीं है। परोपकार से आत्मा को जो संतोष प्राप्त होता है, वह कितना भी धन खर्च करने पर भी नहीं खरीदा जा सकता। परोपकार करने से हमारा चित्त व मन पवित्र बनता है। जीवन तो हर कोई जी लेता है, लेकिन धर्म के मार्ग पर चलकार नैतिकता का विकास करने वाले तो बिरले ही होते हैं। किन्तु आज मानव परोपकार से विमुख होता जा रहा है, जिसे देखकर कवि का मन खिन्न हो रहा है–

"लोकस्य व्यवहारा जाताः सर्वेऽपि हन्त परिवृत्ताः
दर्शं दर्शं चेतोऽस्माकं खिन्नं दिनेष्वेषु।"[55]

आज का मानव दिन प्रतिदिन स्वार्थी होता जा रहा है दूसरों के दुःख से प्रसन्न और दूसरों के सुख से दुःखी होता है। आज का व्यक्ति 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना को त्यागता हुआ सिर्फ अपने उदर की पूर्ति में लगा है–

"उदरस्य येन विधिना पूर्तिः प्रभवेद् दुरन्तपूरस्य
चिन्त्य इदम्प्रथमतया स एव मन्ये दिनेष्वेषु।"[56]

सामाजिक जीवन मूल्य

विषय–प्रवेश – कोई भी समाज, सामाजिक जीवन मूल्यों के बिना अधूरा है। वह सभ्य हो या असभ्य, पुराना हो या आधुनिक, एक मूल्य श्रृंखला रखता है। हर समाज की अपनी आचरण, अनुश्ञासन, मर्यादायें होती है। जीवन मूल्यों के आधार पर जीवनयापन करने वाले मानव उस अवस्था में पहुँच जाते हैं, जहाँ भौतिक, दैहिक एवं आध्यात्मिक त्रिविध दुःखों से विमुक्त हो जाते हैं। यह मूल्य ही उसकी जीवन नौकों को उस पार ले जाने का कार्य करते हैं, क्योंकि सार्थक जीवनयापन करने का मजा अलग ही है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसी कारण वह समाज तथा परिवार से मूल्य ग्रहण करता है। मूल्य सामाजिक विषय का अंग है क्योंकि जीवन मूल्यों का जितना सम्बन्ध व्यक्ति से है उतना समाज से भी। सामाजिक जीवन मूल्य ही मानव की उन अभिवृत्तियों, नीतियों आदि से सम्बन्धित होने के कारण ही समाज, राष्ट्र और मानवता की विस्तृत सीमा को गति प्रदान करते हैं। सामाजिक मूल्यों के लिये वैयक्तिक स्वार्थों की भी बलि देनी पड़ती है। राष्ट्र प्रेम, समाज प्रेम, मानवता, नारी के प्रति आदर, सहचरता आदि से उत्पन्न मूल्य समाजशास्त्री है क्योंकि इनसे ही समाज का संवर्धन होता है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक विरचित 'जगन्नाथसुभाषितम्' में सामाजिक जीवन मूल्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नलिखित है–

मानवता

मानवता शब्द का सरल शब्दों में मतलब है, मानव की एकता, इंसानियत यानि मानवता, हर मानव, चाहे वह किसी भी धर्म का हो, जाती–पाती का हो, उसमें पाया जाने वाला मूल धर्म मनुष्यत्व सबमें सामान्य है। हिन्दु, मुस्लिम आदि तो मानव के बाह्य धर्म है, उसका वास्तविक परिचय तथा विशेष गुण तो मनुष्यत्व है–

"परिचयो एको वस्तुत इतो मनुष्यस्य रे मनुष्यत्वम्
मुस्लिम इति हिन्दूरिति क्रिश्चन इति बाह्य आरोपः।"[57]

मानवता से बड़ा कोई भी जीवन धर्म नहीं होता है, मगर इंसान मानवता के धर्म को छोड़कर मानव के बनाये हुए धर्मों पर चल पड़ा है, यह सब उसकी अज्ञानता का परिणाम है। इंसार इंसानियत को छोड़कर मानव–धर्मों में जकड़ता जा रहा है। धर्मों की आड़ में अपने मनों के अन्दर वैर, निंदा, नफरत, अविश्वास, जाती–पाति के भेद कारण अभिमान को प्राथमिकता दे रहा है, मानव जीवन में मानव प्यार करना भूल गया है, अपने मकसद से दूर हो रहा है। आज मानव अपने शाश्वत् धर्म मनुष्यता की उपेक्षा करता हुआ, जात्यादि के भेद में फँसा पड़ा है–

"तिष्ठत्यधुना दृष्टि र्जात्यादिष्वेव हन्त सर्वाऽपि
तिष्ठत्यनपेक्षितमिव वराकमेतन्मनुष्यत्वम्।"[58]

आज मानव के मन में दानवता वाले गुण विद्यमान होते जा रहे हैं। धर्म के नाम पर लोग लहू–लुहान हो रहे हैं, आज हम मानवता को एक तरफ रखकर अपनी मनमर्जी अनुसार धर्म को कुछ ओर ही रूप दे रहे हैं, जिस कारण इंसान ओर इंसान में दूरियां बढ़ रही है, कहीं जाति–पाति को मानकर कहीं परमात्मा के नामों को बाँटकर तो कभी किसी ओर कारण से इन कारणों से दिलों में नफरत बढ़ती जा रही है, इंसानियत खत्म होती जा रही है, जहाँ पर इंसानियत खत्म होती है, वहाँ पर धर्म भी खत्म हो जाता है, जबकि हर धर्म के धार्मिक ग्रन्थों में जाति–पांति की जगह मनुष्यता की सीख मिलती है। हर ग्रन्थ में सबसे पहले इंसान बनने का पैगाम दिया है–

"वेदं बाइबिलं वा कुराणमथवा शुभं गुरुग्रन्थम्

उत्पद्यत एकान्ते पठति मनुष्ये मनुष्यत्वम्"[59]

आज का इंसान सिर्फ अपने स्वार्थों की खातिर धर्म को आड़ बनाकर मानवता को समूल नष्ट करता जा रहा है। ज्यों–ज्यों मनुष्य मानवता से हट रहा है, त्यों–त्यों उसमें दानवता बढ़ती जा रही है। इसी दानवता का स्वरूप आज आतंकवाद ने ले लिया है, जो कि सम्पूर्ण मानवता के लिए कलंक है। यह वह भस्मासुर रूपी राक्षस है, जो जितना दूसरों के लिए खतरनाक है, उतना ही फैलाने वाले के लिए भी है–

"आतङ्कवादनामा भस्मासुर एष कोऽपि जागर्ति

स्वप्रश्रयदातारं प्रथममसौ भस्मसात् कुरुते।।"[60]

मानव धर्म ही धर्म का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है। मानव धर्म यही सिखाता है कि सभी वर्गों को एक होकर अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग अहिंसा, विकास और सत्य को उजागर करने में करना चाहिए। आज जो हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, वह मानवता के लिए कलङ्क है–

"हिंसाप्रवृत्तिरेषा मानवतायाः कृते कलङ्क इति

कारुणिकत्वं क्व गतं क्व गतं करुणार्द्रचित्तत्वम्।"[61]

किसी भी व्यक्ति का सांस्कृतिक महत्त्व इस बात पर निर्भर है कि उसने अपने वहम् से अपने को कितना बंधन मुक्त कर लिया है। वह व्यक्ति भी संस्कृत है, जो अपनी आत्मा को मांज कर दूसरे के उपकार के लिए उसे नम्र व विनीत बनाया है। अगर सभी व्यक्ति इसी तरह दानवता को छोड़कर मानवत्व धर्म को अपना एक मात्र धर्म मान ले तो सभी अजातशत्रु हो जाएंगे–

"यदि मानवत्वनामा धर्मो जगतीह कश्चिदेकः स्यात्

वैरविरहितः सर्वोऽप्यजातशत्रुः कदाचित् स्यात्।।"[62]

शास्त्रों में मानवीयता को मनुष्य का आभूषण कहा गया है। मानवीयता किसी मनुष्य की सुंदर देह से नहीं, बल्कि उसके कर्मों से आँकी जाती है। जिस प्रकार पुष्प चाहे कितना भी सुंदर तथा कोमल हो, किंतु अगर सुगन्धित न हो तो उसका कोई उपयोग नहीं

है, ठीक उसी प्रकार मानव कितना भी रूपवान् हो यदि उसमें मानवत्व नहीं है तो वह स्पृहणीय नहीं है–

"मानवतया विरहितः स्पृहणीयो भवति मानवो नेह
रूपवदपि कोमलमपि गन्धविरहितं प्रसूनमिव।"[63]

शिक्षा

शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सशक्त समाज का निर्माण होता है। व्यक्तियों का समूह ही समाज है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समाज बनेगा। किसी देश का उत्थान या पतन इस बात पर निर्भर करता है कि इसके नागरिक किस स्तर के है और यह स्तर बहुत करके वहाँ की शिक्षा–पद्धति पर निर्भर रहता है। व्यक्ति का बौद्धिक और चारित्रिक निर्माण बहुत सीमा तक उपलब्ध शिक्ष प्रणाली पर निर्भर करता है। विद्या से व्यक्ति विनयवान् बनता है–

"उत्पादयेन्मदं यद् वैदुष्यं तन्नु वस्तुतो भारः
विद्या सैव हि विद्या दद्याद् या सर्वथा विनयम्।।"[64]

प्राचीनकालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी। प्राचीन काल में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का प्रचलन था। उसी शिक्षा–पद्धति के कारण भारत विश्वगुरु कहलाता था। उस समय शिक्षाका स्रोत वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, रामायण, श्रीमद्भागवत् आदि थे। जिनसे व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी पुरुषार्थों की शिक्षा प्राप्त होती थी तथा व्यक्ति उन्नत समाज के निर्माण में सहायक होता था, किन्तु आधुनिक शिक्षा–प्रणाली इन सबसे विरत हो चुकी है। जो भारतीय शिक्षा की मूल निधि थी, वह आज धरोहर मात्र रह चुकी है, जिसके कारण भारत का जगद्गुरुत्व का पद भी खतरे में है। आज छात्र का प्राचीन शिक्षा में कोई उत्साह नहीं है–

"वेदानं स्वाध्यायोऽस्माकं देशे विराममाप्त इव
क्वचिदपि वेदान्ता न श्रुतिगोचरतां न उपयान्ति
मीमांसामध्येतुं प्रवर्तते नैव कोऽपि जिज्ञासुः
नापि न्यायस्य कृते कोऽप्युत्सहते सुनिपुणोऽपि

वाल्मीके रामायणमपि कश्चिच्चेष्टते न परिचेतुम्
नैके सुमहद् भारतमवलोक्येवैह मूर्च्छन्ति
विद्यावत्त्वं स्वीयं कोऽप्युद्यमते न हि प्रमाणयितुम्
श्रीमद्भागवतं कोऽवगाहतामद्य गम्भीरम्।"[65]

शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारण ही सामाजिक जीवन मूल्यों का ह्रास हो रहा है। शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है। आज पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के कारण शिक्षा–पद्धति का ह्रास हो रहा हैं आज के छात्र कक्षाओं में न जाकर बाहर नाच–गाने में लगे है–

"शिक्षाया विधिरेष प्रवर्तमानोऽभिधेहि कोऽयमिह
कक्षाभ्यो निर्गत्यच्छात्रा गायन्ति नृत्यन्ति।"[66]

जहाँ प्राचीन शिक्षा पुरुषार्थ–चतुष्ट्य का साधन थी, वही आज शिक्षा को केवल अर्थकारी कर दिया है–

"अर्थकरीषु प्रथमं पुत्रक! विद्यासु सम्प्रवर्तस्व
तत्पश्चात् कुरु पाठं गीतारामयणादीनाम्।"[67]

आज विद्या का अन्य ही मतलब निकाला जा रहा है। आज शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति में घमण्ड आ जाता है तथा वह समाज की परवाह न कर स्वयं के लिए जीता है, जबकि विद्या तो वही सार्थक हो जिससे व्यक्ति में विनयता आवे और वह समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करता हुआ स्वयं की भी उन्नति करे। विद्या अभिमान का पर्याय न बनकर विनय का पर्याय बने–

"उत्पादयेन्मदं यद् वैदुष्यं तन्नु वस्तुतो भारः
विद्या सैव हि विद्या दद्याद् या सर्वथा विनयम्।।"[68]

नारी के प्रति सम्मान

नारी का सदा सम्मान होना चाहिए। **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'** यह उक्ति आज नहीं, सदियों पहले वैदिक काल में कही गई थी। हमारे समाज में नारी का महत्त्व इससे भी लगाया जा सकता है आज भी सरस्वती माता, दुर्गा माता, काली मैया,

छठी मैया, लक्ष्मी माता, संतोषी माता, वैष्णोदेवी की आराधना धूमधाम से की जाती है। लेकिन महिलाओं के प्रति संकीर्ण मानसिकता रखने वाले लोगों की सोच उनकी जुवां पर यदकदा आती रहती है। आज नारी का हर जगह अपमान होता चला आ रहा है। उसे भोग की वस्तु समझकर आदमी अपने तरीके से इस्तेमाल कर रहा है। हमारा आज का सभ्य समाज नारी को बोझ समान मानता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, कन्या भ्रूण हत्या का तेजी से बढ़ना। कवि कन्या के जन्म को अधिक महत्त्व देता है। उसे पुत्र ना होने पर जरा भी खेद नहीं है तथा पुत्री जन्म उसके लिए महोत्सव तुल्य है–

"पुत्रीकृतेषु मन्ये मदुपवनस्यैव सत्सु वृक्षेषु
पुत्राभावः सेत्स्यति कदाचिदपि मे न खेदाय।"[69]

आज हर क्षेत्र में महिलाएँ न केवल पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है बल्कि उनसे आगे भी निकल रही है। चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या चिकित्सा का। चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या कोई अन्य क्षेत्र महिलाएँ हर क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले बाजी मार रही है। आज वह अबला नहीं है–

"कश्चिन्नारीमेनामबलेत्यधुनेह नावमन्येत
जागरितेयमिदानीं स्वस्य कृते भागधेयस्य।।"[70]

हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म के निर्माण में नारी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। वह पुरुष की शक्ति का केन्द्र बिन्दु है। वह पुरुषों द्वारा बनाए गए नियमों के बंधन में रही है। नियमों के पालन करने वाली नारी को पूज्य माना है। जिस नारी ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाने का प्रयत्न किया वह निंदा का पात्र बन गयी। पुरुष ने अपनी सकल प्रभुसत्ता के लिए स्त्री को घर की चार–दीवारी में जकड़ दिया गया है। सैंकड़ों वर्षों से सब कुछ सहती हुई भी, अपना कार्य ईमानदारी से निभाने वाली नारी यदि अपनी मूकता को त्याग देती तो, पुरुष का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा–

"वर्षाणां निष्पीडितमिदं शतेभ्यः कदाचिदिह नारि!
विस्फोटं यदि कुर्यान्मूकीभूतं त्वदस्तित्वम्।।"[71]

धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्य

विषय–प्रवेश – जीवन में शुचिता और पवित्रता बनाये रखने के लिए मानव जिन सर्वमान्य आचार–संहिता का जीवन में अनुपालन करता है, वे आदर्श नियम और आचार–संहिता धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। धर्म जीवन को सुखी, सम्पन्न और सम्मानीय बनाने वाली जीवन शैली है। सामाजिक व्यवस्था, सुरक्षा और जीवन में समत्व स्थापित करने के लिए धर्म आवश्यक है। अहिंसा, दान, दया, सत्य आदि सनातन धार्मिक जीवन मूल्य है।

धर्म द्वारा निर्देशित जीवन मूल्यों का पीढ़ी–दर–पीढ़ी अनुपालन करना सांस्कृतिक जीवन मूल्य है। धार्मिक संस्कारों को जीवन में अपनाने का आग्रह और अनुपालन ही सांस्कृतिक मूल्या है। बिना किसी चिंतन और विश्लेषण के पूर्वजों की जीवन शैली का आचरणबद्ध अनुपालन करना सांस्कृतिक मूल्यों की परिधि में आता है।

धर्म और संस्कृति परस्पर पूरक है। शक्ति और विश्वास में ही धर्म निर्भर है। धर्म के स्वरूप चिंतन में कल्पना का सहयोग अनिवार्य है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन के विविध साहचर्यों में धर्म अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर भी धर्म का गहरा प्रभाव है। धर्म और संस्कृति में अटूट बंधन है। धार्मिक आचरण में लीन मानव ही विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों से अपने जीवन को मजबूत बनाते हैं। मानव जीवन के सभी संस्कार किसी न किसी धर्म से जुड़े है। व्यक्ति अपने जीवन–यापन के लिए प्रकृति पर जितना निर्भर रहता है उसका विधाता पर भी उतना ही विश्वास रहता है। धर्म तथा संस्कृति किसी भी राष्ट्र की उत्कृष्टतम निधि होती है। जिस राष्ट्र के धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य जितने उदात्त होते हैं, वह राष्ट्र उतना ही गौरवशाली बनता है। भारतीय संस्कृति तथा धर्म अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण विश्व की समस्त संस्कृतियों को आत्मसात् कर लिया, तथापि उसका निजी रूप अक्षुण्ण और विशिष्ट रहा।

डॉ. जगन्नाथ पाठक कृत 'जगन्नाथसुभाषितम्' जीवन के धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों का चिंतन निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

ईश्वर के प्रति आस्था

ईश्वर विश्वास पर ही मानव प्रगति का इतिहास टिका है। जब यह डगमगा जाता है तो व्यक्ति इधर–उधर हाथ–पाँव फैंकना विक्षुब्ध मनः स्थिति को प्राप्त होता दिखाई देता है। ईश्वर बड़ा अभिव्यंजनात्मक है। सारी सृष्टि में जिसका ऐश्वर्य छाया पड़ा हो, चारों ओर जिसका सौंदर्य दिखाई देता हो सृष्टि के हर कण में उसकी झांकी देखी जा सकती हो, वह कितना ऐश्वर्यशाली होगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ईश्वर ही सौन्दर्य का मूल स्रोत है, तथा सौन्दर्य के अन्य कारण उसकी छायानुकरणरूप है–

"सौन्दर्यस्य स एको मूलस्रोतों यमीश्वरं प्राहुः
सौन्दर्यान्यन्यानि च तस्य च्छायानुकारीणि।।"[72]

धर्म शब्द का असली तात्पर्य है ईश्वर द्वारा निर्मित प्रकृति के नियमानुसार जीवन–शैली अपनाना। जबकि अनेक लोग केवल पूजा पाठ और अंधविश्वास को ही धर्म मान लेते हैं। इसीलिए भगवान ने त्रेतायुग में श्रीराम और द्वापर युग में कृष्ण रूप में पूरी मानव जाति को विश्वास दिलाते हुए कहा है कि जब–जब संसार में धर्म की हानि होगी और अधर्म बढ़ेगा, तब–तब वे इस पृथ्वी पर अवतार लेकर अधर्म को समाप्त करेंगे। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा कि सब आडम्बर छोड़कर 'मामेकं शरणं व्रज'। डॉ. पाठक भी इसी में विश्वास करते हैं, वे बाह्याडम्बरों में विश्वास नहीं करते हैं–

"नाहं कश्चिद् भक्तः करे न माला न कण्ठिका कण्ठे
श्रीकृष्ण एव कश्चिद् गोपालो मामकं शरणम्।।"[73]

हमारी संस्कृति सभी धर्मो को समान दृष्टि से देखती है। यहाँ पर जितने धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं उतने संभवतः विश्व के किसी ओर देश में नहीं है। किन्तु आज किसी विशेष सम्प्रदाय का व्यक्ति यदि अपना कोई एक मत चलाता है, तो दूसरे सम्प्रदाय का व्यक्ति अपना अलग मत चलाता है। हर सम्प्रदाय अपने मत को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ में लगा है। ईश्वर तो वस्तुतः एक है, किन्तु आज साम्प्रदायिक विद्वेषता के कारण ईश्वर के अस्तित्व के विषय में ही संशय उत्पन्न हो गया है, वह एक है अथवा दो यह प्रश्न उसके अस्तित्व को ललकार रहा है–

"अस्तित्वमेव साम्प्रतमीशस्यास्तीह संशयापन्नम्

एकः स द्विर्वेति प्रश्नः कुत एव समुदेति।।"[74]

वस्तुतः तो राम–रहीम में कोई भेद नहीं है। जो राम है वही रहीम है। ईश्वर के नाम पर जो भी साम्प्रदायिकता फैल रही है, वो अपने आपको धर्म का ठेकेदार करने वाले लोगों के द्वारा फैलायी गयी है, जो ईश्वर के वास्तविक स्वरूप से अवगत नहीं है। जो ईश्वर के स्वरूप को समझता है, वह राम–रहीम में भेद न कर दोनों को एक ही मानता है–

"परमेश्वरस्य नामसु न तवासीदाग्रहः कदाचिदापि

रामोऽथवा स आस्तामास्तामथवा रहीमः सः।"[75]

पुरुषार्थ–चतुष्ट्य

पुरुषार्थ चतुष्टय मनुष्य के जीवन का मूलाधार है और इसी के अनुरूप पूरी जीवन यात्रा चलती है। हर व्यक्ति का जीवन यदि पुरुषार्थ चतुष्टय पर केन्द्रित और अनुशासित रहे तो कोई कारण नहीं कि व्यक्ति जीवन में अपने लक्ष्य को हांसिल न कर पाये। यही पुरुषार्थ चतुष्ट्य यानि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन को ऊँचाईयां देने का आधार है। किन्तु आज का इंसान धर्म तथा मोक्ष के प्रति उदासीन हो गया है तथा सिर्फ अर्थ व काम के पीछे दौड़ रहा है। आज धर्म का अर्थ भी परिवर्तित हो गया है, सब अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने में लगे है–

"अहमहमिकया ग्रस्तं धर्मस्यापीहलक्ष्यते क्षेत्रम्

सर्वत्रैवेदानीं प्रवर्तमानं कुरुक्षेत्रम्।"[76]

धर्मपूर्वक जीवन निर्वाह करने वाले लोगों को ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अधर्माचरण के साथ अर्थ कमाने वाले और काम में रमे रहने वाले कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। फिर भी आज के भौतिकवादी युग में व्यक्ति अर्थ को ही सर्वोपरिमान रहा है तथा येन–केन प्रकार से धन कमाने में लगा है–

"धनमेव तावदेकं सर्वस्येहेप्सितं वरीवर्ति

सम्प्रति तपोधना अपि विक्रीय तपोऽर्जयन्ति धनम्।"[77]

आम आदमी की तमाम समस्याओं और तनावों, मानसिक एवं शारीरिक बीमारियों का एकमात्र कारण यदि कुछ है तो वह है धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के बीच असन्तुलन। जैसे ही यह अनुपात गड़बड़ाता है, सारा संतुलन अपने आप बिगड़ जाता है। और यहीं से शुरु होता है, दैहिक, दैविक और भौतिक संतापो का संत्रास। आज का मानव पुरुषार्थ–चतुष्ट्य के विषय में भूल गया है–

"धर्मादीन् पुरुषार्थान् कथमेषा ज्ञातुमत्रशक्नोतु
जागर्त्युदिते सूर्येयातेऽस्तं किञ्च निद्राति।"[78]

आज धर्मोपदेशक भी अर्थ–संग्रह में ही लीन है–

"कष्टं कष्टामिदानीं प्रायः सर्वोऽर्थसङ्ग्रहे लीनः
धर्मोपदेशकेष्वपि लक्ष्यत एवार्थगृध्नुत्वम्।"[79]

गुरुमहिमा

भले ही कोई ब्रह्म, शंकर के समान क्यों न हो, वह गुरु के बिना भव सागर पार नहीं कर सकता। धरती के आरम्भ से ही गुरु की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, गीता, गुरुग्रन्थ साहिब आदि सभी धर्मग्रन्थों एवं सभी महान संतों द्वारा गुरु की महिमा का गुणगान किया गया है। अज्ञान का नाश कर परमात्मा का ज्ञान कराने वाले गुरु ही होते हैं। गुरु ही व्यक्ति को सुपथ दिखाता है–

"स्वगुरुभ्यः समवाप्तं याचितकं यन्मया विनीतेन
तेन सुपाथेयेन प्रवर्तते लोकयात्रा में।"[80]

अंधकार को हटाकर प्रकाश की ओर ले जाने वाला गुरु होता है। गुरु वह है जो अज्ञान का निराकरण करता है तथा धर्म का मार्ग दिखलाता है। गुरु ईश्वर का दूसरा रूप माना जाता है। गुरु अपने शिष्य को सही शिक्षा, प्रेरणा, सहनशीलता, व्यवहार में परिवर्तन तथा उचित मार्गदर्शन कर उसका भविष्य उज्ज्वल बनाता है। सच्चे गुरु की वन्दना से हमेशा चित्त को शान्ति मिलती है–

"श्रीचरणेषु गुरुणां प्रणिपाताः सर्वदैव विलसन्तु

वर्षन्त्याशिषः इव नः शिरः सु मृदुरेणवस्तेषाम्।"[81]

प्राचीनकाल में गुरु सांसारिक विद्या के ज्ञान के साथ–साथ आध्यात्मिक अनुभव भी प्रदान करते थे, ताकि शिष्य अपने जीवन में पूर्णता को प्राप्त कर सके। आज कल तो विद्या दान देने वाले गुरु कहे जाते हैं। जो दक्षिणा के रूप में एक बड़ी रकम लेकर, शिष्य को किताबी ज्ञान दे देते हैं। पहले गुरु योग्यता का पर्याय होता था, किन्तु आज तो गुरु के पुत्र ही गुरु बन जाते हैं, चाहे उनमें योग्यता हो अथवा न हो–

"स्थानं गुरोः प्रदेयो योग्यतामायैव तस्य शिष्याय

स्थानं गुरोर्लभन्ते जगतिप्राया गुरोः पुत्राः।।"[82]

प्राचीनकाल में गुरु का निर्णय योग्यता के आधार पर होता था, जिसमें शिष्य को लौकिक–पारलौकिक ज्ञान देने का सामर्थ्य होता था, वहीं गुरु कहलाता था। गुरु की मृत्योपर्यान्त उसकी जगह लेने का आधार भी योग्यता ही होता था, फलस्वरूप गुरु के स्थान पर उसके पुत्र की जगह शिष्य भी योग्यता के कारण उस पदवी को सुशोभित करता था, किन्तु आजकल गुरु का आकलन योग्यता के आधार पर न होकर रिश्ते के आधार पर होता है, जिसके फलस्वरूप ज्ञानरहित योग्यताभाव होने पर भी उनके पुत्र गुरु जैसे महनीय पद पर बैठ जाते हैं।

आज के गुरु स्वार्थी हो गये है। वे अपने आप पर पैसे के बल पर जगद्गुरुत्व का पद आरोपित कर लेते हैं। वे बड़े–बड़े मठों पर अपना अधिकार मठाधीश बन जाते हैं। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य अर्थ है। वे स्वर्गलोक से सुख भोगते अपना जीवन व्यतीत करते है–

"तिष्ठन्त्यधिकृत्य मठान् गुरुगम्भीरोदरा मठाधीशाः

उपभुञ्जते सुरालयनिवास–सौख्यानि लोकेऽस्मिन्।"[83]

अहिंसा

अहिंसा का अर्थ है सर्वदा मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्राणियों के साथ द्रोह का अभाव। अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है। यह सामान्य लोगों के

लिए भी है। सत्य और अहिंसा के पुजारी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आपसी भाईचारे को बरकरार रखने के लिए सत्य व अहिंसा पर ही बल दिया था। उन्होंने सत्य व अहिंसा के बल पर ही भारत को दासता की बेड़ियों से मुक्त करवाया था। सत्य व अहिंसा का ऐसा मणिकाञ्चन संयोग भारत में विगत कई शताब्दियों से नहीं देखा गया था–

"सत्यस्याहिंसाया एष विचित्रो महांश्च संयोगः
दृष्टो न भारतेऽस्मिन् गतासु मन्ये शताब्दीषु।"[84]
"सत्यमहिंसा चेति द्वे शस्त्रे तस्य हन्त हस्तगते
न जयाजययोः पक्षे न च लाभालाभयोरासीत्।।"[85]

किन्तु आज देश में ही नहीं अपितु सकल विश्व में हिंसा का तेजी से प्रसार हो रहा है। कहीं धर्म के नाम पर, कहीं जाति के नाम पर, कहीं क्षेत्रवाद के नाम पर, कहीं आर्थिक, कहीं राजनीतिक हिंसा हो रही है। आदमी को आदमी नहीं समझा जा रहा है। सामाजिकता और मानवता पर कट्टरपंथ हावी हो रहा है। हिंसा जो कि पशु का धर्म है आज मनुष्य का धर्म हो गया है। मनुष्य मनुष्यत्वावछिन्न न होकर पशुत्वावछिन्न हो गया है–

"हिंस्रत्वं नहि केवलमिह सीमितमस्ति केषुचित् पशुषु
हन्त मनुष्येष्वेतत् प्रतीयते व्याप्नुवानमिव।"[86]

कवि जानता है कि ये हिंसा की प्रवृत्ति देश के लिए खतरा है। इसलिए वह चाहता है कि इसका समूल नाश हो किन्तु उसको कोई उपाय नहीं मिल रहा–

"उच्छेदाय न तस्याः कश्चिदुपायः प्रतीतिमायाति
हिंसेति राक्षसी या मनुष्यहृद्देशमध्यास्ते।"[87]

राजनैतिक जीवन मूल्य

विषय–प्रवेश – पौराणिक काल से ही मानव जीवन राज्य तथा राजनीति से प्रभावित है। मानव ने अपने नैसर्गिक अख्तियारों की रक्षा के लिए ही समाज तथा राज्य का गठन किया था। राज्य विभिन्न संस्कृतियों से पले भिन्न दक्षता वाले व्यक्तियों का ही समाज है। आवश्यकताएँ पूरा करने की संभावनाएँ, सुसंस्कृत जीवन जीने के लिए आवश्यक साधनों की जरुरत से ज्यादा वस्तुओं की प्राप्ति हो तो उस समाज के संघ को राज्य कहते थे।

जब से मनुष्य को स्वयं की सम्पत्ति का अधिकार मिला तब से इस सम्पत्ति के अधिकार की सुरक्षा के लिए मनुष्य ने राज्य का निर्माण किया। समाज को परिचालित करने के लिए राजनीतिक नियमों की सुरक्षा आवश्यक है।

प्रजातंत्र व्यवस्था, नौकरशाही व राजनीति के मुकाम पर अनेक खतरे उत्पन्न हुए है। बाबुओं और कनिष्ठ अधिकारियों की मेहनत पर फूलने–फलने वाले इन सत्ताधीशों की चिन्ता अपना बंगला बनाने, फार्म हाऊस खड़ा करने, बीवी बच्चे के नाम पर बेनामी संपत्ति लेने की अधिक है। स्वाधीन भारत में जितने भी राजनीतिक दल का उदय हुआ, सबका उद्देश्य सत्ता–प्राप्ति, धन–संग्रह और अपने को बनाए रखना मात्र था। वर्तमान राजनीतिक परिवेश में नैतिकता और देशसेवा के स्थान पर अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, धनलोलुपता एवं अनैतिकता को प्रश्रय मिलता आ रहा है।

भारत की राजनीति की एक लम्बी परम्परा है। हमारे राजनेताओं के अथक परिश्रम से यह सुचारु ढंग से चलती थी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद राजनीति व्यक्ति की राजनीति में परिणित हो गयी। नेताओं के रूप में नये सामंत पैदा हुए। चारों ओर अव्यवस्था, अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, दायित्वहीनता, अकार्यकुशलता, खोखली नारेबाजी ने गाँधीजी के रामराज्य को स्वप्न बना दिया–

"रामस्य राज्यमस्य प्रवर्तमानस्य कल्पनाविषयः
राज्यं परमेतर्हि प्रवर्तते रावणस्यैव।"[88]

अवसरवादी एवं पूंजीपतियों ने प्रशासन में घुसकर चोर–बाजारी, घूस और भ्रष्टाचार का साम्राज्य स्थापित कर लिया है। आज के नेताओं का ध्येय वाक्य है– 'कहो नीति, सुनो नीति, लिखो नीति पर करो सिर्फ अनीति।' वर्तमान भारतीय राजनीति के सफेद हाथी काले घर पर ही पलते है।

आज राजनैतिक दल सामान्य जनता को राजनैतिक कुचक्रों में फँसाते हैं, लेकिन जनसाधारण के जागरण के स्वर भी मुखर है। राजनेताओं ने पद–प्राप्ति के लिए सारे राजनैतिक जीवन मूल्यों को अपने पैर से कुचल दिया हैं आज हमारा देश भी राजनैतिक मूल्यच्युतियों से ग्रस्त है। दुर्भाग्य की बात यह है कि आज की युवा पीढ़ी की कोमल

भावनाओं को नेतागण ने राजनीति के नाम पर मिटा दिया है। डॉ. जगन्नाथ पाठक ने इन राजनीतिक मूल्यों को पहचानकर मूल्य विघटन को सुधार करने का प्रयास किया है–

राजनीति

स्वतंत्रता के बाद से हमारे देश में राजनीतिक दलों, राजनेताओं व नौकरशाहों के चरित्र और नैतिक मूल्यों में लगातार गिरावट ने दर्शाया है कि धृतराष्ट्र का कुर्सी प्रेम किन–किन विचित्र खेलों को जन्म देता है। चुनाव लड़ना अब हिंसा, धन और बाहुबल का खेल होकर रह गया है। राजनैतिक दाँव–पेंच बहुत निराला होता है। सामान्य जनमानस यह आसानी से नहीं समझ सकता। राजनीति की राज शक्तियाँ लोलुप होती जा रही है, जहाँ स्वार्थ के अलावा दूसरा कुछ नहीं है। आज राजनीति के क्षेत्र में नेता–गण आँख–मिचौनी का खेल खेल रहे हैं लेकिन वे अपने लक्ष्य तक ही पहुँचते है। आजकल के राजनेताओं कथनी–करनी में अन्तर हैं। वे प्रातः कुछ ओर बोलते है और सांय को कुछ ओर–

"एषां वचः सु कुर्यात् कः प्रत्ययमत्र राजनीतिविदाम्
प्रातर्ये भाषन्तेऽन्यत् सांय ये ततोऽन्यदिह।।"[89]

आज सत्ता में काबिज राजनेताओं की आंखों पर राजनीतिक स्वार्थ की पट्टी बंधी हुई है। वे तो बस अपना घर भरने और कुसीं बचाने में ही अपनी शक्ति लगा रहे है। वहीं विपक्षी राजनेताओं का एक सूत्री कार्यक्रम है। कि उन्हें सत्ता कैसे हासिल हो? राजनीति जो कि प्राचीनकाल में धर्म–नीति का पर्याय थी, आज नेताओं के स्वार्थपन के कारण उसमें धर्म व नीति का अभाव हो गया है–

"नहि धर्मस्य क्षेत्रं क्षेत्रमिदं किमपि नैव नीतेश्च
क्षेत्रे तु राजनीतेर्न धर्मनीत्योः कृतेऽवसर।"[90]

सामान्य हित के विचार के अनुसार कार्य करने से ही राज्य वास्तव में राज्य कहलाने का अधिकारी होता है। प्राचीनकाल में लोक कल्याण की भावना से ही लोकतन्त्रात्मक राज्य की कल्पना इस देश में की गई और इसका उद्देश्य भी यही निर्धारित किया गया कि राज्य सर्वतो भाव ने प्रजा के लिए काम करे। राजा का कार्य अपनी शक्तियों का प्रयोग बहुजन हिताय था, किन्तु वर्तमान समय में खेद कारक स्थिति उत्पन्न

हो गई है। शासक अपने जीवन में शुचित का उतना ध्यान नहीं रखते जैसा कि प्राचीन समय में राजा धर्म के आचारण से स्वयं का जीवन श्रेष्ठ बनाते थे। आज के शासक स्वयं की सम्पन्नता के लिए प्रयत्नशील होकर प्रजा की उपेक्षा करने लगे हैं, जिसके फलस्वरूप जो राजनीति प्राचीन काल में बहुजनहिताय थी, वह आजकल प्रदूषित तथा काकपेया हो गई है–

"पूर्वमवर्ततत बहुजन–हिताय या राजनीति–विष्णुपदी
सम्प्रति सा सञ्जाता प्रदूषिता काकपेया च।"[91]

आज राजनीति करना ईमानदार व्यक्ति का काम नहीं रहा। अगर आप सफ दिल के इंसान हो तथा तन्मयता से देश की सेवा के लिए राजनीति में प्रवेश करना चाहते हैं तो यह असंभव है। आज राजनीति द्यूतविद्या की तरह हो गई है और जो शकुनि की तरह इस विद्या में निपुण हो, वही राजनीति में कामयाब हो सकता है–

"इह राजनीत्यभिख्यं क्षेत्र प्रविविक्षुभिर्न तैर्भाव्यम्
ये नैपुण्यं बिभ्रति शकुनिरिव द्यूतविद्यायाम्।।"[92]

राजनीति को प्रदूषित करने में जातिवाद का भी बड़ा हाथ है। आज राजनेताओं ने राष्ट्रहित को भुलाकर, जातीय गौरव को ही सब कुछ मान लिया है। वयस्क मताधिकार व्यवस्था के देश में लागू कर दिये जाने के कारण यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुआ। प्रतिनिधि व्यवस्था के लागू होने पर राजनीति पर जातिगत प्रभाव शुरु हो गया। आज राजनेता सत्ता प्राप्ति के लिए जातीय संगठनों का उपयोग ले रहे हैं। आज राजनीति पर जातिवाद हावी होत जा रहा है–

"स्वं स्वं वर्णमपेक्ष्य प्रवर्तते राजनीतिरेतार्हि
वस्तुत एका रथ्या काचिदियं स्वार्थसङ्कीर्ण।"[93]

आज राजनीति में परोपकार की भावना का लोप हो गया है। आज की राजनीति स्वार्थपूर्ण हो गई है। राजनेता अपना पेट भरने में लगे है। उन्हें देश तथा प्रजा के कल्याण से कोई मतलब नहीं है। कवि को यह स्वार्थपूर्ण राजनीति शूर्पणखा तथा पूतना के समान लगती है जो देश तथा धर्म की विनाशक ही है–

"जगतीह राजनीतिर्भवति यदा स्वार्थभावसंल्लिप्ता

शूपणखेव तदैव प्रतीयते पूतनेव चसा।"[94]

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार से तात्पर्य ऐसा आचरण जो किसी भी प्रकार से अनैतिक और अनुचित हो। भ्रष्टाचार से तात्पर्य सिर्फ रिश्वतखोरी से नहीं है अपितु निजी या सार्वजनिक जीवन के किसी भी स्थापित और स्वीकार्य मानक का चोरी–छिपे उल्लंघन भ्रष्टाचार है। आज देश में सत्य की राह पर कोई नहीं चल रहा है, सब तरफ असत्य का साम्राज्य देखने को मिल रहा है। आज देश में तीव्र गति से भ्रष्टाचार फैल रहा है–

"सत्यस्य न प्रतिष्ठा प्रभवत्येतत्वसत्यसाम्राज्यम्

भ्रष्टाचारो जगति प्रवर्धमानो दिनेष्वेषु।"[95]

वर्ण–संघर्ष

भारत एक संप्रभु राष्ट्र है तथा प्रत्येक भारतीय का भारत की संपदा पर समान अधिकार है। भारतीय संविधान प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों के तहत जाति, धर्म, रंग आदि के आधार पर भेद–भाव नहीं किया जा सकता, फिर भी आज जाति एवं वर्ग संघर्ष बढ़ता जा रहा है। वर्ण–व्यवस्था से संचालित भारत देश में दलित समाज को सबसे निम्न समझा जाता है। आज उच्च श्रेणी के लोग अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए दलितों का शोषण कर रहे है। उच्च वर्ण तथा निम्न वर्ण के लोगों में किसी प्रकार का भेद न होने पर भी उन्हें इतनी हेय दृष्टि से देखा जाता है–

"न शरीरेनाङ्गे वा न च रुधिरे नापि मांसमज्जासु

भेदोऽस्माकं कश्चिद् द्विजेभ्य इह लक्ष्यते जगति।"[96]

मनुष्य समाज में सबसे स्वामित्व सत्ता का उदय हुआ, तबसे सत्ता और उसकी संरक्षक धर्मसत्ता तथा राजनीति ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए जन्मजात विषमता को दृढ़ करने के लिए अनेक व्यवस्थाओं का निर्माण किया। प्रत्येक समाज में निम्न कोटि के कार्य संचालन के लिए एक वर्ग रहा है, जिसका कार्य उच्च लोगों की सेवा करना है। द्विजों की सेवा के लिए ही शूद्र वर्ण का मुख्य कार्य रहा है–

"शूद्रा इत्युक्ता वयमिह द्विजानां स्थिताश्च सेवायाम्
वयमीश्वरस्य राज्ये परिचरणायैव यज्जनिताः।"[97]

कवि शूद्र वर्ण को जागरित करने का भी प्रयास करता है। वह शूद्र वर्ण को सम्बोधित करते हुए कहता है कि यदि इस दासता की बेड़ियों से कभी भी उच्च वर्ण हमें स्वतन्त्र नहीं करेगा। इसलिए यदि हमें उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो हमें ही प्रयास करना होगा–

"अस्मानग्रे चलितानवरोद्धुं नैवकोऽपि शक्नोति
दलिताः सन्तोऽपि वयं दलयितुमपि साम्प्रतं शक्ताः।"[98]

निष्कर्षतः 'जीवन मूल्य' अत्यन्त व्यापक एवं चर्चित शब्द है, जिसका सम्बन्ध जीवन के प्रत्यक्ष पक्ष एवं व्यावहरिक पक्ष से है। जीवन के समस्त क्षेत्रों में मूल्यों की व्याप्ति है। भारतीय चिन्तकों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थों की दृष्टि से जीवन मूल्यों को देखा, परखा और अध्ययन किया। उनका मानना है कि मानव जीवन का उद्देश्य इन्हीं चार पुरुषार्थों या जीवन मूल्यों को प्राप्त करना है, यही जीवन की सार्थकता है।

मूल्यों के वर्गीकरण में यद्यपि विद्वानों के बीच वैचारिक भिन्नताएँ हैं तो भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों को सर्व–स्वीकृति मिली है। आज मूल्यों की प्रासंगिकता केवल व्यक्ति जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि घर, परिवार, राज्य, राष्ट्र व विश्व तक अच्छे जीवन मूल्य सम्मानित हुए है। वास्तव में जीवन मूल्य मानव निर्मित एक ऐसी समाज सापेक्ष अवधारणा है, जो जीवन के विभिन्न अंगों को संस्पर्श करती हुई उसे नियामक बनाने की ओर अग्रसर होती है तथा उसमें परिस्थिति जन्य विभिन्न परिवर्तनों, जैसे मूल्य संक्रमण, मूल्यसंकट, मूल्य विपर्यय या मूल्य–हीनता, का सन्निवेश होता है।

सुभाषित और जीवन मूल्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सुभाषितों का प्रतिपाद्य विषय जीवन मूल्य ही है, जिसमें मानवीय मूल्यों का विशेष महत्त्व है। सुभाषितकार मानव कल्याण और लोकमंगल की भावना से प्रेरित उच्च आदर्श, अच्छे एवं उदात्त विचारों व तत्त्वों का विवेचन कर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को उचित रास्ते की ओर नियन्त्रित करता है।

भारतीय संस्कार और जीवन मूल्यों में समय के साथ–साथ तीव्र गति से परिवर्तन आए है। पाश्चात्य संस्कृति और औद्योगिकरण ने हमारे जीवन को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार, अतिथि सेवा, मानवीय संवेदना, राष्ट्रीय प्रेम आदि की भावनाएँ धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। प्रगति और प्रतियोगिता की दौड़ ने मानव–मूल्यों को कुचल दिया हैं दया, प्रेम, परोपकार, अहिंसा, करुणा आदि सद्वृत्तियाँ लुप्त होती जा रही है।

आज के साहित्यकारों ने समाज को सूक्ष्म दृष्टि से देखा, परखा और पहचान लिया। उन्होंने देश में व्याप्त मूल्य संक्रमण, निम्नवर्ग की व्यथा, नारी के शोषण, हिंसा, भ्रष्टाचार आदि को पहचाना तथा बड़ी सरलता और ईमानदारी से यथार्थवादी चित्रण कर उन परिस्थितियों को बदलाना भी चाहा।

डॉ. जगन्नाथ पाठक जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में आधार–आधेय सम्बन्ध है। उनके व्यक्तित्व के कई पहलू उनके साहित्य में उभरते दिखाई पड़ते हैं। उनके ईमानदार, संवेदनशील, सादगी, सच्चरित्र, मिलनसार एवं हँसमुख व्यक्तित्व का प्रभाव उनके सुभाषितों में भी मिलता है। 'जगन्नाथ सुभाषितम्' में जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक जीवन मूल्यों का दर्शन होता है। उनके सुभाषितों में पुराने एवं नए जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति उपलब्ध है, किन्तु नए जीवन–मूल्यों की मात्रा अधिक है। उन्होंने सुभाषितों में अपनी संवेदनाओं तथा अनुभवों को सजा–सँवारा है।

उनके सुभाषितों में उन्होंने सामाजिक चुनौतियों को बड़ी सूक्ष्मता से समझकर उनकी अभिव्यक्ति की है। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सबसे बड़ा परिवर्तन मानव द्वारा मानवता धर्म भूलने के कारण हुआ है। जगन्नाथसुभाषितम् में मानव धर्म को लेकर अनेक सुभाषित है जिनमें मानवता बिना समाज की स्थिति तथा मानवता का महत्त्व प्रतिपादित है।

वैविध्य और परिमाण की दृष्टि से साहित्य की सुभाषित परम्परा में उपलब्ध डॉ. पाठक का जगन्नाथसुभाषितम् संस्कृत वाङ्मय की अक्षय एवं अमूल्य निधि है। जगन्नाथसुभाषितम् में भारत में व्याप्त स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, दलित–शोषण, नारी–शोषण, राजनीति जैसी विषम परिस्थितियों का यथार्थ–चित्रण है तो भविष्य के प्रति झटपटाते

मनुष्य के भीतर आशा, विश्वास एवं जीवन के प्रति आस्था का भाव जगाने की शक्ति है। यही उनकी रचनाधर्मिता की पहचान भी है और उनकी शक्ति भी।

बींसवी शती के राजनीति केन्द्रित बुद्धिवाद ने जिस विडम्बनापूर्ण, मूल्यभ्रष्ट भद्दे समाज का निर्माण किया, उसका सशक्त चित्रण जगन्नाथ सुभाषितम् में है। इसमें नए जीवन मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट है। 'जगन्नाथसुभाषितम्' में नए–नए जीवन मूल्यों व नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा है। डॉ. जगन्नाथ पाठक का यही मूल्यबोध समकालीन संस्कृत साहित्यकारों में पाठक जी की अपनी अलग पहचान बनाता है। जगन्नाथसुभाषितम् में वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन मूल्यों का सशक्त चित्रण है।

♦♦♦♦

संदर्भ–सूची

1. सर्वेषामनुकूलतया वेदनीयं सुखम्, तर्कसंग्रह / श.प.
2. सर्वेषां प्रतिकूलतया वेदनीयं दुःखम्, तर्कसंग्रह / श.प.
3. श्रीमद्भगवद्गीता
4. भर्तृहरि विरचित नीतिशतकम् श्लोक / 22
5. राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, चौ.प्रा. वाराणसी 3 / 2
6. चाणक्य नीतिसार 14 / 01
7. बाणभट्ट विरचित हर्षचरित प्रस्तावना
8. Encyclopedia Britenica Vol.-II
9. सुभाषितावली, डॉ. सुदेश आहूजा, चौ.स.प्र., दिल्ली पृ.–XX
10. सुभाषित रत्न भाण्डागारम / II-22-22
11. The Oxford Universal DICIONARY, Willam Little, Vol II, The Oxford Publishing company Ltd. London
12. महासुभाषित संग्रह, Intro.....,P. Lxv
13. सुभाषितरत्नभाण्डागारम / II/29-2
14. सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, श्लोक सं. / II/27-28
15. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् / II/29-2
16. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् / II-29 / 10
17. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् / II/29–1
18. सुभाषितरत्नाकर, सुभाषित प्रशंसा II / 3
19. जातकमाला, 31 / 35, चौ. सं.सं.,वाराणसी, 1994
20. श्रीकण्ठचरितम्, 2 / 34
21. जातकमाला, 21 / 34
22. सुभाषितावली, डॉ. सुदेशा आहूजा, पृ.सं.–xiiv-xiv
23. सदुक्तिकर्णामृतम्, सम्पा. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, उच्चावच वीचि
24. शार्ङ्गधर संहिता, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वि.स. 1931

25. महासुभाषितसंग्रह, स्टर्नबक, पृ.सं.–29

26. महासुभाषितसंग्रह, स्टर्नकब, पृ.सं.–154

27. पद्यावली, श्लोक संख्या 1

28. महासुभाषित संग्रह, स्टर्नबक, पृ.–140

29. सुभाषितावली, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.सं.–IVI

30. भर्तृहरि कृत नीतिशतकम्

31. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.सं.–812

32. संस्कृत शब्दार्थ, कौस्तुभ द्वारका प्रसाद शर्मा, पृ.सं.–934

33. दि इंट्यूटिव फिलॉसफी, रोहित मेहता, पृ.सं.–31

34. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत, डॉ. राधाकमल मुखर्जी, पृ.सं.–516

35. वही, पृ.सं.–516

36. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, पृ.सं.–87

37. जगन्नाथसुभाषितम्, राष्ट्रिय संस्कृतसंस्थानम्, भाग–2–205 / 697

38. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 99 / 65

39. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 350 / 1569

40. वही, 105 / 99

41. वही, 188 / 598

42. वही, 206 / 707

43. वही, 107 / 113

44. वही, 190 / 610

45. वही, 131 / 257

46. वही, 348 / 1557

47. वही, 305 / 1298

48. पण्डितवर श्रीमदमरसिंह विरचित अमरकोश, 1993–1 / 7 / 27

49. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 147 / 354

50. वही, 296 / 1244

51. वही, 380 / 1753

52. वही 240 / 907

53. वही, 309 / 1326

54. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, दाण्डी यात्रा–13

55. वही, दिनेष्वेषु–24

56. वही–23

57. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 93 / 26

58. वही, 297 / 1251

59. वही, 180 / 552

60. वही, 196 / 646

61. वही, 174 / 511

62. वही, 183 / 566

63. वही, 107 / 109

64. वही, 159 / 394

65. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, दिनेष्वेषु

66. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 146 / 346

67. वही, 160 / 432

68. वही, 154 / 394

69. वही, 240 / 911

70. वही, 307 / 1315

71. वही, 264 / 1057

72. वही, 193 / 626

73. वही, 185 / 579

74. वही, 142 / 323

75. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, दाराशिकोह प्रशस्ति–10

76. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 101 / 76

77. वही, भाग–3, 449 / 21

78. वही, भाग–1, ग्रामटिका–11

79. वही, भाग–2, 128/236

80. वही, भाग–3, 497/354

81. वही, भाग–2, 208/715

82. वही, 366/1664

83. वही, 146/344

84. वही, भाग–1, दण्डी यात्रा–8

85. वही–14

86. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–2, 333/1468

87. वही, 339/1502

88. वही, 408/1922

89. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–3, 447/1

90. वही, भाग–2, 105/101

91. वही, 109/126

92. वही, 157/413

93. वही, 209/724

94. वही, 405/1900

95. वही, भाग–1, दिनेष्वेषु–11

96. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, दलित प्रसंग–4

97. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग–1, दलित प्रसंग–2

98. वही, दलित प्रसंग–21

सप्तम अध्याय

डॉ. पाठक का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान

सप्तम अध्याय

डॉ. पाठक का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान

सामान्यतः किसी भी वाङ्मय में रचित किसी भी लेखक अथवा कवि की रचनाएँ उस वाङ्मय की वृद्धि करने के कारण उसका योगदान ही होती है, किन्तु यदि उनमें कोई विशिष्टता अथवा नवीनता न हुई, उन्होंने समाज का कोई प्रभावशाली सन्देश देकर झकझोरा नहीं, तो ऐसी रचना को वाङ्मय विशिष्ट का योगदान नहीं माना जा सकता। किसी भी कृति में उस साहित्य विशिष्ट का योगदान होने की योग्यता तभी होती है, जब उसमें सम–सामयिक समाज के दुःख–दर्द एवं समस्याओं को पहचाना गया हो, उनके निराकरण की उत्कट अभिलाषा प्रतिध्वनित होती हो और वह नव भावबोध से अलंकृत हो। डॉ. जगन्नाथ पाठक ऐसे विरल संस्कृत कवियों में है, जिन्होंने युग की चीत्कार को सुना है और उसकी पीड़ा से व्याकुल होकर उसे भयमुक्त करके कल्याण की ओर अग्रसर करने का मार्ग सुझाया है, उसे दिशा दी है। पर यह कार्य कवि सीधे अभिधा के माध्यम से न करके लक्षणा और व्यञ्जना के माध्यम से कला में पिरोकर करता है और यही कवि का वैशिष्ट्य है।

डॉ. पाठक की रचनाओं में कविता के इस गुण को पहचाना गया है उन्होंने कहा भी है–

"ये लोकव्यवहाराः कवितायां खलु त विनिबद्धा
लोकोतरत्वमुचितं स्पृशन्ति ठणयः सुवर्ण इव।"[1]

राममूर्ति त्रिपाठी डॉ. पाठक की रचना के विषय में लिखते हैं– "पाठक जी उत्कृष्ट कोटि के सहज रचनाकार ही नहीं है, शास्त्रों में भी उनकी महनी प्रविष्टि है। उनकी अनेक रचनाओं से होकर मैं गुजर चुका हूँ। अपने समय की नब्ज और धड़कन को जितनी सहजता और प्रभावी पद्धति से वे व्यक्त कर लेते हैं, वैसा आजकल कम दिखायी देता है।"[2]

जगदीश्वर प्रसाद कहते हैं कि "डॉ. पाठक के काव्य में यद्यपि जीवन विविध रंगों में वर्तमान है किन्तु उनके काव्य के प्रेरक तत्त्व वर्तमान जीवन की विसंगतियाँ ही हैं। इनमें वर्तमान जीवन की कृत्रिमता, अस्तव्यस्तता, वर्ग और जातिभेद, सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन, राजनीति का प्रभाव इत्यादि है।"[3]

बनमाली विश्वाल कहते हैं कि–

ममनाशय पक्षतिद्वयं ननु मां पञ्जरके निवेशय

परमुड्डनाय लालसां मयि जातां कथमेव रोत्स्यति। (मद्वीका 153)

मेरी दृष्टि में ऐसे पद्य तो हर युग के लिए प्रासंगिक होते हैं। पर आज के भौतिकवादी प्रगतिशील युग में, जब स्वार्थ के लिए कोई किसी की भी प्रगति बाधक बनने के लिए उतावला हो, यह पद्य कुछ विशेष ही महत्त्व रखता है।.......जीवन के हर प्रसंग में सबल के शोषण का शिकार बने किसी भी दुर्बल शोषित व्यक्ति का यह श्लोक मार्ग–दर्शन कर सकता है। वस्तुतः यही है साहित्य की चिरंतनता जिसमें डॉ. पाठक जी पूर्णरूप से सफल दिखते हैं।[4]

देवर्षि कलानाथ शास्त्री डॉ. पाठक को श्रेष्ठ कवि स्वीकार करते हुए कहते है– "पाठक जी अपने कृतित्व के बल पर उस शिखर पर आरुढ़ हैं जहाँ उन्हें सारा देश देख रहा है क्योंकि वे अब संस्कृत–काव्य संसार के सुप्रतिष्ठित कवियों की अग्रपंक्ति में हैं और हम सब उनके गौरव से महिमान्वित।"[5]

डॉ. पाठक को नवीन विचारधारा का कवि मानते हुए वे आगे कहते हैं– "गत कुछ सदियों से अधिकतर संस्कृत कवि कथ्य की नूतनता, भावबोध की गहराई या विच्छित्ति की बजाए शब्दाडम्बर को या छन्द के खांचे में शब्द फिट करके की गई। पद्यरचना को काव्य की इति श्री या वैदुष्य–प्रदर्शन को उसके उत्कर्ष की कसौटी मानने लगे थे। इस शब्द–प्रधान काव्य–रचना से हटकर कथ्य–प्रधान काव्य रचना को निकष बनाने वाले कवियों ने इस मान्यता से छुटकारा दिलाया है कि कोई नई बात कहने को न हो, फिर भी पद्य लिख डालो। जगन्नाथ जी पाठक वैसे कवियों में ही है।"[6]

डॉ. जगदीश्वर प्रसाद डॉ. पाठक के आधुनिक भावबोध के विषय में कहते हैं– "वर्तमान जीवन की विसंगतियों को देखने की डॉ. पाठक की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म है। घूमते हुये आइने के सामने उनकी दृष्टि प्रत्येक क्षेत्र में वर्तमान नैतिक पतन का सूक्ष्म निरीक्षण करती है। इनमें प्रमुख हैं वर्तमान जीवन की संवेदशून्यता, कृत्रिमता, अस्तव्यस्तता, वर्ग और जाति–भेद, सांस्कृतिक, मूल्यों का विस्मरण, पाश्चात्यीकरण की प्रवृत्ति, शिक्षण संस्थाओं की दुर्दशा, राजनीति की प्रधानता, धर्म के क्षेत्र में राजनीति का हस्तक्षेप, शासक वर्ग की विलासिता, नेतृ–वर्ग का नैतिक पतन इत्यादि।"[7]

डॉ. पाठक के कथ्य–शिल्प की प्रशंसा कते हुए वे कहते हैं कि "यह आधुनिकता इसके भाव और शिल्प दोनों क्षेत्रों में परिलक्षित होती है। प्राचीन मुक्तक जहाँ रस केन्द्रित होते हैं, समस्त कलात्मक उपादानों का लक्ष्य रसोद्रेक अथवा अलंकाराश्रित चमत्कार उत्पन्न करना होता था, वहाँ सहस्रारामम् का कवि कविता को सोद्देश्य मानता है। कविता अलंकाराश्रित चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं, इसका लक्ष्य जीवन को अधिक सुन्दर और उदात्त बनाना है। इसकी सार्थकता जीवन का अंधकार दूर करने में है।"[8]

ओम प्रकाश मालवीय डॉ. पाठक के अनुवाद की प्रशंसा करते हुए कहते हैं– "By adopting the Arya Pt. Pathank has succeeded in following the classical tradition and giving a new direction to it. He has wisely chosen not to play to the gallery by adopting 'Ghazal' from as some of contemporary poets of Sanskrit have done. The temptation before Pt. Pathak was really pressing but he wisely resisted and thus anabled him to show the potentiality of a classical language for the enpression of the feelings a subjective nature. One great merit of Pt. Pathak's frams lation is that it is marked by a rare lucidity."[9]

इस प्रकार संस्कृत कविता सहस्त्राब्दियों की सतत गतिशील पारम्परिक यात्रा में समय–समय पर नवीन बिम्ब एवं रूपविधान भी आविष्कृत होते रहे हैं। पारम्परिकता का सर्वथा अभाव असम्भव है। परन्तु पारम्परिकता में आधुनिकता का समावेश आवश्यक है। इन दोनों में सन्तुलन का होना अनिवार्य माना गया है। डॉ. जगन्नाथ पाठक इस दृष्टि से मुखरित कवि है। उपर्युक्त विवेचन उनका आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान स्वतः ही सिद्ध करता है। डॉ. पाठक की शक्ति उनकी काव्य भाषा की परम्परानिष्ठता और नवीनता

के दुर्लभ संयोग में है। परम्परा निष्ठता के मोह में उन्होंने कहीं भी किसी परम्परायुक्त पदशय्या का आहरण नहीं किया है और नये प्रयोग के मोह में संस्कृत भाषा की आधारभूमि को भी नहीं छोड़ा है। डॉ. पाठक ने नयी जीवनस्थितियों और भावदशाओं की अभिव्यक्ति के लिए अपने समय की भाषा के साथ निर्मित अन्तः सम्बन्ध से नयी शब्दावली रचते हैं, किन्तु कहीं भी वह परम्परागत शब्दसंहति और संस्कृत के स्वभाव से विच्छिन्न नहीं होती।

डॉ. पाठक की कविता में अपने समय की सजगता और प्रतिश्रुति समान रूप से प्रतिध्वनित होती है, किन्तु अत्यन्त प्रौढ़, परिष्कृत और परम्परानिष्ठ काव्यभाषा तथा जीवन की विषमताओं का चित्रण उन्हें आधुनिक संस्कृत लेखन परम्परा में विशिष्ट स्थान का भागी बनाता है। जिस विराट् फलक पर वे अपनी कविता उकेरते हैं, वह देश और काल से जुड़ी क्षितिज व्यापी कविता है जो उनको आधुनिक संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान पर सुशोभित करती है।

डॉ. पाठक ने लेखन को धर्म मानते हुए कहा है "मैं लेखन को एक धर्म के रूप में निभाना चाहता हूँ, क्योंकि इसी माध्यम से मैं अपने भीतर उद्वेलित होते हुए विचारों को अभिव्यक्ति दे सकता हूँ। भले ही वे विचार किसी ओर के लिए उपयोगी न हो तथा वे किसी अन्य व्यक्ति को प्रभावित भी नहीं कर पा रहे हो। कभी–कभी ऐसा भी महसूस होता है कि लेखन–धर्म में सप्रवृत्त होने से हम आत्मनिरीक्षण के माध्यम से अपना परिष्कार भी करते हैं। यह अपने आप से वार्तालाप का भी बड़ा उत्तम साधन है।"[10]

इसी क्रम में वे आगे कहते हैं– "कभी–कभी परिस्थितियाँ भी सहजभाव से उत्पन्न हो जाती हैं जो अन्तरिकता में प्रविष्ट विचारकों की कृतियों को प्रकाश में ला देती है। मैं जहाँ तक समझता हूँ, साहित्य के माध्यम से सत्य का अनुसन्धान भी एक आन्तरिक प्रवृत्ति है। मैं आध्यात्म के स्तर की बात ही नहीं करता और न ही यौगिक साधनाओं, ध्यानादि में प्रवेश की बात भी करता हूँ। मन की सीमा में, मन के स्तर पर ही मैं किसी विचार या तटस्थ भाव से आत्मानुसन्धान का पक्षपाती हूँ और ऐसी मान्यता है कि वह तटस्थ अनुसन्धान पूर्णतया आन्तरिक होता है और पूर्णतया साहित्य की सीमा में आता है।"[11]

डॉ. पाठक लेखन का वास्तविक उद्देश्य बताते हुए कहते हैं– "इस लेखन धर्म के निर्वाह का एकमात्र यह उद्देश्य नहीं है कि अपने भीतर के उद्वेलनों को अभिव्यक्ति दी जाए, प्रत्युत उसका लक्ष्य सत्य के साथ अपना क्षणिक साक्षात्कार भी है। हम चिन्तन के माध्यम से अथवा उसे भाषा रूप में अभिव्यक्ति देकर एक अनावृत सत्य का अंशतः उद्घाटन भी करते जाते हैं, और यही उद्घाटित सत्य हमारे चित्त के इर्द–गिर्द व्याप्त अंधेरे को प्रक्षिप्त करता है और हमारे गन्तव्य को आलोकित करता है। हम उसके प्रकाश में गतिशील होते हैं और वह कुछ अपना ही उद्भावित आलोक होने से हमें एक आत्मविश्वास के गौरव से भर देता है और हमारी क्षुद्र उपलब्धियाँ भी उधार न होकर हमें आनन्दातिरेक से आप्लावित करती हैं। मेरी दृष्टि में मनुष्य के अस्तित्व की स्थिति एवं गतिशलता में इन खण्डशः अनुभूत सत्यों का बड़ा ही महत्त्व है। वहीं उसी आधार पर परमुखापेक्षिता की दयनीयता से ऊपर उभरकर आता है और अपने माध्यम से इस विस्तृत जगत् के लिए कुछ भी कर सकता है।"[12]

साहित्य–लेखन के प्रयोजन बताते हुए डॉ. पाठक कहते हैं– "साहित्य किसी–न–किसी महान् उद्देश्य से निर्मित होता है। मूलतः मानव मात्र का कल्याण उसका लक्ष्य होता है, यदि वह वर्ग–विशेष मात्र के हित के लिए निर्मित होता है तो वह शुद्ध साहित्य के नाम से अभिहित होने योग्य नहीं रह जाता। निश्चय ही साहित्यकार मानवमात्र के हित के उद्देश्य से लेखन में प्रवृत्त होते हुए अपने लेखन के क्रम में स्वान्तः सुखाय की भी उपलब्धि करता है। उसका स्वान्तः सुखाय मानव–मात्र के लिए समष्टिगत होकर मानव–मात्र के लिए सुखद सिद्ध होता है। इस प्रकार वह (साहित्यकार) अपनी रचना द्वारा अपने सद्भाव को, अपने अनुभव को, अपने सत्यानुसंधान को एक व्यापक, विस्तृत एवं महनीय आयाम देता है।"[13]

उनके अनुसार वही श्रेष्ठ है जो मानव को सही राह दिखाये जैसी कि उन्होंने कहा है– "मानव–मन का परिष्कार भी साहित्य का कर्त्तव्य होता है और व्यक्तिगत तौर पर ऐसे ही साहित्य की रचना को मैं मौलिक मानता हूँ जो अपने कथ्य द्वारा क्षुद्र मानव–मन को सुसंस्कृत एवं परिष्कृत करें और उसे चिन्तन के नये आयाम देकर उजागर करें। आज इसकी विशेष आवश्यकता है। आज का साहित्यकार अपने कथ्य के लिए बाहर के वातावरण से जिन प्रभावों को ग्रहण करता है, उनका साहित्य में कभी–कभी स्थान देने

का कोई औचित्य नहीं होता, फिर भी वे मुख्य स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। आज हमने बौद्धिकता को इतना अधिक महत्त्व दे दिया है कि उसके सामने भावना व्यर्थ हो गयी है। आज भावना का स्पर्श तक साहित्य से वर्जित कर दिया है। फलतः साहित्य के नाम पर बहुत–सी असाहित्यिक रचनाएँ आती जा रही हैं और वह 'वाग्जाल' बनकर रह गया है। हम केवल बात तो कर जाते हैं किन्तु अपनी बात के पीछे हम नहीं होते। फलतः हमारी बात कुछ असर भी पैदा नहीं करती। अतः साहित्य के माध्यम से जो कुछ भी लिखा जाए, वह अनिवार्य रूप से एक उच्च भूमि का हो और वह अपनी शाश्वतिकता भी रखे। साहित्य सुन्दर को अभिव्यक्ति देता है और वह मात्र सुन्दर होकर न रह जाए, वह शिव भी हो और उसका मूल आधार सत्य हो, कुछ इसी प्रकार के साहित्य के सृजन के उद्देश्य से जीवन में प्रवृत्त होने की इच्छा है किन्तु हम यदि कुछ कर सकें वह संयोगवश प्रकाश में आये और फिर भी वह कुछ भी प्रभाव नहीं पैदा कर सके।"[14]

डॉ. पाठक ने विनाश के कगार पर खड़ी मानवता को रोकने के लिए लेखक को अपने लेखन धर्म का संदेश देते हुए कहा है– "आज की सबसे बड़ी विकट समस्या है सर्वनाश की ओर मानवता का कदम–दर–कदम बढ़ते जाना। क्योंकि आज चारों ओर एक प्रचण्ड दावानल फैल चुका है, हिंसा की आग भड़क चुकी है। आदमी अपना ही घोर शत्रु हो गया है। इस परिस्थिति में किसी लेखनधर्मा का तटस्थ लेखन भले ही उसके निजी अस्तित्व की गतिशीलता में काम आ जाए, किन्तु उसका इस भड़के हुए प्रचण्ड दावानल को शान्त करने की दिशा में क्या उपयोग हो सकता है, यह एक विकट प्रश्न है। अतः स्वानुभूत सत्य को उसे इस सुविस्तृत जगत् में व्याप्त दावानल को शान्त करने और मानवता को सर्वनाश से बचाने की दिशा में कुछ प्रयास तो करना ही होगा। ठीक है कि वह इस प्रयत्न में अपने लाखों समानधर्मा लेखकों की भाँति अकिञ्चितकर ही सिद्ध होगा, किन्तु अपने आप में कोई प्रयास भी कुछ सार्थक ही होता है। प्रयास मात्र प्रयास से सार्थक होता है, उसका मूल्यांकन सफलता असफलता से नहीं होता। किसी महनीय उद्देश्य से प्रयासशील कई पीढ़ियाँ असफल होकर समाप्त हो जाती है, तब जाकर कुछ उपलब्धि की एक किरण–सी दिख जाती है।"[15]

उपर्युक्त सभी बातों से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. पाठक एक श्रेष्ठ साहित्यकार है, उन्हें पता है कि लेखक का क्या धर्म होता है। वे जानते हैं कि लेखक के कंधों पर सफल समाज में व्याप्त विषमताओं, समस्याओं को दूर कर स्वस्थ समाज के निर्माण की जिम्मेदारी होती है। पाठक जी ने इस जिम्मेदारी को बखूबी निभाया है। उनकी यही बात उन्हें आधुनिक संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ–सूची

1. विच्छित्तिवातायनी, कविताशतकम्/82
2. मेरे अनुजकल्प जगन्नाथ पाठक, राममूर्ति पाठक, दृक् X पृ.सं.–7
3. संस्कृत के प्रति समर्पित डॉ. जगन्नाथ पाठक, जगदीश्वर प्रसाद, दृक् X पृ.सं.–26
4. अनुभूति का मूर्त रूप : पाठक जी की कविता, बनमाली विश्वाल, दृक् X पृ.सं.–32,33
5. संस्कृत के ग़ालिब से हमारी आशाएँ, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, दृक् X पृ.सं.–11
6. वही, पृ.सं.–12
7. आर्यासहस्रारामम् में आधुनिक भाव बोध, डॉ. जगदीशवर प्रसाद दृक् 1, पृ.सं.–15
8. वही
9. Ghalibh-Kavyam : A revirw, om Prakash Mazaviyn, दृक् X पृ.सं.–14
10. मैं क्यों लिखता हूँ, जगन्नाथ पाठक, दृक् X पृ.सं.–2

उपसंहार

उपसंहार

संस्कृत साहित्य की गौरवमयी सृजन परम्परा में जहाँ कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसे महाकवियों ने अपनी रचनाओं से संस्कृत–साहित्य को समृद्ध किया, वहीं अर्वाचीन को अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. हर्षदेव माधव, डॉ. जगन्नाथ पाठक जैसे कवियों की रचनाओं ने प्रसिद्धि प्राप्त की है।

आधुनिक लौकिक संस्कृत का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उसमें शोध कार्य करने के लिए बहुत अवकाश है। आधुनिक युग के लौकिक संस्कृत साहित्य का अभी तक पूर्ण रूपेण सर्वेक्षण संभव नहीं हो पाया है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व और पश्चाद्वर्ती काल में जो लौकिक साहित्य रचा गया है उसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसका उपजीव्य या तो प्राचीन संस्कृत साहित्य है अथवा आधुनिक विश्वसाहित्य और उसकी प्रवृत्तियाँ। अतः आज के संस्कृत कवि एक ओर तो प्राचीन शास्त्रीय परम्परा का पालन करने का प्रयास करते है दूसरी ओर आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों का समावेश भी अपनी कृतियों में कर लेते हैं। डॉ. जगन्नाथ पाठक की कृतियों के अवलोकन से भी यहीं बात सिद्ध होती है। डॉ. पाठक ने अपनी कृतियों में जहाँ एक ओर प्राचीन प्रवृत्तियों का समावेश किया है, वहीं दूसरी ओर नवीन प्रवृत्तियों को भी बहुतायत से अपनाया है।

डॉ. पाठक की कृतियों की भाव–भूमि देखने पर यह सरलता से जाना जा सकता है कि वे एक ओर तो प्राचीन संस्कृत साहित्य से प्रेरणा लेकर प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म–दर्शन और पुरातन महाकवियों का गौरवगान करते हैं तो दूसरी ओर आधुनिक भारत में व्याप्त कुप्रबन्ध, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, दहेजप्रथा, वर्ण–संघर्ष, नारी–शोषण, आंतकवाद, बाजारी शिक्षा और आर्थिक विषमता जैसी विकट समस्याओं पर कटाक्ष करते हैं। कवि आधुनिक भारत की दुर्दशा से परिचित है और प्रायः अपनी अधिकांश रचनाओं की प्रस्तुति मुक्तक के रूप में करते हैं। उनके मुक्तक आज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों की चेतना का ज्ञान कराते है। अतः आधुनिक संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए आप के मुक्तक पर्याप्त पुष्ट सामग्री प्रदान करते हैं।

कवि का हृदय उनके काव्य में झलकता है। निगूहण का अपार प्रयास करने पर भी कवि का अपना वास्तविक व्यक्तित्व काव्य में प्रकट हो ही जाता है। डॉ. पाठक के व्यक्तित्व की झलक भी उनके काव्य में मिल ही जाती है। डॉ. पाठक आस्तिक वृत्ति के थे। वह गुरुभक्त, परोपकारी, सनातनी, प्रकृति प्रेमी एवं करुणवान् थे। उनका व्यक्तित्व निष्कपट, कर्मठ, सरल तथा अनुकरणीय था।

उनके व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें काव्यसर्जन शक्ति जन्मजात थी। उनकी साहित्यिक रचनाओं से स्पष्ट होता है कि डॉ. पाठक साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण एवं वेदादि विभिन्न विषयों के विद्वान् थे। उनकी रचनाओं में उनके वैदग्ध्य की झलक पद–पद पर प्राप्त होती है, इससे उनके विविधतापूर्ण पाण्डित्य का परिचय मिलता है।

विभाजन की दृष्टि से डॉ. पाठक की रचनाओं को सुभाषित साहित्य, मुक्तक साहित्य तथा अनुदित साहित्य इत्यादि तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में मुक्तक काव्य का अन्यतम स्थान है। मुक्तक साहित्य परम्परा का प्राचीनतम रूप वेदों में निहित है। डॉ. पाठक के मुक्तकों में समसामयिक व सांस्कृतिक जीवन का दर्शन होता है। डॉ. पाठक ने जो भी समाज में अनुभूत किया, उसी को अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया। बदली परिस्थितियों के प्रभाव में मानव के व्यष्टि और समष्टि दोनों पक्षों को प्रभावित किया है, उसकी दृष्टि परम्परागत रास्ते से हट गयी है। डॉ. पाठक कहते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से पूँजीवादी सभ्यता, भ्रष्ट राजनीति, बढ़ी हुई स्वार्थपरता आदि के कारण भारतीय समाज में अमानवता बढ़ रही है। यही नहीं, स्वार्थ लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनुष्य अनेक मूल्यों की तिलांजलि देता हुआ दिखाई पड़ता है। समाज का इतना अधिक पतन हो चुका है कि उचित–अनुचित में फर्क करना भी अनुचित लगने लगा है।

इसी प्रकार डॉ. पाठक कहते हैं कि आर्थिक विषमता मानव–जाति की सबसे बड़ी समस्या है। वास्तव में समाज की सभी समस्याओं की जड़ तो अर्थ ही है। अर्थ ने समाज को दो भागों में बाँट दिया है यानी अमीर और गरीब। गरीब लोग आर्थिक अभाव के कारण जीवन का अर्थ खोजने में पराजित हो जाते हैं। एक–तरफ समाज में ऊँचे–ऊँचे

भवन है जिनमें रहने वाला कोई नहीं है तो दूसरी तरफ लोग फुटपाथ पर जीवन व्यतित कर रहे हैं।

डॉ. पाठक ने जीवन की सभी समस्याओं को सुलझाने का उपाय प्रेम बतलाया है। वे कहते हैं कि प्रेम ही मनुष्य को नवीन उत्साह तथा आशा से भर सकता है। उनके काव्य में प्रेम और सौन्दर्य की रागात्मक अनुभूतियों का वर्णन है। उनके काव्य में प्रेम–सौन्दर्य साधना का विकास 'सत्यं', 'शिवं', सुन्दरं' के स्वच्छ रूप में दृष्टिगोचर है। उनके अनुसार प्रेम एवं सौन्दर्य की सच्चिदानन्द के रूप की अभिव्यक्ति सौन्दर्य है। वे प्रेम और सौन्दर्य को अद्वैत भाव से प्रस्फुटित मानते हुए रूप की स्वतन्त्रता का निराकरण अनुपयुक्त बताते हैं। वे कहते हैं आज प्रेम व्यापार के समान हो गया है। सर्वत्र, स्नेह, प्रेम, दया, करुणा आदि भावों का अभाव हो रहा है। सर्वत्र संवेदना शून्यता दिखाई देती है। कवि कहता है कि प्रेम को निश्चल होना चाहिए।

इसी प्रकार उनके मुक्तकों में जीवन–दर्शन को बड़े ही सहज ढंग से समझाया गया है। कवि कहता है कि मनुष्य को कठिन से भी कठिन परिस्थितियों में भी घबराकर जीवन से विमुख नहीं होना चाहिए। साहसपूर्वक हर समस्या का सामना करते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिए। उनका मानना है कि हमेशा हँसते–मुस्कराते हुए जीना चाहिए, दुःखों से हार मान रोना नहीं चाहिए। डॉ. पाठक न तो परम्परा विरोधी है न ही आधुनिकता की अंधी दौड़ में वे मुक्तक साहित्य में भाव पक्ष व संवेदनशीलता के होने की अत्याधुनिकता को स्वीकार करते हैं वरन् जीवन व जगत् के अनुभूत सत्यों का पुरातनता की आधार भूमि पर कवि की भाव जन्म अनुभूतियों का नमोन्मेष ही कवि का कर्म है। डॉ. पाठक की रचनाओं में जीवन से पलायन नहीं है वरन् जीवन के सत्य को स्वीकारा गया है। उनके मुक्तकों में सामाजिक विषमताओं, अभावों, जीवन की विडम्बनाओं, युगीन विद्रूपताओं, मानवीय संवेदनाओं आदि का दर्शन है। डॉ. पाठक के मुक्तक केवल मधु आप्लावित ही नहीं है, अपितु इनमें वेदना और निराशा भी छलक उठती है। सबको समभाव से देखना, सबके प्रति सम्मान व्यक्त करना, सभी को अपना मानना, विश्वबन्धुत्व की भावना यह सब भारतीय संस्कृसति व जीवन दर्शन का अभिन्न अंग है।

इसी प्रकार डॉ. पाठक के मुक्तकों में राष्ट्रिय भावना भी वर्णित है। उन्होंने देश के प्राचीन गौरव को अभिव्यक्त किया है तथा प्राचीन भारत की सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक भावना को भी अभिव्यक्ति दी है।

डॉ. पाठक द्वारा नारी संबंधी भावनाओं को भी अपने मुक्तकों का विषय बनाया गया है। वे कहते हैं कि आज भी समाज में व परिवार में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की है। वह परिवार में शोषण व घरेलू हिंसा की शिकार है। किन्तु आज आधुनिकता के आगमन के बाद धीरे–धीरे परिस्थितियाँ बदलने लगी है। नारी उस अत्याचार से कुछ मुक्त हुई है, जिसमें उसे पूर्णतया नियन्त्रण में रखा जाता था।

डॉ. पाठक रचित अनुदित कृति ग़ालिबकाव्यम् में भी रसधारा प्रवाहित होती है। इसमें उनके पाण्डित्य, भाषा–प्रभुत्व एवं सामर्थ्य सम्यकतया प्रकट हुआ है। संस्कृत साहित्य में आधुनिक साहित्य की बहुत कमी है, यह कमी डॉ. पाठक ने पूरी करने का यत्न किया है। संस्कृत भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार दाँतों तले उँगली दबाने को बाध्य करता है।

इसी प्रकार डॉ. पाठक रचित जगन्नाथसुभाषितम् में उन्होंने सामाजिक चुनौतियों को बड़ी सूक्ष्मता से समझकर उनकी अभिव्यक्ति की है। वैविध्य और परिमाण की दृष्टि से साहित्य की सुभाषित परम्परा में उपलब्ध यह रचना संस्कृत वाङ्मय की अक्षय व अमूल्य निधि है। इसमें भारत में व्याप्त स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, दलित–शोषण, नारी–शोषण, राजनीति जैसी विषम परिस्थितियों का यथार्थ–चित्रण है तो भविष्य के प्रति झटपटाते मनुष्य के भीतर आशा, विश्वास एवं जीवन के प्रति आस्था जगाने की शक्ति है। यही उनकी रचनाधर्मिता की पहचान भी है और उनकी शक्ति भी।

डॉ. पाठक के मुक्तकों की भाषा सरल तथा सुबोध है। नवीन शब्दों के प्रयोग के साथ–साथ नए अर्थ देने की क्षमता भी उनमें विद्यमान है। लघु समासयुक्त पदावली माधुर्य गुण की व्यंजक होने के कारण मधुरता है। अलंकारों के व्यर्थ भार से मुक्तकों को दबाया नहीं गया है। वाक्य रचना अत्यन्त सरल है। व्याकरणोचित भाषा का प्रयोग किया गया है। क्लिष्ट शब्दों का यथासम्भव परिहार किया गया है। कहीं भी लम्बे समासों का प्रयोग नहीं किया गया है। यही कारण है कि भाषा सर्वत्र प्रसादगुण युक्त है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य लोक–विस्तारक दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी समझे जाते हैं, आज के युग में जो रचना समसामयिकता का बोध करवाये वही श्रेष्ट है। इस दृष्टि से डॉ. जगन्नाथ पाठक का मुक्तक साहित्य अपनी युगानुरूपत्वता के कारण संस्कृत वाङ्मय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

♦ ♦ ♦ ♦

शोध–संक्षेपिका

शोध–संक्षेपिका

"आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के सृजनात्मक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (1980–2013 तक)" शीर्षकाश्रित यह शोध–प्रबन्ध मेरे पाँच वर्षों के कठिन परिश्रम का प्रतिफल है। विगत पाँच वर्षों में शोध निर्देशिका डॉ. सुदेश आहुजा के कुशल निर्देशन में डॉ. पाठक के जीवन–चरित से प्रारम्भ कर उनकी कृतियों की समीक्षा पर्यन्त निष्कर्ष प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में गुम्फित है। शोध प्रविधि की दृष्टि से मैंने प्रस्तुत विषय पर प्राचीन व नवीन तथ्यों के आधार पर विभिन्न मौलिक ग्रन्थों, पुस्तकों, शोध–निबन्धों, पत्र–पत्रिकाओं के आधार पर गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस शोध प्रबन्ध की शैली वर्णनात्मक, इतिवृत्तात्मक तथा गवेषणात्मक है। डॉ. पाठक की कृतियों में कल्पना के कोमलत्व, भाषा के प्रसादत्व, विचार–गाम्भीर्यत्व, मानव जीवन के सूक्ष्म विश्लेषणत्व, प्रेम के उदात्तत्व, समसामयिकतत्व, युगानुरूपत्वता को सहृदय तक पहुँचाना मेरा उद्देश्य रहा है। अपेक्षित शोध निष्कर्षों की प्राप्ति हेतु मैंने शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त कर कार्यारम्भ किया। सर्वप्रथम मैंने डॉ. पाठक की समस्त कृतियों का समुचित अध्ययन किया, उसके बाद अपना शोध कार्य प्रारम्भ किया। डॉ. सुदेश आहूजा के पूर्ण सहयोग से मैंने प्रस्तुत विषय को सात अध्यायों में विभक्त कर शोध प्रारुप का निर्माण निम्नलिखित केन्द्र बिन्दुओं को आधार बनाकर किया है–

प्रथम अध्याय : डॉ. जगन्नाथ पाठक का व्यक्तित्व तथा कृतित्व

द्वितीय अध्याय : मुक्तक साहित्य का उद्भव तथा विकास

तृतीय अध्याय : डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय : डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अनुशीलन

पंचम अध्याय : डॉ. पाठक का अनुदित साहित्य

षष्ठ अध्याय : डॉ. पाठक कृत सुभाषित साहित्य में जीवन के शाश्वत मूल्यों का चिंतन

सप्तम अध्याय : डॉ. पाठक का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान

उपसंहार

शोध प्रबन्ध के **प्रथम अध्याय** में आधुनिक संस्कृत साहित्य के अप्रतिम विद्वान् आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक के जीवन का वर्णन किया गया है तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समालोचनात्मक पक्ष प्रस्तुत किया गया है। डॉ. जगन्नाथ पाठक के कवित्व का कौशल उनकी निम्नलिखित रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है–

1. कापिशायनी (1980)
2. मृद्वीका (1983)
3. पिपासा (1987)
4. विच्छित्तिवातायनी (1992)
5. आर्यासहस्रारामम् (1995)
6. जगन्नाथ सुभाषितम् (2011–2012)
7. गालिबकाव्यम् (2003)

विभिन्न प्रमाणों के आधार पर यह निर्णीत किया जा सकता है कि डॉ. जगन्नाथ पाठक का जन्म बिहार प्रान्त के अन्तर्गत रोहतास जिले के 'सासाराम' ग्राम में हुआ। डॉ. पाठक अतुलित प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व व कृतित्व के धनी है। सहज–सरल व्यक्तित्व और संवेदनशील मन एक कवि की धात्री है उसी संवेदना के आधार पर कवि पूरे समाज का आलोकन कर अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। उनका पूरा रचना सार उनकी संवेदना की अभिव्यक्ति है। उन्होंने अपने आस–पास की हर चीज को सूक्ष्म दृष्टि से देखा तथा उसे अपने काव्य का आधार बनाया। उनका हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं पर समान अधिकार है। उनकी प्रत्येक रचना में सत्यं–शिवं–सुन्दरम् का समवाय है। उनकी रचनायें स्वान्तः सुखाय तथ लोकहिताय के लिए है। आर्या छन्द पर उनका जबरदस्त अधिकार होने के कारण ही उन्हें संस्कृत में 'आर्यासम्राट्' के नाम से जाना जाता है। उनकी प्रत्येक आर्या में जीवन के अनुभवों का सार है। उनकी रचनाओं में जीवन की विषमताओं व विद्रूपताओं के साथ प्रेम के कोमलतम व करुणा के मार्मिक क्षण भी नहीं छूटे हैं। डॉ. पाठक बिहारी के 'जेतौ नीची ह्वै चले, ते तौ ऊँची होई' इस नीतिवाक्य के साकार विग्रह है। इनकी भद्रता इनकी विद्वता पर सदैव

हावी रहती है। इस प्रकार निरन्तर संस्कृत साधना में तत्पर रहते हुए आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक अद्भूत प्रतिभा वाले व्यक्तित्व व कृतित्व से सम्पन्न है।

द्वितीय अध्याय में मुक्तक साहित्य के उद्भव तथा विकास का साहित्यिक व ऐतिहासिक दृष्टि से परिशीलन किया गया है। ऐतिहासिक अध्ययनों के अनुसार पद्य काव्य की दो शाखाएँ प्रस्फुटित हुई। (क) प्रबन्ध काव्य (ख) मुक्तक काव्य। मुक्तक विश्व की साहित्य विधा की सबसे प्राचीन विधा है। यह संस्कृत वाङ्मय की सभी काव्य विधाओं की जननी है। वाचिक परम्परा में सृष्टि के आदिकाल में जब मनुष्य ने अपने भावों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी, तो उसने गाथा, मुक्तक या गीत इस प्रकार की काव्य कोटियों की ही सर्वप्रथम रचना की। वेद के मंत्र अपने आप में मुक्तकों के उदाहरण है। मुक्तक काव्य हमारे जीवन में मूल प्रेरणा के सुन्दर स्रोत है। समृद्ध मुक्तक काव्य का स्वरूप बहुआयामी होकर लोकमानस की सुन्दर मीमांसा करता है। कुछ मुक्तक काव्य देवस्तोत्रात्मक है, तो कुछ सौन्दर्यपरक हैं, तो अनेक राष्ट्रीयता पर आधारित है तो कुछ सुभाषितपरक है, कुछ गीतात्मक है तो कुछ सप्तशती में निरूपित है।

अर्वाचीन मुक्तक रचनाओं में कवि निजी जीवन से प्राप्त संस्कारों एवं संघर्षों की अभिव्यक्ति अपने सृजनात्मक कार्य में कर रहा है। आज कवि बदलते परिवेश एवं मूल्यों के अनुरूप बदलती मानवीय संवेदनाओं को अपनी मुक्तक रचनाओं का विषय बना रहा है। आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण उसके बाह्य एवं अन्तः दोनों रूपों में पर्याप्त अन्तर आया है। आधुनिक मुक्तक काव्यों में जहाँ एक ओर जीवन मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति हैं वही दूसरी ओर लोगों के चारित्रिक विकास के लिए आवश्यक शाश्वत् मूल्यों सत्य, परोपकार, अहिंसा, प्रेम, तप, त्याग, शिष्टाचार आदि को भी प्रमुखता दी है।

साहित्यिक दृष्टि से भी अर्वाचीन मुक्तक साहित्य की प्रासंगिकता है। साहित्य का उद्देश्य लेखनी के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र का उत्थान करना है। इस दृष्टि से अर्वाचीन मुक्तककारों ने पौराणिक कथानकों द्वारा न केवल पौराणिक आदर्शों को प्रस्तुत किया है वरन् आधुनिक विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, व्यवसायहीनता, नारीसंरक्षण, ज्ञान का महत्त्व, पर्यावरण संरक्षण, भ्रष्टाचार आदि विषयों को लेकर मुक्तक रचना की है और उन

प्राचीन व नवीन सभी विषयों को आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर उनके समाधान की दिशा को भी प्रदर्शित किया है। इस प्रकार सभी दृष्टियों से मुक्तक काव्य आधुनिक युग में उपादेय है।

इसी क्रम में ग्रन्थ के **तृतीय अध्याय** में डॉ. पाठक के मुक्तक साहित्य का समसामयिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अनुशीलन किया गया है। डॉ. पाठक ने अपने मुक्तक साहित्य में वर्तमान समसामयिक परिस्थितियों को उजागर कर उन्हें दूर करने का जो प्रयास किया है, वह श्लाघनीय है। वे यथार्थवाद, जाति–भेद, वर्तमान राजनीति, आतङ्कवाद, हिंसा, नारी समस्या, आर्थिक विषमता का वर्णन कर पाठकों के सामने तरह–तरह के प्रश्न उठाते हैं। उनका मानना है कि मानवता तथा प्रेम के बल पर ही सभी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। डॉ. पाठक जीवन के यथार्थ के साथ समकालीन जीवन की सच्चाईयों को खोजने वाले रचनाकार है। डॉ. पाठक के मुक्तकों में समसामयिक समस्याओं के सहज परिवेशों की धुरी से अतीत और भविष्य की सनसनी के नये प्रतिमान दिखायी पड़ते हैं। सभी मुक्तकों में समसामयिक विद्रूपताओं एवं विपन्नताओं का जो आलेखन है, वे समाज का अभिन्न अंग है। डॉ. पाठक ने सभी सामसामयिक समस्याओं यथा सामाजिक यथार्थ, मानवता, राजनीति, आतङ्कवाद, मानवीय संवेदना, नारी समस्या, वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था, समाज–विघटन, वर्ण–संघर्ष आदि पर मुक्तकों की रचना की है। भारतीय समाज जिन समस्याओं को झेल रहा है, डॉ. पाठक के मुक्तक उनका दस्तावेज ही है। उनके मुक्तकों में मात्र रसचर्वणा व चमत्कार ही नहीं है, अपितु मानव जीवन की वास्तविकता का वर्णन है। डॉ. पाठक का अपना एक चिन्तन का धरातल है वह उन सभी मान्यताओं का विरोध करते हैं, जिनसे मानवता को खतरा है। वे परम्परागत मार्ग के अनुगामी नहीं है। वे अपना रास्ता स्वयं चुनते हैं, जिससे जीवन सही मार्ग पर अग्रसर हो सके–

“तेन पथा न गतोऽहं जनसम्मर्दः पथा गतो येन”

उनका मानना है कि जीवन को हमेशा हँसते–मुस्कराते हुए जीना चाहिए, दुःखों से हार मानकर रोते हुए नहीं। जीवन को ‘रामादिवत् वर्तितव्यं न तु रावणादिवत्’ इस नीतिवाक्य के अनुसार यापन करना चाहिए। उन्होंने कहा भी है “जीवनं रामो हि रामो

जीवनम्, रावणत्वमुपेति किमु जीवनम्" डॉ. पाठक न तो परम्परा विरोधी है और न ही आधुनिकता की अंधी दौड़ में वे मुक्तक साहित्य में भाव पक्ष व संवेदनशीलता के होने की अत्याधुनिकता को स्वीकार करते हैं, वरन्, जीवन व जगत् के अनुभूत सत्यों का पुरातनता की आधार भूमि पर कवि की भावजन्म अनुभूतियों का नवोन्मेष ही कवि–कर्म है।

इस प्रकार डॉ. पाठक ने अपने द्वारा अनुभूत सत्यों को भाषा प्रदान की है। उनके मुक्तकों में जीवन के शाश्वत् सत्यों का दर्शन है। उनमें समता व साम×जस्य की भावना, लोकोपकारी नीतियों, विश्वबन्धुत्व की भावना का उद्घोष ही नहीं वरन् मानवीय धर्म सदाचार, सद्गुण, सत्य, धर्म में निष्ठा आदि का वर्णन है। उन्होंने अपने मुक्तकों में जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक सभी आयामों का समावेश किया है। व्यक्ति को समुचित जीवन दर्शन का ज्ञान करवाकर समाज को एक नई दिशा तथा प्रेरणा दी है।

उन्होंने अपने मुक्तकों के लिए जीवन का विशाल पट चुना एवं विभिन्न परिपार्श्व की यथार्थवादी दृष्टि ने अत्यन्त सूक्ष्म तथा सशक्त अभिव्यक्ति दी है। उनके मुक्तकों में व्यक्ति के वैयक्तिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन–मूल्यों का चित्रण है साथ ही जीवन मूल्यों की सार्थकता, बदलती स्थितियों के अनुसार जीवन मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों का भी वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय में भाषा, भाव तथा छन्द की दृष्टि से डॉ. पाठक के मुक्तकों की समालोचना की गई है। डॉ. पाठक जी के सम्पूर्ण कविता संकलन मुक्तक कविता के संग्रह है तथा कथ्य व शिल्प दोनों ही दृष्टियों से उन्होंने कविता को एक नया व अद्भूत स्वरूप प्रदान किया है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। इस दृष्टि से कवि ने सहज, सरल और प्रा×जल भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्ति दी है। उनके कथन की शैली व अन्दाज़े बयां बहुत ही अद्भुत है। उनके मुक्तकों में जीवन–मूल्यों के वर्णन के साथ–साथ भाषा में गति व प्रवाहमयता है। डॉ. पाठक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनके मुक्तकों में अनेकत्र मुहावरों व कहावतों तथा प्राचीन साहित्यिक सूक्ति वाक्यों के प्रयोग से भाषा में प्रवाह, गतिमयता व तरलता देखने को मिलती है। रस व अलंकार दृष्टि से समालोचना करने पर डॉ. पाठक के मुक्तक विलक्षण प्रतीत हुए है। डॉ. पाठक ने शृङ्गार, वीर, करुणा

रसों के निरूपण में अपनी काव्य प्रतिभा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। अलङ्कार की दृष्टि से डॉ. पाठक के मुक्तकों में विविध शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों की मिश्रावली है। विशेषतया अनुप्रास, श्लेष, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलङ्कारों की बहुलता है। विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से इन अलङ्कारों की समालोचना की है। डॉ. पाठक की कविता जाति, उदात्त, साक्ष्य और आत्मानुभव की कविता है। जाति, उदात, साक्ष्य और अहंकार ये अलङ्कार डॉ. पाठक के मुक्तकों में विशेष रूप से गुंथ कर आये हैं।

भाव सौन्दर्य की दृष्टि से डॉ. पाठक ने वर्तमान युग की विसंगतियों को अपने मुक्तकों का विषय बनाया है। उन्होंने कविता की प्राचीन समृद्ध परम्परा का स्मरण कराया है। वे वाल्मीकि, व्यास व कालिदास आदि कवियों को ही श्रेष्ठ मानते हैं जिन्होंने स्वानुभूत चिन्तन के आधार पर जीवन के सत्यों को पहचाना और ऐसी कालजयी रचनायें व साहित्य विश्व को दिया जो आज भी समसामयिक है।

छंद की दृष्टि से विचार करे तो डॉ. पाठक की रचनाओं में प्रवाहमयता व गीति विद्यमान है। डॉ. पाठक ने अपनी रचनाओं में विषयवस्तु नवीन दी है लेकिन छंदबद्ध कविता लिखी है। उन्होंने वियोगिनी व आर्या छंदों में मुक्तक रचे हैं। उनके मुक्तकों में वैशद्य गुण, सहजता और प्रसन्नता देखने की मिलती है। इनमें स्वाभावोक्ति भी है, अन्योक्ति भी, युगीन विद्रूपताओं पर प्रहार भी है और विडम्बनाओं का बेबाक सपाट प्रस्तुतीकरण भी।

प×चम अध्याय में मैंने डॉ. पाठक विरचित अनुदित कृति 'गालिबकाव्यम्' का परिशीलन किया है। डॉ. पाठक ने यह सिद्ध किया है कि गजल किसी भाषा–विशेष की वस्तु नहीं, बल्कि यह एक शिल्प है, जो भावात्मक संवेदना की अभिव्यक्ति का सफल सन्धान करती है। आप ग़ज़ल परम्परा के महत्त्वपूर्ण कवि है जिन्होंने ग़ज़ल की संवेदना को जीवन के यथार्थ का संग और रंग दिया है। आपकी अनुदित कृति 'गालिबकाव्यम्' सचमुच की रसवती वारुणीधारा है जो पाठक के चित्त को मादक रसानुभूति से परिपूर्ण कर ऐसे नवीन लोक के आलोक में ले जाती है, जहाँ अभाव से भाव पैदा होता है, जहाँ वेदना में संवेदना जिंदा रहती है। गालिबकाव्यम् की ग़ज़लें कवि के संघर्षशील व्यक्तित्व

की विच्छित्ति है। कृति के अनुदित होने पर भी पाठक पढ़ने के उपरान्त यही कहता है कि ये गज़ले रचनात्मक नैपुणी का नितनूतन सन्निवेश और रसपेशल सन्धान नितान्त ग्राह्य और हृघ है। संरचना के स्तर पर विन्यास और संयोजन की कुशलता और जागरुकता के द्वारा, तो वस्तु के स्तर पर संघर्षशील उदात्त कवि मानस के साधना से वह सम्भव है। अनुवाद की भाषा सरल व सर्वजनग्राह्या है। प्रायः सभी पद मूल को अनुसरते हैं। न केवल भाषा का सारल्य अपितु अनुवाद में वृत्तानुवृत्त का पालन, अनुदित गज़लों का संचय अनुवादक कवि के अनुशीलन व काव्य–प्रतिभा के परिचायक है।

षष्ठ अध्याय में मैंने डॉ. पाठक कृत सुभाषित साहित्य में जीवन के शाश्वत् मूल्यों का चिन्तन किया है। जीवन मूल्य अत्यन्त व्यापक एवं चर्चित शब्द है, जिसका संबंध जीवन के प्रत्यक्ष पक्ष एवं व्यावहारिक पक्ष से है। आज जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता केवल व्यक्ति जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि घर, परिवार, राज्य, राष्ट्र व विश्व तक अच्छे जीवन मूल्य सम्मानित हुए हैं। डॉ. पाठक कृत 'जगन्नाथसुभाषितम्' में जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक जीवन मूल्यों का दर्शन होता है। उन्होंने सुभाषितों में अपनी संवेदनाओं तथा अनुभवों को सजा–संवारा है। वैविध्य और परिमाण की दृष्टि से साहित्य की सुभाषित परम्परा में उपलब्ध डॉ. पाठक रचित 'जगन्नाथसुभाषितम्' संस्कृत वाङ्मय की अक्षय व अमूल्य निधि है। इसमें भारत में व्याप्त स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, दलित–शोषण, नारी–शोषण, राजनीति जैसी विषम परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है तो भविष्य के प्रति झटपटाते मनुष्य के भीतर आशा, विश्वास एवं जीवन के प्रति आस्था का भाव जगाने की शक्ति है। इसमें नए–नए जीवन मूल्यों व नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा है। डॉ. पाठक का यही मूल्यबोध समकालीन संस्कृत साहित्यकारों में पाठक जी की अपनी अलग पहचान बनाता है। जगन्नाथसुभाषितम् में वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन मूल्यों का सशक्त चित्रण है।

सप्तम अध्याय में मैंने डॉ. जगन्नाथ पाठक का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान निर्धारित किया है। आज मानवता विनाश के कगार पर खड़ी है। हिंसा, स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा सबसे बड़ी समस्या है। कवि पाठक जीवन में नये निर्माण के आकांक्षी है। परन्तु प्राचीन परम्पराओं के विरोधी भी नहीं है लेकिन जड़ परम्पराओं का ध्वंस करके नवनिर्माण उनका लक्ष्य है। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा अपने सÚाव को, अपने अनुभव को, अपने सत्यानुसंधान को एक व्यापक, विस्तृत एवं महनीय आयाम दिया है। साहित्य का महत्त्वपूर्ण

उद्देश्य मानव मन का परिष्कार भी है, वह क्षुद्र मानव मन को परिष्कृत व सुसंस्कृत कर सके, उसे चिन्तन के नये आयाम दे, इस प्रकार का महत् उद्देश्य लेकर कवि अपनी कविता यात्रा प्रारम्भ करता है, इस उद्देश्य में कवि जगन्नाथ पाठक पूर्णतः खरे उतरते हैं।

इस प्रकार सात अध्यायों में शोध–प्रबन्ध को विभक्त कर डॉ. पाठक के समस्त मुक्तक साहित्य, सुभाषित साहित्य, अनुदित साहित्य की समालोचना मेरे द्वारा की गयी है। इस शोध–प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य डॉ. पाठक द्वारा रचित साहित्य को समस्त साहित्य जगत् के सामने लाना तथा डॉ. पाठक का अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्थान निर्धारण करना है। विगत पाँच वर्षों में शोध–प्रबन्ध के भिन्न–भिन्न पाठों का समीक्षण, मुक्तक साहित्य का सर्वांगीण अध्ययन, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से मुक्तक साहित्य का अनुशीलन करने का प्रयास आपके समक्ष प्रस्तुत है तथापि इस प्रकार के साहित्य पर अन्य प्रयास भी निरन्तर अपेक्षित है।

संस्कृत–साहित्य–सुरसरिता मानव की पिपासा को शान्त करती हुई अवनितल पर चिरकाल से प्रवाहित हो रही है। साहित्य–सर्जना ही मानव मन की अभिव्यक्ति का सरल एवं शाक्तिशाली माध्यम है। मानव मन की पिपासा की शान्ति तथा जनमङ्गलकारिणी कान्ति को कभी साहित्य पढ़कर, कभी सुनकर, कभी रङ्गमंच पर अभिनीत देखकर होती है।

इसी साहित्य–सर्जना आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं–आर्यासम्राट् डॉ. जगन्नाथ पाठक। उनकी बहुमुखी साहित्यिक–प्रतिभा का मूल्यांकन उनके ग्रन्थों से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने अनेक मुक्तक ग्रन्थों की रचना की साथ ही अनुदित साहित्य भी रचा जिससे इनका रचना कौशल उत्तरोत्तर परिपक्वता को प्रापत हुआ।

साहित्य–समीक्षा का मापदण्ड है कि जो रचना मानवता को अनुप्राणित कर सके अथवा जिसके द्वारा आनन्दानुभूति की जा सके, अथवा जिसमें कान्तासम्मित उपदेश देने की क्षमता हो वह रचना साहित्य में शीर्ष स्थान की अधिकारिणी है।

♦ ♦ ♦ ♦

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

डॉ. जगन्नाथ पाठक–वाङ्मय

सहायक–ग्रन्थ

व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ

शोध–पत्रिकाएँ

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

डॉ. जगन्नाथ पाठक कृत वाङ्मय

1. आर्यासहस्रारामम् : डॉ. जगन्नाथ पाठक श्री गङ्गानाथ झा के.सं. विद्यापीठ, इलाहबाद, 1995
2. कापिशायनी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली, 1987
3. गालिबकाव्यम्, दास पब्लिशर्स, इलाहबाद, 2003
4. जगन्नाथसुभाषितम्, डॉ. जगन्नाथ पाठक, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली, 2012
5. पिपासा, डॉ. जगन्नाथ पाठक, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली, 1987
6. मृद्वीका, डॉ. जगन्नाथ पाठक, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली 1983
7. विच्छित्ति वातायनी : डॉ. जगन्नाथ पाठक, अनिल कुमार पाठक, कोटा लोनी, सासाराम, 1992

अन्य सहायक ग्रन्थ

8. अग्निपुराण : टी.एम.एन. दत्त, आनन्दाश्रम प्रकाशन, पूना, 1903
9. अथर्ववेद संहिता : सं. श्री कण्ठ शास्त्री, माधव पुस्तकालय कमलानगर, 1929
10. अभिराजयशोभूषणम्, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
11. अभिनव भारती, अभिनवगुप्त, गायकवाड प्रेस, बड़ौदा, 1956
12. अनुवाद विज्ञान और अनुप्रयोग : डॉ. नगेन्द्र, दिल्ली वि.वि., 1993
13. अनुवाद विज्ञान स्वरूप और समस्याएँ : डॉ. रामगोपाल सिंह, वाणी प्रकाशन, 2009
14. अनुवाद भाषाएँ–समस्याएँ, विश्वनाथ अय्यर, ज्ञानगंगा प्रकाशक, दिल्ली सं., 1992
15. अनुवाद विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1994
16. अनुवाद कला सिद्धांत और अनुप्रयोग, कैलाश चन्द्र भाटिया, तक्षशिला प्रकाशन, 1994
17. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली
18. ईशावास्योपनिषद, निर्णय सागर संस्करण, बम्बई, 1930

19. ऋग्वेद : सं. स्वामी दयानन्द सरस्वती, सर्वदेशिका आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, 1974
20. कठोपनिषद्, निर्णय सागर संस्करण, बम्बई, 1930
21. काव्यादर्श (दण्डी) सं. डॉ. जमुना पाठक, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2005
22. काव्यालङ्कार (रुद्रट) डॉ. सत्यदेव चौधरी, वासुदेव प्रकाशन, मण्डल टाउन, दिल्ली, 1965
23. काव्यालङ्कार (भामह), व्या. डॉ. रमणकुमार शर्मा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली 1994
24. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (वामन), सं. दुर्गादास, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1986
25. काव्यानुशासन–हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1934
26. काव्यप्रकाश (मम्मट), आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1960
27. काव्यमीमांसा (राजशेखर), डॉ. गंगासागर राव, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1964
28. चन्द्रालोक (जयदेव), सं. सुबोध चन्द्र पंत मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1996
29. छान्दग्योपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1980
30. जातकमाला, आर्यशूर, चौखम्भा सं.स. वाराणसी, 1994
31. तैत्तिरीयोपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर, 1949
32. थेरगाथा, सं. एन.के. भागवत, हावर्ड यूनिवर्सिटी, 2015
33. ध्वन्यालोक (आनंदवर्धन), व्या. विश्वेश्वर पाण्डेय, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, सं. 2042
34. नाट्यशास्त्रम् (भरतमुनि), प्रो. ब्रजमोहन चतुर्वेदी, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1998
35. निरुक्त (यास्क) व्या. दुर्गाचार्य, कलकत्ता, 1952
36. नीतिशतकम् (भर्तृहरि), व्या. गोपाल शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1997
37. भारतीय साहित्य शास्त्र, बलदेव उपाध्याय, प्रसाद परिषद, काशी, सं. 2005
38. भर्तृहरिशतकत्रय–रमारंजनी टीका, ले. ददन उपाध्याय, चौ.सु.भा., वाराणसी, 2010
39. भावप्रकाश : शारदातनय, गायकवाड़ संस्करण, बड़ौदा, 1930
40. भोज प्रबन्ध, श्री वल्लभ, वाराणसी वि.वि. प्रकाशन, 1963
41. मनुस्मृति (मनु), व्या. जनार्दन शर्मा, चौ. सं. सी., वाराणसी, 1975

42. महासुभाषितसंग्रह, लुडविक् स्टर्न बेच, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, 1993

43. मानव मूल्य और साहित्य : डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, 1999

44. यजुर्वेद संहिता, दयानन्द सरस्वती परोपकारिणी सभा

45. रसगंगाधर (पं. जगन्नाथ), भट्ट मथुरानाथ झा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1983

46. वक्रोक्तिजीवितम् (कुन्तक) चौ.सं.सी., वाराणसी, 1924

47. व्यक्ति विवेक (महिमभट्ट) जयकृष्णदास हरिगुप्त, बनारस, 1936

48. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, हर्षदेव माधव

49. शृंगारतिलक रुद्रट, प्राच्य प्रकाशन जगतगंज, वाराणसी, 1978

50. सरस्वतीकण्ठाभरणम्, भोजदेव, नारायण प्रेस, कलकत्ता, 1874

51. साहित्यदर्पण (विश्वनाथ), डॉ. सत्यव्रतसिंह, चौ. सु. प्रकाशन, 1989

52. सामवेद (मूलमात्र), नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2000

53. सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, पं. काशीनाथ शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1635

54. सुभाषितावली, डॉ. सुदेश आहूजा, चौ.सं.प्र., दिल्ली 2015

55. शुर्ङ्गधर पद्धति, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1931

56. शुक्रनीति : डॉ. जगदीश चन्द्र मिश्र, चौ. विद्याभवन, वाराणसी, 1998

छन्दोव्याकरणकोषेतिहासादि ग्रन्थ

57. अमरकोश, अमर सिंह, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1970

58. अष्टाध्यायी (पाणिनि), सं. ब्रह्मदत्त, जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, 1986

59. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, रमाकान्त पाण्डेय, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली 2001

60. आधुनिक संस्कृत साहित्येतिहास, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, पद्मशास्त्री, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2004

61. मानक हिन्दी कोश : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965

62. वृहत् हिन्दी कोश, सं. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1973

63. वैदिक कोश : राजवीर शास्त्री, आर्य संस्कृत प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1975

64. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर, 1988

65. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, रा.सं.स., जयपुर, 2005
66. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, इलाहबाद, 1997
67. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास : श्री बलदेव उपाध्याय, उ.प्र.सं.स., 2000
68. संस्कृत वाङ्मय कोश, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता, 1988
69. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1989
70. हलायुध कोश, जयशंकर जोशी, हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ, 1957
71. A History of Sanskrit Literature, A.B. Keith, Oxford University Press, Delhi, 1973
72. History of clasical sanskrit literature, M. Krishna, A. Nama Chariar, Delhi, 1982

Internet side

73. https://myvedicbooks.com>vedicsuktsangarh
74. https://hi.m.wikipeida.org>wini>gathasaptshati
75. https://myvedicbooks.com>nyaysuta
76. https://myvedicbooks.com>tarksangrah
77. https://myvedicbooks.com>paniniyasiksha
78. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/anuwad/anuwad k vivid aayam
79. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/anuwad/anuwad vigyan
80. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/anuwad/vedprakash-anuwad kala kuch vichar
81. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/anuwad the art of translation
82. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/anuwad/anuwad vividanuwadgyan
83. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/history/the complete works of swamivivekanand
84. https://ebook.pustak.org/book/categorybooks/bhashavigyan
85. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>gathasaptshati
86. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>thergatha
87. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>aacharyaanandvardhan
88. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>aaryasaptshati
89. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>shabdkalpdrum
90. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>amrukkavi
91. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>kavyaguchamala
92. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>sudhigranthmala
93. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>sanskritvangmaykaithihas
94. https://www.scribd.com>document>ahistory of sanskrit literature
95. https://www.scribd.com>document>sduktikarnamritam

96. https://www.scribd.com>document>sanskritsabdhart
97. https://www.scribd.com>document>sringarshatak
98. https://www.scribd.com>document>shivduttsharmachaturvedi
99. https://www.scribd.com>document>revaprasad diwedi
100. https://www.scribd.com>document>jiwanmuktkam
101. https://www.scribd.com>document>gumankavi
102. https://www.scribd.com>document>ramakant shukla
103. https://www.scribd.com>document>ramjishastri
104. https://www.scribd.com>document>devishatak
105. https://www.scribd.com>document>the intutive philosophy
106. https://www.scribd.com>document>matrabhulahri
107. https://www.scribd.com>document>bhatttotta
108. https://www.scribd.com>document>ucchtar samajshastriyasiddhant
109. https://www.scribd.com>document>encyclopedia bretinica
110. https://www.scribd.com>document>shrikantcharitam
111. https://www.scribd.com>document>neelkanthshukla
112. https://www.scribd.com>document>sanskritvangmaykabrihatitihas
113. https://www.scribd.com>document>rabindrakumarpande
114. https://www.scribd.com>document>lalbahadurshastricharitam

विभिन्न पत्र–पत्रिकाएँ

115. अर्वाचीनसंस्कृतम् – देववाणी परिषद्, दिल्ली
116. दृक् – दृक्भारती, इलाहबाद
117. भारती – भारतीभवनम्, जयपुर
118. विश्वसंस्कृतम – विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, पंजाब
119. सागरिका – श्री लाल बहादुर शास्त्री, रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली
120. स्वरमंगला – सागरिका समिति, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि.म.प्र.
121. शोधप्रभा – राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

♦ ♦ ♦ ♦

प्रकाशित शोध–पत्र

30-31

ISSN 0976 - 447X

दृक्

जुलाई - दिसंबर 2013/ आषाढ़-पौष 2071
जनवरी - जून 2014 / माघ - ज्येष्ठ 2071-72

दृग्-भारती
इलाहाबाद
2014

इस अंक में ....

सम्पादकीय — आचार्य श्रीनिवास रथ / एक श्रद्धा-कुसुमाञ्जलि
बनमाली बिश्वाल 04

श्रीनिवास उवाच (09-21)
1. मेरी काव्य-यात्रा के सन्दर्भ में **श्रीनिवास रथ** 09

श्रीनिवासस्मरणे (22-72)
2. सुकुमार गीतकार डा. श्रीनिवास रथ
मञ्जुलता शर्मा 22
3. श्रीनिवासरथकाव्येषु वास्तवधर्मिता काव्यधर्मिता लोकधर्मिता च
नारायण दाशः 26
4. श्रीनिवास रथ के गीतिकाव्य 'तदेव गगनं सैव धरा' में युगबोध
सुधाकर द्विवेदी 35
5. आचार्य श्रीनिवास रथ के साहित्य में उज्जयिनी-राग
बनमाली बिश्वाल 42
6. कविवर-श्रीनिवासरथस्य कविताचातुरी
धर्मेन्द्र कु. सिंहदेवः 46
7. सुकवि रथ के अभिनव नाट्यशास्त्रीय चिन्तन
अजय कुमार मिश्र 51
8. गीतिकाव्य 'तदेव गगनं सैव धरा' का अनुशीलन
सन्तोष कुमार 62
9. आधुनिकसंस्कृतगीतिकाव्येषु युगबोधः
('तदेव गगनं सैव धरा' के विशेष सन्दर्भ में)
सूर्यप्रकाश शुक्लः 72

साक्षात्कार (75-84)
10. आधुनिक संस्कृत-कवि मनीषी आचार्य प्रफुल्ल कुमार मिश्र जी के साथ साहित्यिक एवं सारस्वत साक्षात्कार **बनमाली बिश्वाल** 75

आलेख (85-169)

11. एक आधुनिक क्रान्ति द्रष्टा क्रान्तिकारी कवि डा.हर्षदेव माधव
हरिदत्त शर्मा 85

12. Poetic vision of late Manmohan Acharya
Arun ranjan Mishra 90

13. भक्तिसंदेश-काव्य श्रीहनुमद्दूतम् **उमेशदत्त भट्ट** 106

14. कथामन्दाकिनी-एक अवलोकन **मीरा दुबे** 114

15. सुभाषित-परम्परा का नवीन आयाम-जगन्नाथसुभाषितम्
सतीश कुमार शर्मा 117

16. श्रीमहाकालेश्वरस्तुतिपञ्चरत्नम् : पारम्परिक शैली का अभिनव स्तोत्रकाव्य **गोविन्द मिश्र** 126

17. अर्वाचीनसंस्कृतवाङ्मये हास्य-व्यङ्ग्यपरकं कथासमीक्षणम्
तारेश कुमार शर्मा 132

18. नई धारा के यशस्वी कहानीकार- डा.सूतदेव हंस (मालेरकोटला)
बनवारी लाल पाठक 137

19. कनकलोचनः कथ्यगत शिल्पविधान
सविता ओझा 141

20. कविशेखर महालिंग शास्त्री के अनूदित काव्यों की समीक्षा
ठण्डी लाल मीणा 148

21. वागड़ के संस्कृत-मर्मज्ञ, स्वनामधन्य विद्याभूषण स्व.पं. गणेशराम शर्मा का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व **बाबूलाल मीना** 154

22. दर्शन व साहित्य के समन्वय बिन्दु - केशव चन्द्र दाश
प्रतिमा त्रिपाठी 159

23. नारीदुर्दशाया आलेख्यानि /श्रीबिश्वालस्य संस्कृत-काव्यानि
राज्यधरमण्डलः 166

....

समीक्षायन (170-189)

24. केशवचन्द्रदाशरचनावली/ केशवकाव्यकलानिधिः **बबिता निर्मल** 170

25. समीक्ष-द्वयी - अधरोत्तमारणि, तारा अरुन्धती **नारायण दाश** 184

26. पद्यबन्धा का आचार्य श्रीनिवास रथ-स्मृत्यंक **विनोद कुमार दीक्षित** 187

27. साम्प्रतिकी सुरब्राह्मीसमीक्षाऽऽयामसंस्थितिः **रहसबिहारी द्विवेदी** 188

28. पत्राभिमत (दृक् 28-29 संयुक्तांक) **अभिराज राजेन्द्र मिश्र** 190

सुभाषित-परम्परा का नवीन आयाम जगन्नाथसुभाषितम्

सतीश कुमार शर्मा

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का समवाय रूप डॉ. जगन्नाथ पाठक पाठक की कृति जगन्नाथसुभाषितम् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से सन् 2011में प्रकाशित हुई है। इसमे डॉ. पाठक द्वारा रचित सुभाषितों का संकलन है। इस पुस्तक की पुरोवाक् आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखी है। अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य के हस्ताक्षरों में अग्रगण्य डा. बनमाली बिश्वाल ने कृति का परिचय व संपादन का कार्य किया है।

तीन खण्डों में विभाजित इस कृति मे डा.पाठक ने सुभाषितों के माध्यम से प्राचीन संस्कृति व सत्पुरुषों के चरित्र से पाठकों का परिचय करवाते हुए आज के समाज व उसमें व्याप्त विषमताओं, मानवभावों तथा जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस कृति के माध्यम से स्पष्ट होता है कि कवि ने लेखन को धर्म माना है, जिसका उद्देश्य केवल अपने भीतर हिलोरें लेते भावों की अभिव्यक्ति न होकर वरन् समाज को सत्य से रू-ब-रू करवाना है। अपने गहन चिन्तन के माध्यम से कवि जन-मानस के अन्तःकरण पर आच्छादित कलुषित मनोवृत्ति को अपावृत कर सत्य के कपाट को अनावृत करना चाहता है। कम शब्दों में विस्तृत भावबोध करवाना डा. पाठक की सबसे बड़ी विशेषता है। उनके हर सुभाषित में सम्पूर्ण मानव-जीवन का दर्शन होता है।

डा. पाठक की गिनती उन कवियों में होती है जिन्होनें गड्डलिका-प्रवाह की तरह प्राचीन परम्परा से न बन्धकर अपना मार्ग स्वयं चुना तथा आज के जीवन तथा जगत् का निरूपण किया है। जब तक साहित्य वर्तमान जीवन से नहीं जुड़ता उसमें पुरातनता का ही बोध होता है।

जगन्नाथसुभाषितम् के रूप में आपने समाज तथा साहित्य को सुभाषित-रूपी मोती प्रदान किये हैं। जो अपनी दुग्ध धवल कान्ति से सम्पूर्ण जगत् तथा साहित्य-संसार को आलोकित कर रहे हैं। जगन्नाथसुभाषितम् में जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति तथा देववाणी का पल्लवन-पोषण करने वाले कवियों का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर जीवन के यथार्थ का चित्रण है। आचार्य जगन्नाथ पाठक की कृति जगन्नाथसुभाषितम् आधुनिक भावबोध का पर्याय है, जिसे निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है -

1. श्रेष्ठ कवियों के प्रति आदर : - जगन्नाथसुभाषितम् के प्रथम भाग में संस्कृत भाषा की प्राणप्रतिष्ठा करने वाले आदिकवि वाल्मीकि, कवि कुलगुरु कालिदास, पण्डितराज जगन्नाथ, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि कवियों का वर्णन है। आदिकवि ने केवल रामायण नामक पुस्तक की रचना नहीं की अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को मूर्त्तरूप प्रदान किया है। वे ऐसे रचनाकर है जिनको पाकर आज भी भारत देश हर्ष का अनुभव करता है। वे तो साक्षात् वाग्देवी के अवतार हैं, उनके द्वारा रचित यह कालजयी कृति जो मूक को भी वाचाल बनाने मे सक्षम है। डा.पाठक आदिकवि को नमन करते हुए कहते हैं -

यस्याश्रममुपगम्य स्वं रक्षितमन्ततोऽनुभूतवती।

पुत्री भारतभूमेः स जयति वाल्मीकिरादिकविः ।।1।।

डा.पाठक कवि कुलगुरु कालिदास के प्रति भी श्रद्धा से अवनत है। कालक्रम से कई कवि हुए तथा होते रहेंगें किन्तु कालिदास रूपी रत्न आज भी अपनी चमक से सम्पूर्ण संस्कृत-वाङ्मय को आलोकित कर रहा है। वे साक्षात् कविता के अपर पर्याय हैं -

कवितैव कालिदासः कविता वा कालिदास एवेति।

चित्रात् सामान्यधियां नाद्यावधि निर्गता भ्रान्तिः।।2।।

2. व्यथा-वर्णन - युगसंवादित्व कवि डा. पाठक के स्वर्णिम सुभाषितों मे दलित-वर्ग,गंगा, वाग्देवता, अक्षयवट, काक आदि की व्यथा का अत्यन्त मार्मिक तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से वर्णन हुआ है। जिस गंगा नदी को हम मातृतुल्य मानते हैं, जो भागीरथ की घोर तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा के कमण्डल से निकलकर , विष्णु के चरणों को स्पर्श कर भगवान् रूद्र की जटाओं में स्थान पाकर भू-लोक पर अवतरित हुई, जिसने देश को सभ्यता एवं संस्कृति प्रदान की तथा देश की धार्मिक आस्था का आधार रही है तथा जिसके दर्शन-मात्र से मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसी पवित्र गंगा नदी आज निम्नगा हो गयी है। आज उसकी उपेक्षा की जा रही है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो एक दिन इतिहास मात्र रह जायेगी।

गङ्गा कदाचिदासीत् प्रवहन्ती भारतस्य मेदिन्याम्।

मन्ये लोकेऽस्मिन् मां ज्ञातारः केचिदितिहासात्।।3।।

केवल गंगा ही नहीं अन्य नदियों की भी यही स्थिति है। आज देश की गंगा-जमुनी संस्कृति खतरे में है। अपने ही पुत्रों द्वारा की जा रही इस प्रकार की उपेक्षा से गंगा-यमुना नित्य रुदन करती है-

केवलमहमेवार्ता नास्मि परं मामकी सखी यमुना।
नित्यं रुदिवः साम्प्रतमुभे प्रयागाङ्गणे मिलिते।।4

हमारे समाज में दलित वर्ग की स्थिति प्रारम्भ से ही दयनीय रही है। द्विजों के चरणों की सेवा में इनका जीवन प्रारम्भ हुआ तथा उसी में अन्त हो गया। शारीरिक संरचना में कोई भेद नहीं होते हुए भी इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। हम यह भूल गये है कि इनके बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती, फिर भी इनकी स्थिति पक्षियों में काक के समान हो गयी है-

विहगानां खलु मध्ये स्थितिर्यथा मन्यतेऽत्र काकानाम्।
परिगणितास्तिषमों वयं तथेतो मनुष्याणाम्।।5

दलित वर्ग की यह स्थिति भारत की उन्नति में परम बाधक है। डा.पाठक ने दलित वर्ग के इस दुःख को समझा तथा उसको शब्दों का आकार दिया।

3. मानवता – मानव की सबसे अमूल्य निधि है मानवता। यह मानव का स्वाभाविक तथा परम धर्म है। 'मानवत्वावच्छिन्न एव मानवः' कहलाता है, जिसमें यह गुण नहीं है वह मानव होते हुए भी साक्षात् दानव है। डा. पाठक मानवता के स्थान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

त्वामाश्रित्य लभन्ते सर्वाण्यपि सुन्दराणि सौन्दर्यम्।
सौन्दर्याणामपि रे मानवते त्वमसि सौन्दर्यम्।।6
मानवतया विरहितः स्पृहणीयो भवति मानवो नेह।
रूपवदपि कोमलमपि गन्धविरहितं प्रसूनमिव।।7

मानवता का अर्थ है दुसरों के लिए सर्वस्व अर्पण करना, नव सर्जन करना, द्वेष हटाना तथा अपनापन फैलाना, दूर हो बुराइयाँ, हृदय में समर्पण होना, सम्पूर्ण दुःखों का एक वितान होना, सब एक दूसरे का सम्मान करना, शान्ति व प्रेम का ही सबसे बडे हथियार होना आदि, आदि।

डा. पाठक का मानवता के विषय में उदार दृष्टिकोण है। आज के स्वार्थपूर्ण समाज में मानवता अपना अस्तित्व खो रही है। कवि मानता है कि एक समय वह था जब मानवता सर्वोपरि थी तथा जिसकी महक सम्पूर्ण मानव जाति में फैली हुई थी, किन्तु आज वही मानवता पददलिता हो गई है-

सन्ततमिदं ययाऽऽसीदुद्यानं सुरभि शोभमानञ्च।
पददलिता सा क्लिश्यति हन्त वराकीह मानवता।।8

वे मानते हैं कि जाति, धर्म, वर्ग इत्यादि से बड़ा धर्म मनुष्यता है-

अनपेक्ष्य जातिमथवा वर्गं देशञ्च कालमनपेक्ष्य।

अवतरदिव करूणार्द्रं भणति मनुष्ये मनुष्यत्वम्।।[9]

4. नारी - नारी के प्रति कविमन संवेदना से परिपूर्ण है। आज नारी की मृदुता, करुणा, त्याग, स्नेहादि गुणों को अपमानित किया जा रहा है। प्राचीन काल में नर-नारी का सम महत्त्व था, उसका सम्मान किया जाता था किन्तु आज नारी की उस पूततमा छवि को धूमिल किया जा रहा है। नारी को पुरुष द्वारा सम्मान दिया तो जाता है किन्तु उसके अस्तित्व को स्वीकारा नहीं जाता है। नारी की स्नेहशीला व शक्तिरूपा छवि आज शोषणग्रस्त है। कन्या-भ्रूण-हत्या जैसी समस्याऐं बढ़ती जा रही हैं। आज नारी तिरस्कार, दमन व शोषण की वस्तु मात्र रह गयी है। नारी के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसी तरफ इंगित करते हुए कवि कहता है-

मूकीभूता सर्वं सोढुं विवशीकृता त्वया नारी।

सम्प्रति किञ्चिद् वक्तुं प्रचेष्टमानाऽर्हसि श्रोतुम्।।[10]

5. राजनीति - भारतवर्ष में प्राचीन काल से राजतन्त्र चला आ रहा है। पुरातन समय में प्रजा महान् व गुणसम्पन्न राजा का चयन करती थी जो प्रजा के पालन-पोषण को ही अपना सर्वस्व समझते थे। वे प्रजा के सुख-दुःख को अपना मानते थे। प्रजा की खुशियाँ ही उनके लिये सर्वोपरि होती थी किन्तु आज राजनीति बहुत बिगड़ चुकी है। एक-दुसरे को धोखा देना राजनीति माना जाता है। आज राजनेता दश के हितैषी न होकर स्वंय के हितैषी है। उनका धर्म, ईमान व भगवान् सिर्फ और सिर्फ पैसा है। आज राजनीति पुर्णतया भ्रष्ट हो चुकी है, जनता से किसी को मतलब नहीं है। कवि मानता है कि आज राजनीति में धृष्ट व्यक्ति ही प्रवेश कर रहे हैं-

इह राजनीत्यभिख्यं क्षेत्रं प्रविविक्षुभिर्नु तैर्भाव्यम्।

ये नैपुण्यं विभ्रति शकुनिरिव द्यूतविद्यायाम्।।11।।

प्राचीन काल में राजनीति को धर्म माना जाता था। राजनीति में धर्मनीति का बढ़ा महत्त्व था किन्तु आज राजनीति का शब्द सुनते ही हमें जो सबसे पहले याद आता है वो है भ्रष्टाचार, भाई-भतीजा-वाद, स्वार्थ, पैसा, वोट लेने की मारामारी आदि। वो आदर्श जिसके लिये राजनीति को समझा जाता है जनता की सेवा, समाज की उन्नति, निराश्रितों की रक्षा करना, शोषितों के साथ खड़ा होना, हर व्यक्ति को उसका हक दिलाना आदि बातें तो बस किताबों में रह गयी हैं।

वोट-बैंक के लिये नेता देश को दिग्भ्रमित कर रहे हैं। स्वार्थान्ध नेतागण साम्प्रदायिक विद्वेष व वर्णसंघर्ष को बढ़ावा दे रहे हैं। वर्णसंघर्ष व वर्णविद्वेष की आग में नेता तो सुरक्षित रहते हैं लेकिन भोली-भाली जनता मरती है। आज राजनीति में जाति के आधार पर दलसंगठन किया जाता है। जाति के आधार पर ही मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती है-

स्वं स्वं वर्णमपेक्ष्य प्रवर्तते राजनीतिरेतर्हि।
वस्तुत एका रम्या काचिदियं स्वार्थसङ्कीर्णा।।12।।

6. कविता - कविता का तात्पर्य रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्दगुम्फन मात्र नहीं है, अपितु जीवनानुभूति ही कविता की वास्तविक परिभाषा है। संसार के सुख-दुःख से परे कवितारूपी संसार मानव को सुख सन्तोष प्रदान करता है। वास्तव में कविता कवि की भावनाओं का चित्रण है। कवि की संस्कार बीज रूप प्रतिभा यत्र-तत्र बिखरें सौन्दर्य, समाज की स्थिति, समस्याओं आदि को संकलित कर शब्दों के माध्यम से उन्हें मूर्तरूप प्रदान कर समाज को युग-सत्य का बोध करवाती है। कविता में सत्य, शिव और सुन्दरता की ऐसी अलौकिक रसधारा प्रवाहित होती है जो सबको समानन्द प्रदान करती है। कविता समाज को नवीन दिशा देकर मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा करती है। ड़ाँ. पाठक भी कविता को स्वान्तःसुखाय न मानकर समाज का दर्पण स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि कविता शब्द-गुम्फन मात्र न होकर चेतोहर होती है-

कविता शब्दसुमनसां 7शद्दङ्कु सर्वथा नहि ग्रथितम्।
चेतोहरस्तदीयः कश्चन कवितासुगन्धोऽपि।।[13]

कविता का सीधा संम्बन्ध हृदय से होता है। कविता में कही गयी बात का असर तेज व स्थायी होता है। कवि मन की कोमल अनुभूतियों का साकार रूप ही कविता है। कवि कविता द्वारा युगीन सत्य को आकार देता है, समाज को दिशा-निर्देश देता है, श्रेष्ठ गुणों व आदर्शों की प्रतिष्ठा करता है।

कविता कवि के हृदय का शुद्ध रूप है जिसमें लौकिक जीवन के सुख-दुःख, प्रेम, करुणा, क्रोध, घृणा के भावों की स्पष्ट झलक दिखती है। जब कवि समाज में दुःख आदि देखता है तो उसके मन में कविता का उदय होता है-

विलोचनजलं सदा जगति हन्त सामान्यतो
जनस्य नयतीह नु प्रकटतां व्यथां सर्वथा।

यदा परमिह क्वचित् प्रकटयेदलं तां स्मितं

क्षणं नु कविता तदा मनसि मे समुन्मीलति।।[14]

7. वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना - आज सकल विश्व मे वैश्वीकरण, निजीकरण की बढ़ती भावना विश्व-एकतासूचक न होकर विनाशक है। सकल विश्व अलग-अलग वर्गों में विभाजित हो गया है। प्राचीन काल में ऋषियों ने समाज को कर्मों के आधार पर चार वर्गों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व क्षुद्र मे विभाजित किया था। इसके पीछे उनका उद्देश्य सकल समाज की बहुमुखी उन्नति करना था। उस समय चारों वर्ग देश की उन्नति मे समाधिकार रखते थे किन्तु आज इनके बीच पारस्परिक विद्वेष बढ़ता जा रहा है। सभी वर्ग भारतीय संस्कृति का पोषण न करके अपना-अपना स्वार्थ साधने में लगे हैं। आज व्यक्तिवादिता व स्वच्छन्दता अपने शिखर पर है। सामाजिकता विनाश के कगार पर है। परिवार, समाज बिखर रहा है, सभी अपना पृथक् अस्तित्व कायम करने में लगे हैं। ऐसे मे देश की अखण्ड़ता को पुनः कायम करने के लिये वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना परमावश्यक है। कवि कहता है कि आज यह भावना विस्मित हो गयी है - *मध्यगता देशानां विध्वस्ताः सन्तु भित्तयः सर्वाः।*

वसुधामिमां कुटुम्बकमिति मनुतां वस्तुतो मनुजः।।[15]

आज लोगों की दृष्टि अनुदार हो गयी है। तवैवेति ममैवेति की भावना प्रबल होती जा रही है जबकि वास्तव में सम्पूर्ण वसुधा हमारी है-

सन्तानानि निजानि स्वीया भार्येति यत्कुटुम्बमिति।

अनुदारा दृष्टिरियं कुटुम्बकं वस्तुतो वसुधा।।[16]

8. सौन्दर्यम् - रूप-रंग, कद-काठी, आकार-आकृति आदि बाह्य सौन्दर्य के प्रतीक है। ममत्व, वात्सल्यत्व, उदारत्व, विनम्रत्व, करुणात्व, क्षमत्व, पवित्रत्व, निष्कलंकत्व, सात्विकत्व, मर्यादित्व, मानवत्व आदि आन्तरिक सौन्दर्य के पर्याय है। बाह्य सौन्दर्यशील है, उसमें क्षणिकत्व है। उसके द्वारा हम कुछ काल तक प्रसिद्धि तो प्राप्त कर सकते हैं किन्तु सर्वसमर्थ काल में अजरत्व, अमरत्व प्राप्त करने के लिए आन्तरिक सौन्दर्य ही सर्वविदित साधन है। यही मानव को चिरस्थायित्व प्रदान कर सकता है। कवि सौन्दर्य को परिभाषित करते हुये कहता है कि वास्तव में आन्तरिक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है-

सौन्दर्यमाहुरेके शरीरगतमित्यदृष्टिसम्पन्नाः।

ब्रवत एतत् तत्त्वं मन्ये यत्किञ्चिदान्तरिकम्।।[17]

कवि ने सौन्दर्य का बहुत सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया है। आज के समाज पर कटाक्ष करते हुए कवि कहता है कि आज लोग सिर्फ बाह्य सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होतें है, आन्तरिक सौन्दर्य पर कोई ध्यान नहीं देता, जिसके फलस्वरूप समाज में तलाक, घरेलु हिंसा जैसे कृत्य बढ़ रहे है-

आकर्षणाय मन्ये बाह्यमलं तावदेव सौन्दर्यम्।

आन्तरिकं सौन्दर्यं नहि यावद् दृष्टिपथमेति।।[18]

डा. पाठक के सुभाषित दिखने में सरल होते है किन्तु भावगाम्भीर्य को अपने अन्दर समाहित किये होते है-

सौन्दर्यं नैतावत् प्रच्छाद्यं येन तन्न दृश्यते।

उद्घाट्यं नैतावद् येन तदाकर्षणं नश्येत्।।19।।

आज महिलाओं में पाश्चात्य संस्कृति के प्रति जो मोह जागा है और उसके फलस्वरूप महिलाओं के रहन-सहन तथा वेशभूषा आदि में जो परिवर्तन हुआ है वह इस सुभाषित में ध्वनित औरत का सबसे बड़ा गहना लज्जा है जो आज तिरस्कृत होता जा रहा है। आवश्यकता से अधिक प्रदर्शन करना, उत्तेजक वस्त्र पहनना आज फैशन माना जाता है जो भारतीय संस्कृति का विनाशक है। यह सौन्दर्य पुरुषों को एक निश्चित समय तक ही आकर्षित कर पाता है, जबकि लज्जाशील नारी सदा पुरुष के हृदय में निवास करती है-

वास्तवमिह सौन्दर्यं भवति न किञ्चित् प्रसाधनापेक्षि।

ग्लानिं जनयति तस्मिन् प्रसाधनानां यदारोपः।।[20]

आन्तरिक सौन्दर्य की तुलना बाह्य सौन्दर्य से कदापि नहीं की जा सकती। वास्तव में सौन्दर्य वही है जो मन में सजें और सब पर फबें। सौन्दर्य नैसर्गिक है कृत्रिम नहीं, किन्तु आज बाह्य सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य पर भारी पड़ रहा है। यही अर्थ डॉ. पाठक के सुभाषितों में होता है।

9. भारतीयता की भावना - अलग-अलग भाषायें, रीति-रिवाज, वेशभूषा, रहन-सहन, धर्म व जातियाँ होने के बाद भी सम्पूर्ण विश्व के सामने एकता व अखण्डता का उदाहरण प्रस्तुत करने के पीछे जो सबसे बड़ा कारण है वह है भारतीयता भिन्न वर्ण, भिन्न धर्म तथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय होते हुए भी भिन्नता में अभिन्नता को दर्शानें वाला तत्त्व भारतीयता है-

यद्यपि भिन्ना वर्णा भिन्ना धर्मा सम्प्रदायाश्च।

भिन्ने तथाप्यभिन्नं यत्किञ्चिद् भारतीयत्त्वम्।।[21]

कवि कहता है कि विचारगत-भाषागत भेद होते हुए भी जो तत्त्व सभी में उल्लसित होता है, वह है भारतीयता-

सत्यपि विचारभेदे भाषाभेदे च भारतीयेषु।
उल्लसति त्ववमेकं यत्किञ्चिद् भारतीयत्वम्।।[22]

10. विविध विषयों का प्रतिपादन - डा. पाठक की लेखनी से कोई भी विषय अछूता नहीं रहा है। जगन्नाथ-सुभाषितम् के द्वितीय तथा तृतीय भाग में लगभग 2500 विषयों पर सुभाषित रचना की गई है। इनमें सौह्यर्दः, मृत्युः, दौर्भाग्यम्, शुश्रूषा, नग्नत्वम्, गुणग्रहीतृत्वम्, जागरुक, वर्षाभावः, ज्ञानालोक, स्पर्शः, असहायः, प्रतीक्षा, पश्चात्तापः, असहिष्णुता, वैराग्यम्, वैकल्यम्, स्वार्थपरता, हिंसा, अशान्ति, संस्कारः, युगधर्मः, तृष्णाः, मौनम्, विश्वासः, ईश्वरः, व्यथा, अभावः, रागद्वेषः, जिजीविषा, भक्तः, पुत्री, असुरक्षा, प्रेमः, लोकः, आदर्शः, परिवारः, धर्मः, रामाणयम्, रामराज्यम्, भारतीय-संस्कृतिः आदि अनेक विषयों को परिभाषित किया है।

निष्कर्षतः ड़ाँ. जगन्नाथ पाठक की यह कृति साहित्य-जगत् की अनमोल सौगात है। उनका व्यक्तित्व, विषय के प्रति संवेदनशीलता, उनका जीवनदर्शन व सामाजिक मूल्यों की छाप सम्पूर्ण कृति में आभासित होती है।

इस कृति में जनमानस की संवेदनाओं के साथ-साथ राजनयिकों की स्वार्थपरता का भी निरूपण है। इसमें सामयिक,सामाजिक तथा राजनैतिक स्थितियों का विवेचन है। कवि ने इस रचना में आधुनिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं का वर्णन कर प्रगतिशील काव्य के स्वरूप की सरसाभिव्यक्ति की है। मानवीय जगत् के तथा भारत देश के कल्याण हेतु इन सुभाषितों को आत्मसात् करना आवश्यक है।

आर्या-सम्राट् डा. जगन्नाथ पाठक ने जगन्नाथसुभाषितम् में युगबोधपरक मानवीय समाज में व्याप्त विषमताओं तथा भारतीय-संस्कृति की अखण्ड़ता को स्पष्ट किया है जो अनुकरणीय है। आज संस्कृत-वाङ्मय का सबसे प्रमुख तथ्य मानव व्यक्तिवादी दृष्टि है। आज साहित्य का परम प्रयोजन है - मानव कल्याण जो इस कृति में सर्वत्र परिलक्षित होता है। इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है जो जनसामान्य के लिये सरल, सहज व बोधगम्य है। संस्कृत-साहित्य में युगीनता की दृष्टि से यह कृति उल्लेखनीय है। इसमें युग का प्रभाव है और प्रभावन भी। यह काव्य निश्चयेन संस्कृत-वाङ्मय के भण्डार को समृद्ध कर रहा है। इस काव्य में जीवन के विविध

भावों व अनुभूतियों के विविध रंग हैं। कवि ने जीवन के हर क्षण को महसूस कर लेखनी का विषय बनाया है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि डा. जगन्नाथ पाठक कृत 'जगन्नाथ-सुभाषितम्' (भाग-2) युगीन बोध के विभिन्न आयामों की अभिव्यञ्जना कराने वाली अनुपम कृति है। इसमें कहीं संस्कृति के प्रति आदर है तो कहीं प्राचीन कवियों के प्रति सम्मान, कहीं युगीन बोध है तो कहीं मानवतासन्देश।

सन्दर्भ-

1. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग-1, आदिकविर्वाल्मीकिः, पद्य - 7
2. वहीं, हे कालिदास, पद्य - 5
3. वहीं, गङ्गाया व्यथितम्, पद्य - 18
4. वहीं, पद्य 23
5. वहीं, दलित - प्रसङ्गः, पद्य - 7
6. वहीं, मानवते, पद्य 4
7. जगन्नाथ-सुभाषितम् भाग-2, पद्य -109
8. वहीं, पद्य - 2116
9. वहीं, पद्य - 1999
10. वहीं, पद्य - 1190
11. वहीं, पद्य - 413
12. वहीं, पद्य - 724
13. वहीं,पद्य - 943
14. जगन्नाथ-सुभाषितम्, भाग-1, कविता तदा मनसि मे....... पद्य - 10
15. जगन्नाथ-सुभाषितम्, भाग-2, पद्य - 33
16. वहीं, पद्य - 254
17. वहीं, पद्य - 231
18. वहीं, पद्य - 31
19. वहीं, पद्य - 468
20. वहीं, पद्य - 1327
21. वहीं, पद्य - 889
22. वहीं, पद्य - 202

हमारे लेखक /समीक्षक

स्व. श्रीनिवास रथ	श्रीलीला ,12, उदयन मार्ग, उज्जैन (म.प्र.)
मञ्जुलता शर्मा	49, कैलाश बिहार, आगरा (उ.प्र.)
नारायण दाश	रामकृष्णमिशन आवासीय महाविद्यालय, नरेन्द्रपुर, कलिकाता-10
बनमाली बिश्वाल	57, वसन्त विहार, झूसी, इलाहाबाद-211019
धर्मेन्द्र कु. सिंहदेव	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल (म.प्र.)
अजय कु. मिश्र	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, 56-57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058
सन्तोष कुमारः	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, गङ्गानाथ झा परसिर, आजाद पार्क, इलाहाबाद- 211002
सूर्यप्रकाश शुक्लः	ग्राम-कैली, पो. भीरागोविन्दपुर, पिन कोड- 229125 जिला-रायबरेली (उ.प्र.)
प्रफुल्ल कुमार मिश्र	कुलपति, नर्थ ओडिशा यूनिवर्सिटी, बारिपदा,ओडिशा
हरिदत्त शर्मा	डी 23, एकता बिहार, अक्लांड रोड, इलाहाबाद - 21100
अरुणरञ्जन मिश्र	संस्कृत विभाग, शान्तिनिकेतन, बोलपुर, पश्चिम बंग
उमेशदत्त भट्ट	97/3एफ/1 शिवकुटी, इलाहाबाद-211004 (उ.प्र.)
मीरा दुबे	ए - 47 कोट्यर्क नगर सोसाइटी, शास्त्री बाग के समीप, वाडी, बडौदा - 390017
सतीश कुमार शर्मा	वार्ड नं. 9, इन्द्रगढ, जिला बुन्दी, राजस्थान - 323613
गोविन्द मिश्र	राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गंगानाथ झा परिसर, आजाद पार्क, इलाहाबाद - 211002
तारेश कुमार शर्मा	रामेश्वरी देवी राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, भरतपुर, राज.
बनवारी लाल पाठक	पण्डित निवास, दलपत खिडकी,मथुरा - 281001
सविता ओझा	संस्कृत विभाग,नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, जमुनिपुर कोटवा, इलाहाबाद
ठण्डीलाल मीणा	सी-26, सनवल नगर, समीप साजिद नगर, नई दिल्ली,110049
बाबूलालमीना	साहित्य विभाग, धर्म विद्या विज्ञान संकाय, बी. एच. यू., वाराणसी (उ.प्र.)
प्रतिमा त्रिपाठी	राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गंगानाथ झा परिसर, आजाद पार्क, इलाहाबाद - 211002
बबिता निर्मल	राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, गंगानाथ झा परिसर, आजाद पार्क, इलाहाबाद - 211002
अभिराज राजेन्द्र मिश्र	सनराइज विला, लोवर समर हील, शिमला, हिमाचल प्रदेश - 171005
अर्चना तिवारी	ग्राम व पोस्ट कोरसम, फतेहपुर-212665 (उ.प्र.)
कौशल कु. तिवारी	मालादेवी मोहल्ला, वार्ड, नं. 31चौमुख बाजार, बारां (राज.) 325205
राज्यधरमण्डलः	संस्कृत विभाग, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन, बोलपुर, पश्चिम बंग
विनोद कुमार दीक्षित	71/ 2, नेहरू नगर, न्यू कालोनी, शिवमन्दिर से पूर्व, देवरिया (उ.प्र.)

आधुनिक संस्कृत की नई दिशाएँ

डॉ. हर्षदेव माधव अभिनन्दनग्रन्थ

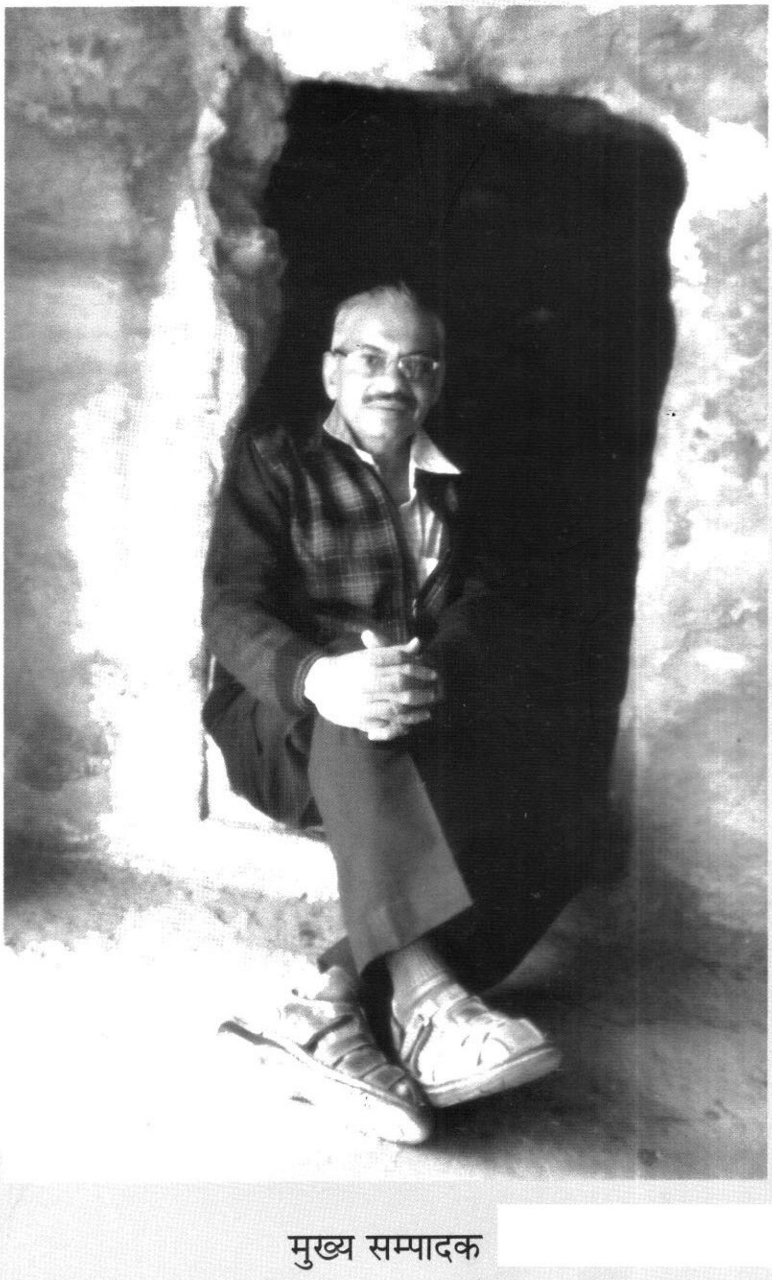

मुख्य सम्पादक

डॉ. अशोक पटेल • डॉ. रवीन्द्रकुमार खाण्डवाला • डॉ. प्रवीण पंड्या

अनुक्रम

समग्र कृतित्व पर विवेचन

१.	नैमिषारण्योपनिषद्–अनुभवगम्य मान्त्रिक अनुभूति की रचना	–आचार्य डॉ. दयानन्द भार्गव	७
२.	हर्षदेव माधव की कविता	–प्रो. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	१२
३.	भारतीयता और हर्षदेव की कविता	–प्रो. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	२२
४.	माधवकाव्यनवस्पन्दाः	–प्रो. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	३२
५.	एक आधुनिक क्रान्तद्रष्टा क्रान्तिकारी कवि	–प्रो. हरिदत्त शर्मा	३८
६.	समकालीन संस्कृत साहित्य : संरचनावाद और उत्तर–आधुनिकतावाद के परिप्रेक्ष्य में	–प्रो. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	४३
७.	नवोन्मेष और प्रयोगधर्मिता के पर्याय : डॉ. हर्षदेव माधव	–म. म. देवर्षि कलानाथ शास्त्री	५०
८.	युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा डॉ. हर्षदेव माधव	–डॉ. मञ्जुलता शर्मा	५४
९.	हर्षदेवस्य काव्येषु भारतीयता	–डॉ. नारायणदाशः	६८
१०.	इक्कीसवीं शती ई. का संस्कृत–गद्य : निर्णायक समीक्षा	–राजेन्द्र मिश्र	७९
११.	हर्षदेव माधव का काव्य – आधुनिकता, अध्यात्म एवं वर्तमान जीवन के प्रश्न	–डॉ. प्रवीण पण्ड्या	९१
१२.	रामगिरि के मौन का अन्तःसत्य	–डॉ. उमेशदत्त भट्ट	१०४
१३.	समकालीन संस्कृत कविता के नवीन परिदृश्य	–डॉ. सुदेश आहूजा	१०९
१४.	समकालीन संस्कृत कविता की नव्य, आधुनिक इबारत	–डॉ. कुन्दन माली	११८

कृतिनिष्ठ विवेचन

१५.	सादृश्यों के दर्पण में नवोन्मेष के कवि हर्षदेव माधव	–शिवकुमार मिश्र	१२३
१६.	भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि–पर एक पाठकीय प्रतिक्रिया	–डॉ. महराजदीन पाण्डेय 'विभाष'	१३१
१७.	तरो ताजा प्रतीकों की सृष्टि	–डॉ. गोविन्द झा	१३७
१८.	मूको रामगिरिर्भूत्वोपन्यासे देवार्चनम्	–डॉ. नौनिहालगौतमः	१४१
१९.	यक्षस्य वासरिका में जीवनदर्शन	–डॉ. रीता त्रिवेदी	१४४

२०. 'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' के शिखर से मेघदूत की नई उड़ान -डॉ. मञ्जुलता शर्मा १४८
२१. संस्कृत में हास्य-व्यंग्य का नवोन्मेष : 'तथास्तु' -डॉ. सुदेश आहूजा १५४
२२. वागीश्वरीकण्ठसूत्रसमीक्षणम् -डॉ. रमाकान्तपाण्डेयः १६१
२३. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम् : एक संक्षिप्त दृष्टिपात् -डॉ. कौशल तिवारी १६७

नयी विधाएँ और विवेचन

२४. शब्दानुप्राणित अनुभूतियाँ/ ऋषेः क्षुब्धे चेतसि संस्कृत हाइकू -अर्चना तिवारी १७१
२५. अभिव्यक्ति अमित, आखर अति थोरा -डॉ. सरोज कौशल १७५
२६. 'वासकसज्जा ज्योत्स्ना' गहन अनुभूति की कविता -डॉ. इला घोष १८४
२७. शतककाव्य-परम्परा में नये दृष्टिकोण से लिखी गई कृति-'मृत्युशतकम्' -सी. बी. बालस १८९
२८. डॉ. हर्षदेवकृत प्रकाशोपनिषद् : शिवाद्वयवादी प्रकाश तत्त्व के आलोक में -डॉ. बीना अग्रवाल १९५
२९. 'गुरूपनिषद्' -आचार्य रहसविहारी द्विवेदी १९८
३०. बाल मन को रिझाती अनूठी कविता -अजय कुमार मिश्र २०२
३१. 'तान्का' काव्य - एक नई विधा - डॉ. उर्वी पी. दवे २१०
३२. 'वासरिका' साहित्य की विधा और मूको रामगिरिर्भूत्वा - सतीश कुमार शर्मा २१५
३३. परावास्तववाद और परावास्तववादी कविता : "भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि" -डॉ. रवीन्द्रकुमार वि. खाण्डवाला २१८

नयी परिभाषाओं के आलेख

३४. एकबिम्बीय काव्य और हर्षदेव माधव -नवनीत जे. जोशी २२३
३५. कवि श्री हर्षदेव माधव के काव्यों में प्रतीक -डॉ. कश्यप एम. त्रिवेदी २२८

अंग्रेजी आलेख

३६. Sanskrit Haiku-Tanka-Sijo Poems of Harshdev Madhav in Modern Sanskrit Literature -Dr. Harekrishna Meher २३४
३७. New Genre of Literature in Modern Sanskrit (With special reference to Harshdev Madhav) -Aruna Ranjan Mishra २४५

३८.	A Review of संवादोपनिषद् : of Mystic Poems in Sanskrit A collection	-M. V. Joshi	२५९
३९.	Harshdeva Madhava - poet with a Difference	-Dr. Vasant Parikh	२६३
४०.	'Mrtuśatakem'-a Short Review	-Dr. Kalpika Mukharjee	२६५
४१.	Alakanandā - New Dimension of Sanskrit Poetry	-M. V. Joshi	२६७
४२.	Kalpavṛkṣa in the Wṛitings of Harshdev Madhav	-Arun Ranjan Mishra	२७०
४३.	Dr. Harshdev Madhav's 'Tava Sparśe Sparśe' - a Study	-Preeti Puraja	२७७
४४.	The Self - Bird : A Comparative Presentation	-Dr. Urmi S. Shah	२८६
४५.	डॉ. हर्षदेव-माधव-महाभागानां कृते षष्टिवर्ष-पूर्त्ति-समभिनन्दनम्	-डॉ. हरेकृष्णमेहेरः	२९३
४६.	हर्षदेवो माधवः	-पद्मश्री डॉ. रमाकान्तशुक्लः	२९५
४७.	माधवकविः	-डॉ. प्रशस्यमित्रशास्त्री	२९६
४८.	संस्कृत का प्रथम सचित्र बालगीतसङ्ग्रह पिपीलिका विपर्णी गच्छति	-डॉ. सुदेश आहूजा	२९७
४९.	अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के द्वार पर युवा कवि की दस्तक	-डॉ. सुदेश आहूजा	३०३
५०.	Various Aspects of Madhava's Creative Periphery in Sanskrit	-Banamali Biswal	३१३

३२. 'वासरिका' साहित्य की विधा और मूको रामगिरिर्भूत्वा

सतीश कुमार शर्मा

नित्य नवीन काव्य विधाओं से संस्कृत काव्य भण्डार को पोषित एवं फलित करने वाले रचनाकारों में से डॉ. हर्षदेव माधव की लेखनी से निःसृत उपन्यास है **'मूको रामगिरिर्भूत्वा'** ।

यह उपन्यास संस्कृत साहित्य में सर्वथा नवीन विधा- **डायरी विधा** में लिखा गया है । शीर्षक के नाम से ही अनुमान हो जाता है कि रामगिरि का मूल रूप में कहीं न कहीं मेघदूत से सम्बन्ध अवश्य ही है । यह विश्वास करने योग्य विषय ही नहीं है कि- दूतकाव्य परम्परा के अग्रणी ग्रंथ मेघदूत की विषय-वस्तु को संगृहीत करके कोई नूतनशैली में अभिशप्त यक्ष की जो महिमा अस्त हो गई थी उसे नई सोच के द्वारा पाठकों के समक्ष पुनः मण्डित करने के लिए आत्म कथन शैली की डायरी विधा के रूप में उपन्यास लिखा जायेगा ।

परन्तु निश्चय ही वाग् देवी के चमत्कार रूप, साहित्य-जगत के स्वर्णि युग पर पड़े हुए अंधकार को विदीर्ण कर आलोकित करने वाले, मौलिक एवं बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि **'हर्षदेव माधव'** ही हैं, जिन्होंने मेघदूत के १०० श्लोकों का विस्तार १०० पृष्ठों और ३६५ दिनों में कर दिया । वस्तुतः यहाँ १५६ दिनों में ही यह दैनन्दिनी है ।

यह उपन्यास सर्वप्रथम **'यक्षस्य वासरिका'** रूप में कथासरित्पत्रिका में प्रकाशित हुआ उसके पश्चात् मञ्जुलता शर्मा के हिन्दी अनुवाद के साथ राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ ।

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' के प्रत्येक पृष्ठ में मूक होने पर भी रामगिरि का विलास है प्रत्येक कण-कण में मूल्य बोध तत्त्व आदि की विशेषता है जो भारतीय संस्कृति और भारतीय तत्त्व का अनुसरण करता है।

'डॉ. हर्षदेव माधव' जैसे कवि ही सुनते हैं- **'मूकप्राणस्य मौनदहनम्'** । उनके मूक वचन भी महाकाव्य होते हैं ।

बहुत कम कवि भारतीय महाख्यानों की विचित्र वीणा के सारे स्वर इस तरह साध सके कि उनका अनुरणन आज के श्रोता सुनें । राधावल्लभ त्रिपाठी हर्षदेव माधव की काव्यसाधना के विषय में लिखते हैं - 'हर्षदेवमाधव' जैसे कुछ ही संस्कृत कवि प्रतीकों को इसी तरह कविता में सफलता से ढाल सके। हर्षदेव माधव का काव्य जटिल प्रतीकों का खासा जमावड़ा है, उन्होंने अपनी परम्परा से प्रतीक उठाये हैं और उन्हें नई अर्थवत्ता भी दी है ।

डॉ. हर्षदेव माधव मेघदूत के वस्तु सौन्दर्य में मूक होकर रम गये । उन्होंने मेघदूत के विषय में कहा है कि **"इसमें भारत का भूगोल है, तीर्थ है, पावनभाव है । प्रेम की वह अनन्यता और निष्ठा है, प्रकृति से एकमेक होने से जन्मी जीवन की लय और संगति है । इस संगति में भारत के जीवनबोध की विश्व को देन है ।"**

'मूकोरामगिरिर्भूत्वा' हिन्दी साहित्य में प्रचलित डायरी-शैली को संस्कृत-साहित्य में प्रस्तुत करने वाला प्रथम प्रयोग है । आधुनिक गद्य-साहित्य में विभिन्न विधाएँ प्रचलित है जिसमें से एक विधा है- डायरी विद्या ।

दैनिक जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती हैं जो हमारे मन को प्रभावित करती हैं। कुछ घटनाएँ हमें हर्ष-मग्न करती हैं, कुछ अवसादग्रस्त। कुछ से खीझ उत्पन्न होती है, कुछ से वितृष्णा। कुछ हमें उत्साह और स्फूर्ति से भर देती हैं और कुछ खेद से खिन्न कर देती हैं। साहित्यकार अधिक संवेदनशील होता है। इन घटनाओं की उस पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है। एकान्त के क्षणों में जब वह इन घटनाओं की मीमांसा करता है या इनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, 'डायरी' शैली का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। किसी दैनिक घटना के संदर्भ में अपने मन की उधेड़-बुन व्यक्त करने के लिए 'डायरी' सर्वोत्तम माध्यम है।

"डायरी एक ऐसी आत्मीय पुस्तक होती है जिसमें डायरीकार काल-क्रमानुसार अपने जीवन की दैनिक घटनाओं, क्रिया-कलापों, भावों, विचारों का चित्रण करके आत्म विश्लेषण एवं आत्म-विवेचन प्रस्तुत करता है।"

डायरी विधा में हर घटना काल और स्थान की सीमा में बंधी होती है। इसलिए डायरी-लेखक घटना के साथ तिथि और स्थान भी अंकित करना आवश्यक समझता है। साहित्यकारों द्वारा लिखी जाने वाली डायरियों में अंकित तिथियाँ स्थान और घटनाएँ काल्पनिक भी हो सकती है और सत्य भी। आत्मभिव्यक्ति के लिए कला-माध्यम के रूप में डायरी-शैली का प्रयोग करने वाले साहित्यकार घटना की ऐतिहासिक यथार्थता को महत्त्व न देकर संभावना को महत्त्व देते हैं। इन डायरियों में तिथि और स्थान का निर्देश विश्वसनीयता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है।

गद्य-साहित्य की इस विधा का विकास नवीन चेतना का ही प्रतिफल है। इसमें लेखक अपने व्यक्तित्व के गुण-दोषों का वर्णन प्रस्तुत करता है। डायरी में वह अपने दिन-प्रतिदिन की बातों, घटनाओं आदि को लिखता जाता है। इस विधा में साहित्यकार अपने निकटतम अथवा कुछ अन्य व्यक्तियों के चरित्र का भी विवेचन करता है। उनके गुण दोषों का भी संकेत प्रतिबिम्बित होता है।

डायरीकार समाज का व्यक्तित्वशाली एवं प्रख्यात महापुरुष होना चाहिए अन्यथा पाठक कुछ भी नवीन प्रेरणा नहीं ग्रहण कर सकता। डायरी विधा का उद्देश्य है- पाठक के अंतस्थल में कुछ नवचेतना, नवप्रेरणा का प्रतिफल करना, जिससे कि लोग लेखक को भलीभाँति जान सकें, उसके व्यक्तित्व पर लोगों पर प्रभाव पड़े और लोग लेखक के जीवन से कुछ सीखकर अपना एवं समाज का उत्थान कर सकें। यही कारण है कि साधारण लेखक से पाठक प्रबावित नहीं होता और न तो उसका लाभ ही होता है।

डायरी में लेखक प्रत्येक घटना का ठीक-ठीक समय, स्थान, दिनांक एवं सन् आदि तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करता चलता है। डायरी लेखक जीवन की प्रत्येक घटना का असंगठित एवं असंबद्ध वर्णन प्रस्तुत करता है। डायरी में चाहे वह कितना ही प्रभावदायक क्यों न हो, उसमें एक समय के क्षण में घटित अनेक घटनाओं का वर्णन क्रमानुसार होता है। डायरी लेखक उस समय में घटित घटनाओं में से महत्त्वपूर्ण घटनाओं को नोट कर लेता है जबकि उसके अन्त को और विस्तृत अर्थ को वह उसमें संकलित नहीं कर सकता है।

"The formal difference between diary and autobiography is obvious. The letter is a review of a life from a particular moment in time, While the diary, however reflective it may be, moves through a series of moments in time. The

diarist notes dowm what at that moment, seems of imporatance to his, its ultimate long range significace can be assesed."

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डायरी गद्य की वह विधा है, जिसमें लेखक काल-क्रमानुसार अपनी जीवन चर्चा, भावों-विचारों, घटनाओं और उनके प्रभावों का वर्णन प्रस्तुत करके, पाठक को अपने व्यक्तित्व एवं क्रिया-कलापों की जानकारी देता है।

मूलतः यह विधा हिन्दी साहित्य में प्रचलित है परन्तु पारम्परिक राह को छोड़कर सर्वाधिक नवीन प्रयोगधर्मा अपारम्परिक कवि डॉ. हर्षदेव माधव ने सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम डायरी शैली में "**मूकोरामगिरिभूर्त्वा**" का लेखन किया है। नवीन काव्य विधाओं के प्रयोग में डॉ. हर्षदेव माधव अग्रगण्य है।

अपने को राधा का नहीं, किन्तु मालती का माधव कहलाने वाले डॉ. हर्षदेव माधव का मूल नाम हर्षवदन मनसुखलाल जानी है। साहित्य जगत में इन्हें 'हर्षदेव माधव' नाम से जाना जाता है। हर्षदेव माधव समकालिक संस्कृत साहित्य के असाधारण प्रतिभासम्पन्न सुलक्षण और विलक्षण रचनाकार है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के साहित्यकारों में सर्वाधिक प्रयोगशील और सर्वाधिक सम्भावनाशील सरस्वती के दत्तवर पुत्र है।

Harshdev Madhav-the highest peak of Modernity A profilce.

"नव्यसंवेदनैः काव्यैर्वचोभङ्गिसमन्वितैः ।
हर्षदो वागधिष्ठयात्र्या हर्षदेवो, न संशयः ॥"

(मूको रामगिरिर्भूत्वाः, लेखक - डॉ. हर्षदेव माधव, प्रकाशन-राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली-५८, संस्करण-प्रथम संस्करणम् २००८, मूल्य-११०/- पृष्ठ-२०१, १/८ डेम्मी ।)

सतीष शर्मा, कोटा

ISBN : 978-93-5108-440-2
9 789351 084402

પાર્શ્વ પબ્લિકેશન : અમદાવાદ

बरोडासंस्कृतमहाविद्यालयः, म.स.विश्वविद्यालयः, वडोदरा

सत्यं शिवं सुन्दरम्

राष्ट्रियसंगोष्ठीः (NATIONAL SEMINAR)

एकविंशशताब्द्याः संस्कृतसाहित्यम् ।

SANSKRIT LITERATURE OF 21st CENTURY

प्रमाणपत्रम् (CERTIFICATE)

इदमत्र प्रमाणीक्रियते यद् विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोगस्य सहयोगेन
बरोडासंस्कृतमहाविद्यालयद्वारा समायोजितायां राष्ट्रियसंगोष्ठयाम्-

श्री/डॉ./प्रो. सतीश शर्मा

हरिशंकर परसाई कृत ज्वाला तथा जल का संस्कृतानुवाद/ एक समीक्षा विषये

शोधपत्रं प्रस्तुतवान्/प्रस्तुतवती ।

दिनाङ्कः : २६-११-२०१४

स्थानम् : प्राच्यविद्यामन्दिरम्, म.स.विश्वविद्यालयः, वडोदरा

डॉ. प्रफुल्लः पुरोहितः	डॉ. रामपालः शुक्लः	प्रो. रवीन्द्रकुमारः पण्डा
उपाध्यापकः, बरोडासंस्कृतमहाविद्यालयः म.स. विश्वविद्यालयः, वडोदरा संयोजकः, राष्ट्रियसंगोष्ठीः	विभागाध्यक्षः, बरोडासंस्कृतमहाविद्यालयः म.स. विश्वविद्यालयः, वडोदरा	प्राचार्यः, बरोडासंस्कृतमहाविद्यालयः म.स. विश्वविद्यालयः, वडोदरा समाश्रयः, (PATRON) राष्ट्रियसंगोष्ठीः

राष्ट्रिय-संस्कृत-संगोष्ठी

आधुनिक सन्दर्भ में भारतीय काव्यशास्त्र की समालोचना

(7-8 नवम्बर, 2014)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सतीश कुमार शर्मा शोधछात्र राजकीय महाविद्यालय, कोटा ने संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय एवं राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित राष्ट्रिय संस्कृत संगोष्ठी में सहभागिता की। सौन्दर्यकारिका आधुनिक काव्यशास्त्र की अनुपम कृति विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया।

Renuka

डॉ. रेणुका राठौड़
निदेशक
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

Agrawal

प्रो. बीना अग्रवाल
संयोजिका, संगोष्ठी एवं
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर